HISTORY AND PALAEOGRAPHY OF BHARHUT INSCRIPTIONS

(IN HINDI)

A THESIS
SUBMITTED TO THE
UNIVERSITY OF ALLAHABAD
FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

Under the supervision of
Prof. S. N. ROY

Submitted by
MANOJ MISHRA

Department of Ancient History, Culture & Archaeology
UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD (India)

1998

जिनके पुण्य-प्रताप एवं अनाविल आशीर्वाद की अनल्प रश्मियों
से अनुरंजित होकर शोध कार्य के इस महायज्ञ
को पूर्णता देनें में सफल हो सका हूँ
ऐसे प्रातः स्मरणीय, गो-गंगा-गायत्री
के अनन्य उपासक, गोलोकवासी
अपने परम पूज्य पितामह
पंडित उदरेश मिश्र 'वैद्य'
के दिव्य चरणों में
सादर समर्पित

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

पुरोवाक्

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS
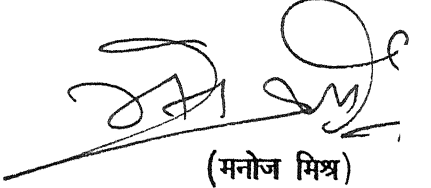
भरहुत के अभिलेखों का पुरालिपिशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करना तथा फिर उसी विषय पर शोध प्रबन्ध का लेखन, मुझ जैसे इतिहास के एक सामान्य विद्यार्थी के लिए, दुरूह कार्य था। जिस विषय पर पुरावशेष के अथक अन्वेषक सर अलेग्जेण्डर कनिंघम, जार्ज बूंलर, राजेन्द्रलाल मित्र, बेनी माधव बरूआ, हुल्श तथा लूडर्स प्रभृति विद्वानों ने यथा संभव अपने शोध–अन्वेषणों से भाषा शास्त्र के नियमों, साक्ष्यों के आधार पर दृश्यों का स्पष्टीकरण तथा कथा–सूत्रों से उनका तादात्म्य स्थापित कर निष्कर्ष निकालने का कार्य किया हो, उस विषय पर मेरे जैसे "**अल्प–विषया मति**" का शोध कार्य करना तथा कुछ नयी संभावनाओं की ओर संकेत, एक महत्वपूर्ण क्षण था। इस शोध–प्रबन्ध में मैंने कुछ एक ऐसे नये तथ्यों एवं अन्वेषणों के अनुरेखन का प्रयास किया है जिस पर पूर्ववर्ती विद्वानों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया था।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मैंने कुल दो खण्डों तथा छः अध्यायों में विभक्त कर भरहुत से प्राप्त अभिलेखीय तथ्यों को एक–एक करके कुछ अलग ढंग से लिखने का प्रयास किया है। प्रथम खण्ड से सम्बन्धित अध्यायों में प्रकारान्तर से उन्हीं स्थापनाओं का प्रस्तुतीकरण है, जिन्हें पूर्ववर्ती विद्वानों ने अधिमान्यता प्रदान किया है। मैंने उन तथ्यों को यथावत सादर संदर्भित किया है। परन्तु द्वितीय खण्ड में भरहुत की लिपि सम्बन्धी विवेचना है तथा उसमें पूर्ववर्ती विद्वानों के कार्यो के साथ ही कुछ एक महत्वपूर्ण बिन्दुओं की ओर अतिरिक्त संकेत करते हुए, एक नये कलेवर के साथ शोध–अन्वेषणों को समाहित किया गया है। प्रथम अध्याय में मैंने भरहुत की भौगोलिक स्थिति, पुरावशेष संकलन एवं राजनीतिक इतिहास का एक संक्षिप्त विवरण निबन्धित करने का प्रयास कियाहै। द्वितीय अध्याय में भरहुत के स्तूप का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य पर, तृतीय अध्याय में अंकितक अभिलेखों में कला, शिल्प एवं जीवन के विविध दृश्यों का निरूपण, चतुर्थ अध्याय में भरहुत लिपि की पृष्ठभूमि एवं पुरोगामिता, पंचम अध्याय में भरहुत लिपि के अक्षरांकनों की समीक्षा तथा अन्तिम अध्याय में भरहुत शिल्प के कुछ एक चुनिन्दा फलकों एवं उनके अक्षरांकनों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

भरहुत पर शोध करने वाले उन समस्त पूर्व–सूरियों/विद्वानों को

मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिनके अमूल्य विचारों को मैंने शोध प्रबन्ध में यथा स्थान समायोजित किया है तथा जिनके बहुमूल्य सुझावों के बगैर शोध प्रबन्ध का लेखन मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर था।

शारदीय नवरात्रि
21 सितम्बर, 1998

(मनोज मिश्र)
सीनियर रिसर्च फेलो
प्राचीन इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद – 211002

*****

आभारोक्ति

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सम्पूर्णता का श्रेय भारतीय पुरालिपि के प्रकाण्ड विद्वान, प्रवर गुरूवर्य प्रो0 सिद्धेश्वरी नारायण राय जी को जाता है, जिनकी कृपा के बगैर यह सारस्वत साधना दुरूह ही नहीं अपितु दुष्कर भी थी। छात्र जीवन से ही मैं गुरूदेव के उर्जावान् व्यक्तित्व का अनुगामी एवं प्रशंसक रहा हूँ तथा आज मुझे इस बात का गर्व है कि मैं उनका अन्तेवासी शिष्य बन सका। मैं श्रद्वेय गुरू जी के प्रति आभार व्यक्त कर उनकी विराट संज्ञात्मक शक्ति को 'सर्वनाम' का बौनापन नहीं देना चाहता।

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व मनीषी विद्वानों स्व0 जी आर. शर्मा, प्रो0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, प्रो0 जे.एस नेगी, प्रो0 बी.एन.एस. यादव, प्रो0 उदयनारायण राय, प्रो0 शिवेशचन्द्र भट्टाचार्य तथा प्रो0 धनेश्वर मंडल के प्रति भी श्रद्धावनत हूँ जिनके द्वारा बनाये गये उत्कृष्ट बौद्धिक परिवेश का ही यह परिणाम था कि मैं इस विभाग से शोध कार्य करने हेतु अपने आपको प्रेरित कर सका।

भारतीय पुरातत्व के आधिकारिक विद्वान प्रो0 विद्याधर मिश्र जी, विभागाध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग का भी मैं ऋणी हूँ जिनके सतत् मार्गदर्शन/प्रेरणा एवं समय-समय पर प्रगति आख्या/बहुमूल्य सुझावों के चलते मैं यह शोध कार्य पूर्ण कर सका हूँ।

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के समस्त परम आदरणीय गुरूजनों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनके साए में रहकर मैंने ज्ञानार्जन किया। आदरणीय डा0 जयनारायण पाण्डेय एवं विशेषतया डा0 हरिनारायण दूबे जी के प्रति मैं बहुत आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव एवं कार्य की सतत् जागरूकता के प्रति मुझे सदैव प्रेरित किया।

मैं अपने पिता जी डा0 राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, माता जी श्रीमती हीरावती मिश्र, चाचा जी डा0 कमलाकान्त मिश्र, चाची जी श्रीमती शीला मिश्र, बड़े भइया डा0 अरविन्द मिश्र एवं भाभी जी श्रीमती संध्या मिश्र – सभी के चरणों में सादर सदैव नतमस्तक हूँ जिनसे मुझे सदैव आशावाद का मूलमंत्र, कर्तव्य पथ पर जुटे रहने एवं 'न दैन्यं न पलायनम्' की सीख मिली। आप सबके आशीर्वाद का ही यह सुफल है कि यह शोध प्रबन्ध अपने वर्तमान कलेवर को प्राप्त कर सका है।

मैं अपने बड़े चाचा जी डा0 सरोज कुमार मिश्र, वैज्ञानिक (नासा, सं. रा. अमेरिका) एवं चाची जी डा0 जया मिश्र के प्रति अनुराग से परिपूर्ण हूँ जिन्होंने सदैव उच्च शिक्षा हेतु परिवार में मेरी हर संभव मदद की तथा सतत् जागरूकता के साथ आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दी।

आदरणीया गुरू माता श्रीमती उषाराय की ममतामयी कृपा का मैं सतत् आकांक्षी हूँ जिनकी छत्रछाया में मैंने हमेशा अपने को सहज पाया। सदैव मुझे उचित मार्ग दर्शन एवं शोध सम्बन्धी बहुमूल्य सुझावों के लिए आदरणीया डा0 अनामिका राय, डा0 जे.वी.राय, डा0 हर्ष कुमार एवं डा0 आनन्द शंकर सिंह का मैं हृदय से आभारी हूँ।

अपनी सह धर्मिणी डा0 छाया मिश्र के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिसने "**पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्**" की उक्ति को मेरे जीवन में सार्थक किया है।
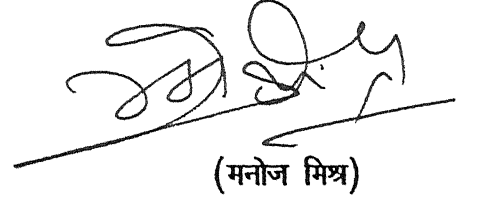
समस्त आत्मीय सगे सम्बन्धियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए अपने जीजा जी श्री जय प्रकाश तिवारी एवं विशेष रूप से श्री दीपक कुमार मिश्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके सहयोग/शुभकामना का संबल मुझे सदैव मिला। प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक के समस्त गुरूजनों जिन्होंने मुझे शिक्षित किया, अपने वरिष्ठ विभागीय सहयोगी डा0 अनिल कुमार दूबे एवं मित्रों श्री विजय बहादुर सिंह यादव, श्री वीरेन्द्रमणि त्रिपाठी, श्री मनोज कुमार तिवारी एवं विभाग के समस्त शिक्षणेतर कर्मचारी बन्धुओं, डायमण्ड जुबिली छात्रावास के सभी वरिष्ठ अन्तेवासियों, मित्रों तथा शुभचिन्तकों विशेषतया सर्वश्री वेद व्यास मिश्र, मनोज कुमार मिश्र, अनुराग मिश्र, शशिकान्त मिश्र, रजनीश कुमार पाण्डेय, प्रमोद कुमार पाण्डेय, सत्यप्रकाश उपाध्याय, अनूप चन्द्र अग्रवाल, रणधीर सिंह, सुनील कुमार सिंह, संजय मिश्रा, अनिल सिंह, विजयानन्द पाण्डेय, कृष्णकान्त मिश्र, बृजेश मणि त्रिपाठी, नवनीत मिश्र, राजीव द्विवेदी, राजेन्द्र कुमार उपाध्याय, लालचन्द्र शुक्ल, एवं लालचन्द्र चौबे के प्रति आभार व्यक्त करना अपना धर्म समझता हूँ जो कि किसी न किसी रूप में इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता से जुड़े रहे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली के प्रति मैं ऋणी हूँ जिसने मुझे जूनियर रिसर्च फेलोशिप प्रदान कर आर्थिक मदद् की। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय पुस्तकालय नई दिल्ली, इलाहाबाद संग्रहालय एवं पुस्तकालय इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय एवं विभागीय पुस्तकालय, प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय मुम्बई, राजकीय संग्रहालय अजमेर तथा राष्ट्रीय संग्रहालय कलकत्ता

के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनसे समय-समय पर शोध सामाग्री के संकलन में महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा। शोध प्रबन्ध के लेखन में मेरे साथ अपना अमूल्य समय देने के लिए मित्र श्री देवेश चन्द्र प्रकाश के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

अन्त में ज्ञात-अज्ञात समस्त शुभचिन्तकों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए, शोध प्रबन्ध के टंकण के लिए श्री विनोद कुमार केशरवानी को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

(मनोज मिश्र)

शारदीय नवरात्रि
सितम्बर 21, 1998

विषय - सूची

अध्याय		पृष्ठ

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

प्रथम खण्ड

अध्याय - 1

भौगोलिक स्थिति, पुरावशेष संकलन
एवं
राजनीतिक इतिहास का संक्षिप्त विवरण

भरहुत, मध्य प्रदेश के सतना जिले में, सतना शहर से लगभग 15 किलोमीटर दक्षिण तथा ऊँचेहरा स्टेशन से 7 किलोमीटर उत्तर–पूर्व की ओर स्थित है । भरहुत ग्राम पूर्व की नागौद रियासत के अन्तर्गत आता था । वर्तमान समय में वहाँ ऐसा कुछ भी नहीं बचा है, जिसे ऐतिहासिक समीक्षा के लिए सन्दर्भित किया जा सकें । भरहुत, मेहर नदी की घाटी के उत्तरी सिरे पर स्थित था, जहाँ पर उज्जैन – विदिशा से मार्ग पाटिलपुत्र की ओर मुड़ता था और कोशाम्बी तथा श्रावस्ती की दिशा में भी राजमार्ग जाता था । संभवतः उसकी स्थानीय स्थिति के महत्व को समझ कर स्तूप का निर्माण हुआ, जिससे यात्री गणों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो सके[1] । विचारणीय तथ्य यह भी है कि प्राचीनकाल में एक महापथ जो कि उत्तर कोशल तथा दक्षिण कोशल के बीच चलता था, जिस पर प्रयाग तथा चेदि के महत्वपूर्ण प्रदेश भी थे । पूर्व में मगध से भी सोन घाटी में होकर एक मार्ग इस बड़े पथ से आ मिलता था और चौथा मार्ग पश्चिम की ओर मालवा की ओर चला जाता था,[2] इस पथ पर स्तूप का निर्माण तत्कालीन सामाजार्थिक एवं धार्मिक आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए हुआ होगा । भरहुत स्तूप की महत्ता केवल इसलिए नहीं है कि यह प्राचीन है, अपितु इसकी श्रेष्ठ कलाकृतियां, तत्कालीन लोक जीवन की सुखद अभिव्यक्ति, धार्मिक विश्वास, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन, उत्सव आदि का प्रस्तुतीकरण जिस रूप में हुआ, भारतीय इतिहास के अंकन में यह कला अमरत्व को प्राप्त हो गयी है । ईसा पूर्व दूसरी सदी के लोक–मानस का यह संकलन अपने आपमें निश्चित ही सर्वश्रेष्ठ है ।

नवम्बर, 1873 में सर अलेग्जेण्डर कनिंघम ने सर्वप्रथम अपने पुरातात्विक अन्वेषण सहायक जे0डी0 बेगलर के साथ भरहुत के स्तूप तथा बेष्ठनी अभिलेखों को उद्घाटित एवं प्रकाशित किया । स्तूप की वेदिका एवं तोरणद्वार के जो भी अवशेष कनिंघम को मिले थे वे आजकल राष्ट्रीय संग्रहालय कलकत्ता में देखे जा सकते हैं । इसके बाद भी भरहुत स्तूप के अवशेष समीपवर्ती गांवों से भी मिले थे, विशेषकर पतौरा और भटनवाड़ा से । बी0एम0 बरूआ और बी0एम0 व्यास ने भी भरहुत के अवशेषों

का पुनः अन्वेषण किया था । बी0एम0 व्यास को भरहुत की वेदिका के जो भी अवशेष मिले थे वह आजकल इलाहाबाद संग्रहालय में देखे जा सकते है[3] । कुछ अन्य अवशेष रामवन संग्रहालय सतना, भारत कला भवन वाराणसी, पुरातत्व संग्रहालय सागर विश्वविद्यालय, प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय बम्बई (मुम्बई) एवं अमेरिका की फ्रीयर गैलरी में सुरक्षित हैं । इलाहाबाद संग्रहालय में भरहुत वेदिका के 54 खण्ड संग्रहित हैं, जिनमें 32 स्तंभ है, एक कोणक स्तम्भ, तीन सूचियाँ, 14 उष्णीष हैं तथा एक स्तम्भ शीर्ष का खण्डित भाग है, दो अन्य शिलाखण्ड हैं ओर एक सीढ़ी का भाग है । पूर्व में कनिंघम को 49 स्तम्भ, तथा 16 उष्णीष प्राप्त हुए थे जिनमें अधिकांशतया कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है[4] ।

भरहुत से प्राप्त उत्खनित सामाग्रियों में दो प्रकार के तथ्यों का संकलन मिलता है, कथा सूत्रों का शिलांकन तथा अभिलेख । भरहुत की कला का स्वरूप बहुआयामी है । इसमें सूर्य, लक्ष्मी, इन्द्र और अग्नि जैसे हिन्दू – देवी – देवता तो समाहित ही हैं, इसके साथ–साथ इसमें बुद्ध का प्रतीकात्मक प्रदर्शन एवं इनके पूर्व जन्मों के उपाख्यानों को भी समाहृत किया गया है । इसका स्वतः प्रवर्तन हुआ है । इसे किसी राजकीय कला शैली का अंग नहीं माना जा सकता है । इसमें पूर्वकालीन कला में प्रयुक्त काष्ठ उपकरण को अनुत्साहित किया गया है, तथा अधिक स्थायी पाषाण उपकरण के प्रयोग को प्राथमिकता दी गयी है । कथा के दृश्यों का अंकन कला के उत्कृष्ट नमूनों के रूप में मिलता है, जिससे तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थिति का परिचय मिलता है । प्रतीत होता है कि बहुत से शिल्पी स्थानीय नहीं थे, अपितु संभवतः पश्चिमोत्तर भारत से आये थे । कुछ अभिलेख ऐसे हैं जो कि कथा – प्रसंग को स्पष्ट करते हैं, जबकि कुछ अभिलेख स्वतंत्र रूप में भी मिलते हैं । पूर्वी द्वार के संबलों पर खरोष्ठी के अक्षर आकारों के प्रयुक्त होने के आधार पर सर जान मार्शल ने शिल्पियों का मूल निवास पश्चिमोत्तर भारत माना है । इस खण्ड में आकृतियों का उभाड़ भी अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट

माना गया है। स्वतंत्र रूप में मिलने वाले अभिलेखों में प्रायः दानकर्ताओं के नाम उल्लिखित हैं। यदि कथा दृश्यों के साथ प्राप्त अभिलेख कथा सूत्रों को प्रमाणित करते हैं तो ये स्वतंत्र अभिलेख तत्कालीन व्यवसाय, सामाजिक रीतियां, परम्पराएं, धार्मिक विश्वास, नामों की परम्परा आदि व्यक्त करते हैं। भरहुत की वेदिका में जिन आख्यानों को उकेरा गया है, उनमें वह ओजस्विता और आवेग नहीं मिलता जो गौर्यकालीन कला में है। उनमें वह लचीलापन और स्वतंत्रता नहीं है, जो सांची की कला में है। वस्तुतः उनमें अपनापन दिखाने वाली सहजता और अकृत्रिमता है। उनमें समाज के समष्टि–परक स्वरूप को सन्निदर्शित करने की चेतनता दिखाई देती है। उनमें समाज का एकल प्रतिरूप चित्रांकित नहीं है। उनमें बौद्ध परिवेश के नैतिक पक्ष को अधिक उन्नमित कर चित्रांकित किया गया है।

भरहुत का प्राचीन नाम क्या रहा होगा ? इस पर विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से प्रकाश डाला है। कोसलराज प्रसेनजित् के पुरोहित बावरी की कथा में उज्जैन और कौशाम्बी के राजपथ पर स्थित नगरों में विदिशा आदि स्थानों के नाम मिलते हैं, जिनमें एक–दो को कनिंघम ने भरहुत का प्राचीन नाम माना है। टॉलेमी की 'ज्याग्रफी' में उज्जैन से पाटिलपुत्र के पथ पर स्थित नगरों में BARDAOTIS का उल्लेख मिलता है, जो कनिंघम के अनुसार 'भरहुत' नाम से सम्बन्धित है। तिब्बतीय 'दुल्व' में भी शाम्यक का उल्लेख है जो कपिलवस्तु से निष्कासित होकर 'बगुद' में आया और वहाँ उसने एक स्तूप का निर्माण किया। कनिंघम के अनुसार 'बगुद' का तात्पर्य संभवतः भरहुत ही रहा होगा।[5] डा0 भगवत शरण उपाध्याय प्रस्तावित करते है कि 'भरहुत' का नाम संभवतः भरों अथवा राजभरों (आदिम जाति) के सम्पर्क से पड़ा, भरों ने "कभी उत्तर और मध्य भारत के अनेक खण्डों में अपने राज्य स्थापित किए थे। यह (भरहुत) प्रदेश भी कभी भरों के भोग का साधन बना जिससे तीर भुक्ति (आधुनिक तिरहुत, उत्तर

बिहार) की भांति उसका नाम भारभुक्ति पड़ा और जो पीछे तिरहुत की भाँति ही भरहुत कहलाया"।[6] गुप्तकाल में सम्पूर्ण साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था जिन्हें 'देश', 'भुक्ति' आदि कहते थे । ये प्रान्त अनेक जिलों (प्रदेशों अथवा विषयों) में बंटे थे । देशों के सम्बन्ध में गुप्त अभिलेख से 'शुकुलि – देश' का पता चलता है । सुराष्ट्र (काठियावाड़) डभाल (जबलपुर क्षेत्र, बाद में समय का डाहल या चेदि) तथा पूर्वी मालव की सीमा से लगा हुआ यमुना तथा नर्मदा के बीच का क्षेत्र – ये सभी सम्भवतः इसी कोटि में आते हैं । गुप्तकाल तथा गुप्तवंश की समाप्ति के प्रारम्भिक काल में हमें पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल), वर्धमान भुक्ति (पश्चिमी बंगाल), तीर भुक्ति (उत्तरी बिहार), नगर भुक्ति (दक्षिणी बिहार), श्रावस्ती भुक्ति (अवध) और अहिच्छत्र भुक्ति (रूहेलखण्ड) । इस सभी भुक्तियों के गंगा की घाटी में स्थित होने का उल्लेख मिलता है।[7] इसकी संभावना बनती दिखाई पड़ती है कि तीर भुक्ति (आधुनिक तिरहुत) की भांति ही भारभुक्ति आगे चलकर भरहुत हो गया हो ।

भरहुत, श्रावस्ती और कौशाम्बी को चेदि जनपद और दक्षिण कोसल से मिलाने वाले पूर्वी पथ के मध्य भाग में स्थित था । इस राजमार्ग पर दो महत्वपूर्ण क्षेत्र थे, एक तो मगध से सोनघटी तक का स्थल तथा दूसरा कलिंग के समुद्रतट से गोंडवाना के वन प्रदेश तक का भू–खण्ड । भरहुत में स्तूप का निर्माण तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया । अनेक छोटे–बड़े गृहस्थ व्यापारियों ने उसमें भाग लिया, जैसा कि उनके दान के सूचक छोटे लेखों से ज्ञात होता है । धनी व्यापारियों ने अपनी सम्पत्ति का उपयोग स्तूप की रूप समृद्धि के लिए किया । धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत जनता चमत्कार तथा लीलाओं (जन्म कथा) को प्रस्तरों पर खुदा देखकर आदर से नतमस्तक होती थी, वास्तव में इन प्रदर्शनों का यही लक्ष्य भी रहा होगा ।

भरहुत का राजनीतिक इतिहास तिमिरावृत है । ऐसा प्रतीत होता है कि पाटिलपुत्र, विदिशा, कौशाम्बी, उज्जयिनी आदि नगरों की भांति यह राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र नहीं था, यह मुख्यत· एक सांस्कृतिक एवं धार्मिक केन्द्र था । व्यापारिक दृष्टि से भले ही इसका महत्व रहा हो परन्तु इसका अपना कोई स्वतंत्र राजनीतिक महत्व नहीं था।[8] भरहुत का क्षेत्र अनुमानतः 'आटवी राज्य' के अन्तर्गत रहा होगा । 'आटवी' शब्द अभिलेखों एवं प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है यथा – "परिचारिकीकृत सर्वाटविक राज्यस्य" (प्रयाग प्रशस्ति 21वीं पंक्ति) । समुद्रगुप्त की विजयों में आटविक विजय का वर्णन मिलता है । के पी जायसवाल ने इसे बघेलखण्ड और पूर्वी बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित किया है।[9] फ्लीट महोदय ने इसे एक ओर आलवक (गाजीपुर) तो दूसरी ओर डभाल (जबलपुर क्षेत्र) के वन प्रांतर का क्षेत्र माना है।[10] हेमचन्द्र राय चौधरी का भी यही मानना है।[11] संक्षोभ के खोह ताम्रलेख (गुप्त संवत 209 = 529 AD) से ज्ञात होता है कि उसके पूर्वज डभाल (जबलपुर) के परिव्राजक महाराज हस्तिन के अधिकार क्षेत्र में अठारह जंगली राज्य सम्मिलित थे (साष्टा दशाटवी – राज्यभ्यन्तरं डभाला – राजमन्वयागतम्) । लगता है कि प्रयाग प्रशस्ति में इन्हीं जंगली राज्यों की ओर संकेत किया गया है । संध्याकर नन्दिन की रामचरित – टीका में इन्हीं राज्यों को 'कोटाटवी' कहा गया है । कतिपय प्राचीन अभिलेखों में 'सहलाटवी' एवं 'बटाटवी' नामक जंगली राज्यों का उल्लेख मिलता है।[12] सुधाकर चट्टोपाध्याय ने यह मत प्रस्तावित किया है कि संभव है कि समुद्रगुप्त कालीन आटविक राज्यों में उपर्युक्त वन–राज्य भी सम्मिलित रहे हो।[13] भरहुत का क्षेत्र 'आटविक' राज्य के अन्तर्गत आता है । मौर्य शासन काल में आटवी, मालवा, विदिशा, कलिंग आदि भू–भागों पर मौर्यो का ही शासन रहा है, मौर्यो के बाद शुगों के हाथ में राज सत्ता आने पर यह क्षेत्र शुंग राजाओं को हस्तगत हो गया।[14]

भरहुत के स्तूप का निर्माण शुंगकाल में ही हुआ, इसके पक्ष में विद्वानों ने उस अभिलेख की ओर ध्यान आकर्षित कराया है जो कि स्तूप के पूर्वी – तोरण द्वार

पर स्थापित था और जिसमें यह उल्लेख मिलता है कि शुंगों के राज्यकाल में तोरणद्वार का निर्माण हुआ, प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया धनभूति के द्वारा सम्पन्न हुई । वंश श्रृंखला में धनभूति को वात्स्यीपुत्र, वात्स्यी को अंगारद्युत का पुत्र, अंगारद्युत को गौप्तीपुत्र तथा विश्वदेव का पौत्र, विश्वदेव को गार्गी पुत्र बताया गया है।[15] शुंगकाल में तोरण, वेदिका तथा शिलाकर्म आदि के भेंट किये जाने का उल्लेख भरहुत के अभिलेखों में प्राप्त होता है।[16] भरहुत के पूर्वी तोरण पर 'वाच्छिपुत धनभूति का एक अभिलेख है । इसके अतिरिक्त इन अभिलेखों में वात्स्यीपुत्र धनभूति नामक राजा के पिता गौप्तीपुत्र अंगारद्युत (प्राकृत आगरजु), पितामह गार्गीपुत्र विश्वदेव (प्राकृत विसदेव) पुत्र कुमार व्याधपाल (प्राकृत वाधपाल) के नाम प्राप्त हुए है । इन अभिलेखों से इस तर्क के निश्चित प्रमाण हैं कि स्तूप का निर्माण शुंग काल में ही हुआ । आलोचित अभिलेख भरहुत स्तूप के पूर्वी – तोरण द्वार पर स्थापित एक स्तम्भ पर मिला था जो कि सम्प्रति इण्डियन म्युजियम कलकत्ता में सुरक्षित है । सम्बन्धित अभिलेख की मूल पंक्तियां निम्नोक्त है –

सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस ।
पोतेण गोतिपुतस आगरजुस पुतेण ।।[17]

वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां ।
सिलाकमंतो च उपंण ।।[18]

भरहुत के वेष्ठनी अभिलेख में धनभूति को सन्दर्भित किया गया है । प्रस्तुत अभिलेख को पहली बार कनिंघम ने ही प्रकाशित किया था।[19] अभिलेख में धनभूति को राजा की उपाधि दी गयी है (धनभूतिस राजानो), जबकि पूर्व विवेचित अभिलेख में उसे कोई भी राजकीय उपाधि नहीं दी गई है, यद्यपि उसके पितामह को राजा की उपाधि अवश्य दी गई है।[20] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्तूप के निर्माण की क्रिया में धनभूति का महत्वपूर्ण सहयोग था । परन्तु यह विवादास्पद है कि उक्त राजा

भरहुत क्षेत्र के स्वामी भी थे । भरहुत के अभिलेखों में अनेक नगरों के व्यक्तियों द्वारा वेदिकाओं आदि के विभिन्न भागों के दान का उल्लेख है । यद्यपि यह संभव है कि धनभूति नाम का राजा भी ऐसे ही किसी अन्य प्रदेश का राजा हो जो केवल 'उत्सर्ग' के धार्मिक कृत्य द्वारा ही भरहुत से सम्बन्धित हो । यह तर्क अत्यधिक निकट है कि धनभूति ने भरहुत में उत्सर्ग इसलिए किया कि यह क्षेत्र उसके अधिकृत क्षेत्र के अन्तर्गत था । धनभूति के राज्य क्षेत्र की भरहुत के अभिलेख – संदर्भ में स्थापना करने के लिए यह ध्यान रखना होगा कि यद्यपि वह इन अभिलेखों में अपने राज्य का उल्लेख नहीं करता है, तथापि वह स्पष्ट घोषित करता है कि शुंगों के राज्यकाल (सुगनं रजे) में भरहुत के तोरण का निर्माण उसने कराया । धनभूति शुंगों के अधीन राजा रहा होगा, तभी उसने शुंगों के शासनकाल का उल्लेख किया । अपने स्थान का उल्लेख उसे अनावश्यक प्रतीत हुआ, क्योंकि अपने शासन क्षेत्र में वह सुविख्यात रहा होगा । धनभूति के अभिलेख में उसके निवास स्थान का स्पष्ट उल्लेख न होना और अन्य दानकर्ताओं के नाम के साथ उनके स्थान का स्पष्ट उल्लेख होना, यह सिद्ध करता है कि सामान्य व्यक्तियों को अपनी पहचान के लिए नाम के साथ निवास – स्थान का परिचय भी देने की आवश्यकता पड़ती थी जबकि धनभूति को, जो राजा था, अपने निवास का नामोल्लेख करने की आवश्यकता नहीं थी।[21] शुंग राज्य को सन्दर्भित करने वाले तोरण द्वार के समीप स्थित एक स्तभांकित भग्न अभिलेख का उल्लेख किया जा सकता है जिसे भी पहली बार कनिंघम ने प्रकाशित किया।[22] सम्बन्धित खण्डित अभिलेख की पंक्तियां निम्नोक्त हैं – (1) सगानरज (2) अगरजु (3) तोरणं ।

विद्वानों में अक्सर यह प्रश्न संदर्भित होता है कि भरहुत के अभिलेकाकंनों में शुंग का तात्पर्य पुष्यमित्र से माना जाय अथवा नहीं ? दिव्यावदान के साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है कि पुष्यमित्र मौर्य वंश परम्परा से सम्बन्धित था, तथा इस ग्रन्थ में उसे बौद्धों का प्रताड़क भी घोषित किया गया है । मालविकाग्निमित्रम् में पुष्यमित्रके पुत्र, अग्निमित्र को बैम्बिक कुल में उत्पन्न बताया गया है । पुराण

पंक्तियों में इन नरेशो को 'शुंग' शब्द से आख्यापित किया गया है । लगभग इसी आशय का साक्ष्य हर्षचरित में भी प्राप्त होता है । किन्तु यह ध्यातव्य है कि हर्षचरित में 'शुंग' शब्द को पुष्यमित्र के नाम के साथ नहीं युक्त किया गया है, अपितु उसके वंश के एक उत्तरकालीन शासक के नाम के साथ युक्त किया गया है जो कि शुंग वंश से सम्बन्धित पौराणिक तालिका में भी संदर्भित है।[23] इसी संदर्भ में हरिवंश का एक महत्वपूर्ण श्लोक चर्चा का विषय बनाया जाता है, जो निम्नोक्त है –

"औद्भिज्जो भविता कश्चित सेनानी काश्यपो द्विजः ।
अश्वमेघं कलियुगे पुनः प्रत्यहरिष्यति ।"

(हरिवंश, 3, 2, 40)

के पी. जायसवाल ने श्लोक में संदर्भित काश्यप द्विज सेनानी का समीकरण पुष्यमित्र के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है । इस मत की सार्थकता बौधायन श्रौतसूत्र द्वारा न्यूनांशतः स्थापित की जा सकती है, जिसमें बैम्बिकों को काश्यप घोषित किया गया है।[24] वेदुष्य समीक्षा में इस प्रश्न पर भी विचार करने का प्रयास किया गया है कि वस्तुतः 'सुगनं रजे' वाक्यांश को संदर्भित करने वाला आलोचित अभिलेख लिपि विषयक विशेषताओं के आधार पर किस समयावधि में रखा जा सकता है । अतएव ऐसी स्थिति में इसका समय पुष्यमित्र के समय के लगभग 50 वर्ष के बाद का माना जा सकता है।[25] ऐसी स्थापना संशय से परे नहीं है क्योंकि इस अभिलेख के अक्षर आकारों में अभी पुरातनता की प्रवृत्ति दिखाई देती है । भरहुत के अभिलेखों में शुंग राज्य को संदर्भित करने वाले दूसरे अभिलेख के अक्षर 'स' एवं 'त' द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के ही प्रतीत होते हैं । बूँलर ने इन अक्षरों को शुंग प्रकार की संज्ञा देते हुए वस्तुस्थिति को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है । इन अभिलेखों को शुंगकालीन मानने में कोई हानि नहीं दिखाई पड़ती है तथा ऐसी संभावना भी आपत्ति जनक नहीं कही जा सकती है कि उन्हें पुष्यमित्र के शासन काल में एवं शासन सत्ता के अन्तर्गत ही अंकित कराया गया था।[26]

राजाओं में धनभूति का नाम मथुरा के एक अभिलेख में प्राप्त हुआ है । धनभूति के राज्य का प्रमुख नगर मथुरा था अथवा कौशाम्बी और भरहुत मथुरा के राज्य शासन के अन्तर्गत था या कौशाम्बी के, यह विवादास्पद प्रश्न है । ल्यूडर्स महोदय ने नाम साम्य को अल्प साक्ष्य कहकर मथुरा और कौशाम्बी के राजाओं को परस्पर भिन्न माना है।[27] अर्थात् उनके अनुसार मथुरा के जिस धनभूति का उल्लेख है वह भरहुत अभिलेख में प्राप्त धनभूति न होकर कोई दूसरा राजा हो सकता है । के0डी0 बाजपेयी[28] ने कौशाम्बी में एक शुंग राज शाखा का अनुमान किया है जिसका प्रारम्भ उनके अनुसार ई0पू0 दूसरी शती के मध्य में शुंगवर्मा ने किया।[29] धनभूति आदि इसी वंश के राजा थे।[30] विश्वदेव अंगराज (अंगारद्युत ?) और धनभूति को बाजपेयी ने शुंगवर्मा का वंशज माना है । उनके अनुसार कौशाम्बी के राजवंशों ने भरहुत को संरक्षण प्रदान किया और भरहुत इस राज्य में सम्मिलित था । बाजपेयी जी ने धनभूति का समय ई0पू0 पहली शताब्दी से कुछ पहले ही माना है । धनभूति के नाम की मुहर भी कौशाम्बी से प्राप्त हुई है जो उसके कौशाम्बी नरेश होने की धारणा की पुष्टि करती है । बाजपेयी जी को 'अगरजुस' लेख सहित दो सिक्के भी भरहुत से प्राप्त हुए है, इनमें एक छोटे आकार का है, दूसरा कुछ बड़ा है । इन सिक्कों के साथ अग्निमित्र तथा बृहस्पतिमित्र के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं । बाजपेयी जी का अनुमान है कि अगरजु आदि राजा जो कौशाम्बी में शुंगों के आधिपत्य में शासन कर रहे थे उनका शासन भरहुत तक फैला हुआ था।[31] कौशाम्बी में ई0पू0 दूसरी शती से दूसरी शताब्दी ई0 तक मित्र वंश का राज्य रहा । इसके बाद वहां मघों का शासन हो गया । मघों का शासन समुद्रगुप्त की दिग्विजय के साथ समाप्त हो गया । मघवंशीय अन्तिम शासक रूद्रदेव रहा होगा जिसका एक सिक्का झूँसी से प्राप्त हुआ है।[32] मघों का राज्य कौशाम्बी तथा दक्षिण कोसल तक विस्तृत था और भरहुत पर इनके शासन की संभावना है।[33] मघों का शासन बाजपेयी जी के अनुसार लगभग 335 ई0 तक रहा । इसके बाद समुद्रगुप्त ने इसका अन्त कर दिया।[34] वी0वी0 मिराशी महोदय ने मघों की शासन सत्ता को मध्य प्रदेश में स्थित बन्धोगढ़ तक माना है जिसका अधिकांश भाग प्राचीन

चेदि मण्डल में सम्मिलित था । उक्त विद्वान ने ऐसी भी स्थापना का प्रयास किया है कि उन शासकों की राजधानी के विषय में निश्चय के साथ कुछ कहा नहीं जा सकता तथापि अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि संभवतः इनकी राजधानी कौशाम्बी में ही प्रतिष्ठित थी; जिसे प्राचीन वत्स जनपद की राजधानी होने का सुयोग प्राप्त हुआ था; तथा जहाँ इन शासकों की अधिकांश मुद्राएं एवं प्रचुर संख्या में अभिलेख उत्खनित एवं सर्वेक्षित हुए हैं।[35] बी०वी० मिराशी महोदय की संभावना इस दृष्टिकोण से सत्यापित होती है कि प्राचीन पूर्वांचल के व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण कौशाम्बी को अतीव महत्वपूर्ण नगर माना जाता था । सुधाकर चट्टोपाध्याय की स्थापना के अनुसार व्यापारिक महत्व के कारण उत्तर भारत के विभिन्न राजवंशों ने इसे अपने नियंत्रण में रखना चाहा था, तथा अन्ततोगत्वा साम्राज्यिक गुप्त नरेशों ने इसे अपने साम्राज्य का अंग बना लिया था।[36] समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रस्तुत सम्राट ने आर्यावर्त के सभी शासकों की सत्ता को अपनी "प्रसभोद्धरण" एवं "उन्मूलन" की नीति के अनुसार समूल नष्ट कर दिया था । ऐसी स्थिति में गुप्तकाल में इन नरेशों के अस्तित्व की संभावना नहीं की जा सकती है।[37]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मघों के बाद उनके क्षेत्रों पर गुप्त राजाओं का राज्य हो गया । आटविक राजा इस क्षेत्र से संबंधित थे । भरहुत के साथ के क्षेत्रों नचना, पन्ना, लखूराबाग आदि में गुप्तकालीन मंदिरों के अवशेष मिले हैं जिससे इस क्षेत्र पर उनका आधिपत्य सिद्ध होता है । दक्षिण कोशल के क्षेत्र पर बाद में अन्य राजवंशों का प्रभुत्व रहा है । भरहुत का अपना किसी भी समय का इतिहास स्पष्ट नहीं है जितना कि उत्खननों के पश्चात हो जाना चाहिए था । मौर्यो के पूर्व एवं पश्चात् काल में यह वत्स राज्य का भाग रहा होगा जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी । फिर यहां शुंग राजा आये तथा मित्र वंशीय राजा हुए, जिसके बाद मघों का राज्य रहा । तदन्तर भरहुत क्षेत्र बाद में गुप्त साम्राज्य का भी अंग रहा । भरहुत का अपना स्वयं कोई भी राजनैतिक इतिहास नहीं रहा है।[38] भिन्न-भिन्न राजवंशों के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत यह होने वाले परिवर्तनों का साक्षी रहा । भरहुत के राजनैतिक इतिहास

के सफल उद्घाटन के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है और यह तभी संभव हो सकेगा जबकि व्यापक स्तर पर इस क्षेत्र विशेष में उत्खनन सम्पादित किये जायें। भरहुत के क्रमबद्ध इतिहास लेखन के लिए पुरातात्विक उत्खननों के बिना बहुत कुछ अतीत के गर्भ में ही रह जायेगा ।

*****

सन्दर्भ निर्देश

1 उपाध्याय वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, 1972, पृष्ठ 57 ।

2. अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1966, पृष्ठ 138–139 ।

3 पाण्डेय जयनारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 58 ।

4. मित्र, रमानाथ, भरहुत, भोपाल, 1971 (भूमिका पृष्ठ 15) ।

5 तत्रैव, पृष्ठ 17/1 (भूमिका)

6. तत्रैव, पृष्ठ 17 (भूमिका)

7 रायचौधरी हेमचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1971, पृष्ठ 416 – 417 ।

8. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 17 (भूमिका)

9. तत्रैव, पृष्ठ 17/2, जायसवाल, के0पी0 पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐंशेण्ट इण्डिया, पृष्ठ 538 ।

10. राय, उदयनारायण, गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1986, पृष्ठ 131/3, कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम जिल्द 3, पृष्ठ 114 ।

11. रायचौधरी, हेमचन्द्र, भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद 1971, पृष्ठ 399 ।

12. राय, उदयनारायण, तत्रैव, पृष्ठ 131 ।

13. चट्टोपाध्याय सुधाकर, अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया, पृष्ठ 190 ।

14 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 18 (भूमिका)

15 राय, एस0एन0, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ 177 ।

16 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 18/1 (भूमिका), कार्पस अभिलेख सं0 1, 2, 3, 4, 12 ।

17. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 18 (भूमिका) ।

18. राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 176 ।

19. कनिंघम ए0, द स्तूप ऑव भरहुत, 1879, पृष्ठ 142 संख्या 54, फलक 56 ।

20. राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 177 ।

21. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 18 (भूमिका) ।

22 राय0 एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 177/3, स्तूप ऑव भरहुत पृष्ठ 128, संख्या 2, फलक 53 ।

23. राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 177/4, हेमचन्द्र रायचौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐंशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1972, पृष्ठ 328, पाद टिप्पणी – 2 ।

24. राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 177/ 5, बौधायन श्रौतसूत्र (कैलण्ड सम्पादित) भाग 3, पृष्ठ 339 ।

25. राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 177/ 6, जे0एस0 नेगी, ग्राउण्डवर्क ऑव ऐंशेण्ट इण्डियन हिस्ट्री, इलाहाबाद, 1958, पृष्ठ 382, पाद टिप्पणी 10 ।

26. राय0, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 178 ।

27. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 18/2 (भूमिका), कार्पस, पृष्ठ 13 ।

28 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/1 (भूमिका), बाजपेयी, के0डी0, जर्नल ऑव न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑव इण्डिया, जिल्द 26, भाग – 1 (1964), पृष्ठ 4 ।

29 मिश्र रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/2 (भूमिका), बाजपेयी, के0डी0, इण्डियन न्यूमिस्मैटिक क्रानिकल्स, पटना, पृष्ठ 5 ।

30. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/3 (भूमिका), बाजपेयी, के0डी0, जर्नल ऑव न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑव इण्डिया (1964), पृष्ठ 4 ।

31 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/4 (भूमिका) ।

32 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/5 (भूमिका) ।
जर्नल ऑव न्यूमिस्मैटिक सोसायटी, जिल्द 11, पृष्ठ 13–14 ।

33 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/6 (भूमिका) ।

34. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19/7 (भूमिका), बाजपेयी कृष्णदत्त, इण्डियन न्यूमिस्मैटिक क्रानिकल, 3(1), पृष्ठ 18 ।

35. राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 203/25 ।

36. तत्रैव, पृष्ठ 204/26, चट्टोपाध्याय सुधाकर, अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्दन इण्डिया, पृष्ठ 142 ।

37 राय, एस0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 205 ।

38. मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 19–20 (भूमिका) ।

*****

अध्याय - 2

भरहुत के स्तूप का ऐतिहासिक
एवं
संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य

भारतीय वास्तुकला के अतीतकालीन दृष्टान्तों में स्तूप प्राचीनतम माने गये हैं । स्तूप – संस्कृत – स्तूपः अथवा प्राकृत थूप 'स्तुप्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है एकत्रित करना, ढेर लगाना आदि । अतएव, मिट्टी के ऊँचे टीले के लिए स्तूप शब्द का प्रयोग होने लगा । साधारणतया स्तूप का सम्बन्ध बौद्ध मत से प्रकट होता है, इसीलिए बौद्ध साहित्य दीघनिकाय (2/142) अंगुत्तर निकाय (1/177) तथा मझिम निकाय (2/244) में थूप शब्द का अधिकतर प्रयोग किया गया है । कुछ एक विद्वानों ने स्तूप शब्द को योरोपीय शब्द टुम्ब (Tomb) से विकसित माना है परन्तु अंग्रेजी शब्द से स्तूप का विकास स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता है । दोनों में केवल सांयोगिक एवं ध्वन्यात्मक समता है । स्तूप के लिए 'चैत्य', शब्द का भी प्रयोग साहित्य में मिलता है चैत्य शब्द 'चि' (चयने) धातु से निकला है, क्योंकि इसमें प्रस्तर या ईंट चिन कर (चुनकर) भवन निर्माण किया जाता है । चैत्य शब्द चित् या चिता से भी सम्बद्ध है । चिता की राख को (अवशेष) एक पात्र में रखकर स्मारक बनाया जाता है जिसे स्तूप कहते हैं । रामायण में श्मशान की चैत्य से तुलना की गई है (5/22/29) । अमरावती के लेखों में स्तूप को 'चेतिय' या महाचेतिय कहा गया है । अतएव स्तूप को चैत्य का पर्यायवाची शब्द भी माना जा सकता है।[1] जैन या बौद्ध साहित्य में किसी भी पुनीत भवन अथवा निवास स्थान, वृक्ष या आसन आदि को चैत्य कहा गया है । इससे स्पष्ट है कि चिता से सम्बन्धित 'चैत्य' अर्थ शब्द का केवल संकुचित रूप व्यक्त करता है ।[2] मृतकों के अस्थि – अवशेषों पर स्तूप बनाने की प्रथा बुद्ध के पहले से ही इस देश में थी।[3] यजुर्बेद (35/15), शतपथ ब्राह्मण (13/8/3/11), तैत्तरीय ब्राह्मण (3/1/1/7) तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र (4/5) आदि से ऐसे साक्ष्य मिले हैं । रामायण (5/22/29) के वर्णन के आधार पर यह कहा जासकता है कि महापुरूषों या नृपतियों की स्मृति में चैत्य (स्तूप) बनते थे।[4] बौद्ध धर्म में यह प्रथा विशेष लोकप्रिय हो गयी । प्रारम्भ में स्तूप निर्माण की परम्परा का प्रचलन जैन धर्म के अनुयायियों में भी था । कालान्तर में स्तूप का सम्बन्ध बौद्ध धर्म के महान व्यक्तियों और विशिष्ट आचार्यों आदि के सम्मान में निर्मित स्मारक से हो

गया।[5] दीघनिकाय के महापरिनिब्बान सुत्त में तथागत बुद्ध और आनंद का एक परिसंवाद है जिससे यह विदित होता है कि बुद्ध ने आनन्द को आदेश दिया था कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी अग्नियुक्त अस्थियों को स्तूपों में समाहित किया जाये और यह स्तूप 'चतुम्महापथ' के विभिन्न स्थानों पर उसी भाँति निर्मित किए जायें जैसे चक्रवर्ती राजाओं के लिए किये जाते थे । बुद्ध के देहावसान के बाद उनकी अस्थियों का विभाजन किया गया था और उन पर आठ महान स्तूपों की रचना की गई थी । एक परम्परा के अनुसार अशोक ने भी 84,000 स्तूपों का निर्माण कराया था । बौद्ध साहित्य में मुख्यतः तीन प्रकार की धातुओं का उल्लेख प्राप्त होता है, शरीर धातु, पारिभोगिक धातु और निद्देशिक धातु । इन पर स्तूपों का निर्माण कराया जाता था । अशोक द्वारा निर्मित स्तूपों की संख्या का वर्णन यद्यपि अतिरंजित है तथापि यह उल्लेखनीय है कि देश के विभिन्न स्थानों पर किये गये उत्खनन में आंशिक रूप से मौर्यकालीन स्तूप निर्माण के चिह्न प्राप्त होते हैं । जैसे – पिपरहवा (नेपाल के निकट बस्ती वर्तमान में सिद्धार्थ नगर जिले में), मीरपुर खास (सिन्ध, पाकिस्तान), धर्मराजिका (तक्षशिला, पाकिस्तान), धर्मराजिका (सारनाथ, उ0प्र0), सांची (मध्य प्रदेश) आदि । पिपरहवा से प्राप्त अवशेषों में एक पत्थर की मंजूषा भी प्राप्त हुई है जिसमें पुरातन ब्राह्मी (लगभग मौर्यकालीन) लिपि में लेख हैं । भगवान बुद्ध की शरीर धातुओं का यह निधान सुन्दर कीर्ति शाक्यों के भ्राता, भगिनीपुत्र और स्त्रियों के द्वारा स्थापित किया गया । इससे बुन्द्ध की शरीर धातु से संबंधित आस्थाओं की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।[6] बौद्ध परम्परा के अनुसार बुद्ध के निर्वाण के बाद उत्तर भारत के तत्कालीन शासकों और एक ब्राहमण ने उनकी अवशिष्ट अस्थियों तथा भस्म आदि के आठ भाग किये तथा अपने-अपने भाग के ऊपर प्रत्येक ने एक-एक स्तूप का निर्माण कराया । दीघनिकाय के महापरिनिष्बान सुत्त में इन निर्माताओं के नाम मिलते हैं – मगध नरेश अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अलकप्प के बुलिय, रामगाम के कोलिय वेठदीप का द्रोण नामक एक ब्राह्मण, पावा के मल्ल, कुशीनारा के मल्ल । पिप्पलिवन के मोरियों ने चिता के अंगारों के कोयले को लेकर उस पर

स्तूप बनवाने का भी प्रमाण मिलता है । पिप्पलिवन के कोलिय अवशिष्ट अस्थियों को न प्राप्त कर सके थे।[7]

वासुदेवशरण अग्रवाल ने स्तूपों की निर्माण परम्परा की प्राचीनता वैदिक सन्दर्भो के आधार पर भी प्रमाणित किया है।[8] ऋग्वेद (7/2/11) में अग्नि की उठती ज्वालाओं को स्तूप कहा गया है । वैदिक साहित्य में हिरण्य स्तूप का उल्लेख मिलता है और ऐसे दृष्टान्त भी हैं जिनमें अग्नि और सूर्य आदि देवता एक 'महाज्योति स्तम्भ' के रूप में कल्पित हैं । ज्योतिर्मय यूप, स्तम्भ अथवा स्कम्भ के उल्लेख वैदिक साहित्य से प्राप्त होते हैं । वासुदेवशरण जी ने थूप के प्रतीकात्मक संकेत की व्याख्या करते हुए इसके भूमिस्थ भाग से शीर्ष तक के विभिन्न भागों में त्रिलोक की स्थिति का अन्तर्निहित भाव स्पष्ट किया है और थूप के इस स्परूप को समस्त ब्रह्माण्ड के संकेतात्मक चिह्न के रूप में ग्रहण किया है । आपका विचार है कि स्तूपों की तीन वेदिकाओं और तीन मेधियों के निर्मित रूपों में त्रिपाद ब्रह्म का बोध होता है।[9] महावंश से ज्ञात होता है कि स्तूप के निर्माता को थूप कम्म, और निर्माण पर्यवेक्षक को कम्माधिट्टायक कहा जाता था । स्तूप निर्माण की क्रिया से सम्बन्धित संस्कारों का भी वर्णन 'महावंश' से प्राप्य है।[10] स्तूप निर्माण एक महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य था जिसमें सर्वप्रथम एक निश्चित स्थान पर थूप की स्थापना की जाती थी । इसके पश्चात विभिन्न संस्कार आदि सम्पादित किये जाते थे जिनमें पुरोहित, राजा, अमात्य आदि भाग लेते थे । स्तूप के निर्माण की नाप जोख और चैत्य तथा 'चैत्पावर्त' भागों का नियोजन किया जाता था । निर्माण सामग्री में 'चुण्णित शिलाखण्ड', 'पासाणकोट्टिम' (पाषाण चूर्ण) 'इट्टका' (ईंट) आदि का उल्लेख प्राप्त होता है । अलंकरण के विभिन्न नमूनों में अष्ट मांगलिक चिह्न, चतुष्पद पशुपंक्ति, हंसपक्ति, 'सुवर्णघंटापंक्ति', 'हार पद्मक', विभिन्न कोटि के देवता जैसे 'अंजलिपग्गहा देवता', 'पद्मग्राहक देवता' आदि तथा बुद्धचरित एवं अन्य दृश्यों का अंकन निर्देश प्राप्त होता है।[11]

जिस समय 1873 ईस्वी में कनिंघम ने भरहुत को अपने सर्वेक्षण का विषय बनाया, इसके अनेक अवशेष अपने स्थान से हटाये जा चुके थे । इन्हें स्थानीय ग्रामवासियों ने अपने व्यक्तिगत आवासों के निर्माणार्थ स्थानान्तरित किया था । कनिंघम महोदय को केवल वही पुराकालीन प्रतिमाएं तथा विसम्बद्ध पुरा – उपकरण प्राप्त हो सके थे जो भूमिगत होने के कारण स्थानीय लोगों की पहुँच में नहीं थी । कनिंघम तथा इनके सहायक बेगलर महोदय को सर्वेक्षण एवं समुत्खनन शोधों के परिणामस्वरूप 1874 ईस्वी तक पूरी वेदिका की नींव, प्रसेनजित का प्रसिद्ध स्तम्भ, उष्णीष के अधिकांश भाग तथा अनेक स्थापत्य उपकरण प्राप्त हो सके । इस प्रकार पुरातत्व शोधों के परिणाम में यह स्पष्ट हुआ कि भरहुत में कभी एक उत्कृष्ट स्तूप बना हुआ था । यह भी स्पष्ट हुआ कि यहां कभी ऐसे वास्तुकला, तक्षण कला, एवं मूर्तिकला का संज्ञापक नगर प्रतिष्ठित था, जिसके अवशेष लगभग 14 किलोमीटर की परिधि में बिखरे हुए थे । किन्तु ऐसी ऐतिहासिक जिज्ञासा का समाधान नहीं हो सका कि अन्ततः ऐसे उत्कृष्ट स्तूप की स्थापना के लिए यही स्थान क्यों चुना गया था । इस आशय का भी मत व्यक्त किया गया है कि इस स्तूप को उन आठ स्तूपों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है जिनमें भगवान बुद्ध के शरीरावशेषों को मूलतया सुरक्षित किया गया था । इस आशय का संकेतक ठोस साक्ष्य भी नहीं मिला कि इस स्थान को स्तूप निर्माण के हेतु अशोक ने चयित किया जबकि इस नरेश ने बुद्ध के अस्थियों के वितरण की योजना बनाई थी । इस संदर्भ में निम्नोक्त अवधारणा को मानने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है ।

यह विलुप्त नगरी मूलतः मैहर उपात्यका के सीमान्त में स्थित थी, जहां से भिलसा और उज्जैन को पाटलिपुत्र से मिलाने वाला मार्ग बीच में कौशाम्बी होते हुए जाता था । उक्त संभावना के संकेतक प्रचुर, अभिलेखिक साक्ष्य मिल जाता है । भरहुत की वेदिकाओं से संलग्न ऐसे अनेक अभिलेख मिलते हैं, जिनमें दानकर्ताओं के नाम तो अंकित ही हैं, इसके अतिरिक्त इन दानकर्ताओं की देशीयता का भी साथ–साथ

अंकन हुआ है। इससे पता चलता है कि भरहुत स्तूप के दर्शन एवं सम्मान के लिए भिक्षु, भिक्षुणी तथा सामान्य लोग पाटिलपुत्र, कौशाम्बी, मथुरा, पदोला (मध्य प्रदेश के विलासपुर जनपद में स्थित पण्डरिया), विदिशा, भोजपटक (भोपाल में स्थित भोजपुर), नासिक तथा करहकट (सतारा में स्थित करहद) से आया करते थे।

भरहुत के स्तूप एवं इसके चतुर्दिक बनी हुई वेदिका के समय के निश्चयार्थ कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिलता है किन्तु इतना निश्चित है कि इसका निर्माण एक ही समय में नहीं हुआ था। इसमें संयोजन एवं परिबर्द्धन श्रद्धालुओं द्वारा उनके संसाधनों के अनुरूप होता रहा। स्तूप की तिथि का निर्धारण अभिलेख तथा शैली दोनों ही आधारों पर किया जा सकता है। शुंग राजाओं ने ई0पू0 184 से ई0पू0 72 तक राज्य किया और इसी समय स्तूप का निर्माण भी हुआ होगा, इस अनुमान का आधार है भरहुत के पूर्वी तोरण पर स्पष्टतः अंकित अभिलेख "सुगनंरजे"[12]। शुंगों के राज्यकाल में धनभूति द्वारा प्रदत्त शिलाकर्म के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि स्तूप का निर्माण किसी एक समय में नहीं वरन् क्रमिक रूप से अंशतः किया गया और इसके पूर्ण होने में लगभग एक शताब्दी का समय लगा होगा। स्तूप के टीले से कनिंघम को 12 × 12 × 3.5 इंच के आकार की ईंटें प्राप्त हुई थीं।[13] इनके आकार से भी यह स्पष्ट है कि स्तूप के रूप में यह टीला संभवतः मौर्यकाल से ही विद्यमान था। फूशे ने भी इस संभावना को स्वीकार किया है कि प्रारम्भ में सम्भवतः इसको घेरती हुई एक काष्ठ वेदिका रही होगी जिसके रूप के आधार पर कालान्तर में प्रस्तर वेदिका का निर्माण किया गया।[14] कनिंघम ने ऐसा सुझाव रखा था कि मूल इष्टका निर्मित स्तूप अशोक के काल में बना था।[15] कनिंघम ने ऐसी स्थापना का प्रयास किया कि भरहुत के अभिलेखों के अक्षर आकार वस्तुतः उसी प्रकार के हैं जैसा कि अशोक के शिलालेखों एवं स्तम्भलेखों में अंकित हुए हैं तथा यह निश्चित है कि उन्हें 200 ई0पू0 के उपरान्त नहीं रखा जा सकता।[16] परन्तु इस मत की ग्राह्यता इसलिए संदिग्ध बन

बैठती है, क्योंकि वेदिका के संलग्नक अभिलेखों की प्राकृत अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त प्राकृत से भिन्न है।[17] जार्ज बूॅलर ने इन अभिलेखों की तिथि से संबंधित कनिंघम द्वारा प्रस्तावित तिथि में संशोधन लाने का प्रयास किया । भरहुत के अभिलेखों में आर्ष (Archaic) आकार की बहुलता दिखाई देती है । इन अभिलेखों में आर्षत्व (Archaism) के कारण ही उनके अक्षर आकार मौर्यन ब्राह्मी लिपि के समस्तरीय जा बैठते हैं । बूॅलर महोदय ने पूर्वकालीन मौर्यन ब्राह्मी, उत्तरकालीन मौर्यन ब्राह्मी तथा शुंगकालीन ब्राह्मी में अन्तर दिखाने का प्रयास किया है । प्रस्तुत विद्वान ने ऐसी स्थापना करने का प्रयास भी किया कि भरहुत के तोरण अभिलेखों की लिपि उस लिपि की तुलना में उत्तरकालीन प्रतीत होती है जो कि भरहुत के वेष्ठनी अभिलेखों में प्राप्त होती है । इनकी समीक्षा के अनुसार वेष्ठनी अभिलेखों की लिपि पूर्वकालीन मौर्यन ब्राह्मी की समस्तरीय है, तथापि समकालीन नहीं है । बूॅलर ने भरहुत के अभिलेखों की तिथि 150 ई0पू0 निर्धारित की है।[18] बी0एम0 बरूआ की संभावना के अनुसार भरहुत के स्तूप का निर्माण तीन स्तरों पर हुआ था । इनके अनुसार सर्वप्रथम मौर्यकाल में या उसके कुछ बाद इष्टिका निर्मित स्तूप का पाषाण शिलाओं से आच्छादन किया गया, तदनन्तर वेदिका, तोरण आदि विभिन्न युगों में बनाये गये । वेदिकाओं के निर्माण के बाद धनभूति ने शुंगों के शासनकाल में पूर्वी तोरण का निर्माण कराया।[19] पहले स्तर का संबंध प्राग् शुंग काल से है, तथा दूसरे तथा तीसरे स्तरों को शुंगकाल से संबंधित किया जा सकता है । यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता है कि पहले स्तर से संबंधित स्तूप अशोक के काल में ही निर्मित हुआ था । इसका निर्माण किसी भी मौर्य शासक के काल में हुआ होगा । संभवतः बरूआ महोदय का तात्पर्य यहाँ उत्तरकालीन मौर्य शासकों से है । वेदिका का निर्माण 125 ई0पू0 के आसपास संभावित माना जा सकता है । तथा तोरणों को उत्तरवर्ती स्तरों पर संयोजित किया गया होगा । इस प्रसंग में बरूआ ने उस अभिलेख को भी चर्चित किया है, जो पूर्वी तोरण के बाएं स्तम्भ पर अंकित किया गया है । अभिलेख की मूलपंक्तिः सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस । पौतेण गोतिपुतस आगरजुसपुतेण ।। वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां । सिलाकमंतो

च उपंण ।। (संस्कृत छाया: शुगानां राज्ये राज्ञ: गार्गीपुत्रस्य विश्वदेवस्य पौत्रेण गौप्तीपुत्रस्य अंगारद्युत: पुत्रेण वत्स्यीपुत्रेण धनभूतिना कारितं तोरणम् शिला कर्मान्त: (प्रस्तर निर्मित प्राकारादि:) च (तेन) उत्पन्न:) ।। अर्थात् शुंगों के राज्यकाल में तोरण का निर्माण, प्रस्तर तक्षण के साथ-साथ गौतमीपुत्र आगराजु के पुत्र तथा गार्गी पुत्र विश्वदेव के प्रपौत्र वात्स्यीपुत्र धनभूति के द्वारा सम्पन्न हुआ । डी0सी0 सरकार के अनुसार संभवत: विश्वदेव विदिशा के शासक किसी उत्तरकालीन शुंग नरेश का सामन्त था।[20] बरूआ के अनुसार धनभूति मथुरा क्षेत्र का शासक था । किन्तु इस तथ्य पर निश्चित नहीं है कि भरहुत का क्षेत्र भी शुंगों के साम्राज्य में सम्मिलित था । वासुदेव शरण अग्रवाल का मानना है कि इसी राजा धनभूति ने मथुरा में भी तोरणयुक्त स्तूप और एक रत्नगृह का निर्माण कराया था । धनभूति का समय 180-150 ई0पू0 के लगभग है।[21] लिपि विज्ञान के आधार पर मजूमदार महोदय ने भरहुत के अभिलेखों का समय ई0पू0 125-75 वर्ष बताया है।[22] जार्ज बूलर एवं कनिंघम इन दोनों विद्वानों के अनुसार तोरणों का समय 150 ई0पू0 के लगभग माना जा सकता है । यह कहना कठिन है कि पूरी की पूरी अन्तर्वेदिका किसी एक विशेष काल में निर्मित हुई थी । उक्त अभिलेख में केवल इतना ही कहा गया है कि तोरणों का निर्माण धनभूति ने शुंगों के राज्य में सम्पन्न कराया था । किन्तु शुंग के 112 वर्ष के सत्ता काल में यह कार्य कब सम्पन्न हुआ यह अभिलेखिक वर्णन से निश्चित नहीं हो पाता । स्थापत्य शैली के आधार पर बरूआ महोदय ने उक्त तीनों स्तरों की परिकल्पना किया है, तथा ऐसी भी सम्भावना प्रस्तावित किया है कि पूर्वी तोरण का निर्माण शुंग काल में सम्पन्न हुआ था।[23] सर जान मार्शल की संभावना के अनुसार भरहुत की प्रतिमा - निर्माण शैली मथुरा की स्थानीय शैली से सम्बन्धित थी, तथा इस नगर के शकों द्वारा अधिकृत होने के उपरान्त इसका अन्त हुआ।[24] उपरोक्त विवरणों के आधार पर भरहुत के स्तूप का सम्पूर्ण अवस्था में निर्माण प्रथम शताब्दी ई0पू0 तक होने की संभावना प्रस्तावित की गयी है, हालांकि इस आशय के संकेतक अथवा सत्यापक साक्ष्य भविष्यत् कालीन पुरातात्विक शोध - अनुशोध के परिणति पर निर्भर है ।

सम्भवतः यह कथन अतिशयोक्ति का द्योतक नहीं होगा कि भरहुत स्तूप के शोध एवं अनुशोध का इतिहास मूलतः कनिंघम के नाम से जुड़ा हुआ है । सर्वेक्षण एवं समुत्खनन के संदर्भ में जिस समय कनिंघम ने पहली बार सम्बन्धित स्थान का निरीक्षण किया, उन्हें एक विस्तृत टीला मिला । इसका ऊपरी भाग चौरस था । इसके साथ ही इन्हें एक बौद्ध बिहार के अवशेष मिले । अनुवर्ती उत्खननों एवं पास-पड़ोस के गांवों से जो पुरावशेष एकत्र किये गये, उनके आधार पर ऐसी धारणा बनाई गयी कि अपने मूल एवं अविक्षत स्तर पर यहां का स्तूप सांची के स्तूप के आधे आयाम में रहा होगा । स्तूप का मूल ढाँचा पक्की ईटों से बना हुआ था जिनका आकार 12 इंच × 12 इंच × 3.5 इंच था, उनमें से कुछ बड़ी ईटों की मोटाई 5 इंच से 6 इंच थी तथा पूरा स्तूप सुदृढ़ पाषाण पिण्डकों पर आधारित था । कनिंघम को ऐसी भी सूचना मिली कि यहाँ एक लघु स्मृति-चिह्नक मंजूषा भी मिली थी, जिसे गांव वालों ने नागौद के तत्कालीन नरेश को उपहार स्वरूप दिया था, जो अब उपलब्ध नहीं है स्तूप के आधार के बारे में आकलन किया गया कि इसका व्यास 67 फुट तथा साढ़े अठारह इंच के लगभग रहा होगा । सम्बन्धित स्थल पर अक्षत रूप में बचा हुआ स्तूप का भाग दक्षिण - पूर्व दिशा में पाया गया । इसकी लम्बाई 10 फिट और ऊँचाई 6 फिट थी । स्तूप के इसी भाग में कनिंघम को ताकों की श्रृंखला दिखाई दी । इन ताकों के बारे में आकलित किया गया कि ये ऊपर की ओर 13 5 इंच के लगभग थे, तथा नीचे की ओर 4.5 इंच चौड़े थे । पूरे ढाँचे में इनकी संख्या 120 के लगभग थी, तथा इस प्रकार प्रत्येक श्रृंखला में स्तूप के निचले भाग में 6 सौ के लगभग दीप जलाने की व्यवस्था रही होगी । स्तूप से संबंधित जो अर्द्धगोल गुम्बद प्रकाश में आया है, उसके ऊपर सम्भवतः एक हर्मिका थी । हर्मिका के चतुर्दिक एक लघु-वेदिका थी । इस वेदिका से जुड़ी छत्रयष्टि थी, जिसके अवशेष उपलब्ध नहीं हैं ।

स्तूप के परिवेष्टनार्थ अन्तर्वेदिका, एवं बहिर्वेदिका की व्यवस्था थी जिन्हें स्तम्भों, सूचियों एवं उष्णीषों से संयुक्त किया गया था । स्तूप की ऊँचाई ज्ञात नहीं

हो सकी किन्तु उसके आकार का अनुमान वेदिका पर उत्कीर्ण मूर्तियों से होता है । मूल स्तूप पत्थर और बजरी की दृढ़ नींव पर पक्की ईटों से बना था।[25] वेदिका के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चार तोरणों की व्यवस्था थी, जिससे इसका चतुष्पादीय विभाजन हुआ था । इसमें 80 की संख्या में स्तम्भ भी लगे हुए थे । वेदिका का आकार परिमंडल या गोल था मानों कोई बड़ा चक्र हो । तोरणों से वह चार फांको में बँट गई थी । स्तूप और वेदिका के बीच की 10 फुट 8 इंच चौड़ी भूमि प्रदक्षिणा पथ के काम आती थी । वेदिका का मंडलाकार घेरा लगभग 330 फुट का था । प्रत्येक स्तम्भ की ऊँचाई 7 फुट 4 इंच थी । खम्भों के ऊपर उष्णीष के पत्थरों की पंक्ति बैठाई गयी थी । प्रत्येक उर्ष्णीष की लम्बाई 7 फुट और ऊँचाई 1 फुट 10 इंच थी। इससे वेदिका की पूरी ऊँचाई 9 फुट के लगभग हो गयी थी[26] । अपने शोध कार्य में कनिंघम को वहिर्वेदिका के कुछ विसम्बद्ध खण्ड भी मिले थे । ऐसा अनुमान है कि अन्तर्वेदिका की अपेक्षा बहिर्वेदिका अपेक्षाकृत आयाम में अधिक लघु थी । ऐसा भी अनुमान लगाया गया है कि अपने मूल एवं अविक्षत रूप में अन्तर्वेदिका दो सौ चालीस लघु स्तम्भों एवं सात सौ पचास सूचियों के साथ जुड़ी हुई थी । भूमितल पर स्थित वेदिका दोहरी थी । आन्तरिक वेदिका की ऊँचाई लगभग 8 फिट थी और वाह्य वेदिका की ऊँचाई 3 फिट 3 इंच थी । कनिंघम को वाह्य वेदिका के केवल दो स्तम्भ प्राप्त हुए[27]। कनिंघम का अनुमान है कि वाह्य वेदिका एक उच्च भूमि स्थल पर आधारित थी और इससे प्रदक्षिणा – पथ तक नीचे पहुँचने के लिए एक सोपान रहा होगा[28]। कुछ एक इक्के – दुक्के यक्ष–मूर्तियों को छोड़कर सामान्यतया बहिर्वेदिका सादी ही थी। वेष्टिनी के प्रत्येक चतुर्थांश में सोलह स्तम्भ तो परिमंडल की आकृति में लगे हुए थे और चार अधिक स्तम्भ तोरणद्वार के परदे के लिए थे जिनमें दो खम्भे वेदिका के अन्तिम स्तम्भ से बाहर की ओर निकलते हुए और दो मुड़कर द्वार के सामने का जंगला बनाते थे । तोरण द्वार के खम्भों की ऊँचाई 9 फुट 7.5 इंच थी । दोनों ओर के दो ऊँचे खम्भे 4–4 पतले खम्भों को जोड़कर बनाए गए थे । पूर्व और पश्चिम के द्वारों के ये पतले स्तम्भ अढ्ढंसिक या अठपहल (अष्टपदीय) हैं और उत्तर – दक्षिण के

चौपहल (चतुरस्रिक)[29]। इनमें प्रत्येक का शिरोभाग घण्टानुमा एवं कमलांकरण से युक्त था, जिसके ऊपर एक ओर सपक्ष सिंहाकृतियाँ थीं, तथा दूसरी ओर एक – दूसरे की ओर पीठ किए हुए वृषभ की दो आकृतियाँ थीं । वेदिका के साथ अलंकृत मेहराब भी थे, जिन्हें दो स्तम्भों के साथ जोड़ा गया था । इसी के साथ प्रशस्त रूप में तक्षित धरनियाँ (बँडेरी या संस्कृत शब्द तोरण) थी, जिन्हें नियत दूरी देते हुए एक के ऊपर दूसरी को रखा गया था । पूरे द्वार या जंगले को बँडेरी, धरनि या तोरण कहा जाता था । इन तक्षित धरनियों के बीच में लघु स्तम्भों की व्यवस्था की गई थी, इनका शिरोभाग घण्टानुमा था, जिनपर एक–दूसरे की ओर पीठ किए हुए पशुओं की आकृतियां थीं । इन्हीं के साथ ऐसे भी स्तम्भ बने थे, जिन पर यक्षों की मूर्तियां तक्षित की गई थी । भरहुत के तोरणों (धरनी या बड़ेरी) की एक विशेषता उनकी बँडेरियों के दोनों गोल सिरों पर बनी मगरमच्छ की आकृतियाँ हैं जिनके मुँह खुले हुए और पूँछ गोलाई में हैं । इन्हें शिशुमार शिरः कहा जाता था (आदि पर्व 176/15, शिशुमार शिरः वासुदेव शरण अग्रवाल, जे0 आई0 ओ0 आ0 1939; 'महाभारत नोट्स' भण्डारकर शोध संस्थान पत्रिका, वर्ष 26, भाग 3–4, पृष्ठ 283–86) । सबसे ऊपर की बँडेरी या धरन के बीच में एक बड़ा धर्म चक्र मुचकुन्द, पुष्प की चौकी देकर लगाया गया था । इसके दोनों ओर दो त्रिरत्न चिह्न लगाए गए थे । बचे खुचे नमूनों से कनिंघम ने तोरण के इन ऊपरले धार्मिक चिह्न वाले अलंकरणों का समुद्वार किया[30]।

सबसे निचली धरनि की विशेषता है कि इसके केन्द्रीय भाग को वर्त्तुलाकार बनाया गया है, जिसके मुख भाग पर दो सिंहों का चित्रण है । इन्हें फूलों का वहन करते हुए दिखाया गया है, जिन्हें वे बोधि–वृक्ष को समर्पित कर रहे हैं । मध्य भाग बुद्ध के 'सम्बुद्धत्व' को निर्देशित किया गया है । इसके लिए चार गजाकृतियों का अंकन हुआ है । इन्हें पंक्तिबद्ध अंकित किया गया है । दो–दो की संख्या में ये चार गजाकृतियां दोनों ओर दिखाई गयी हैं । ये गजाकृतियां पुष्पोपहार लेकर बोधिवृक्ष एवं सिंहासन की ओर अग्रसरित होने की मुद्रा में हैं । मध्य तोरण के सबसे ऊपरी

भाग में वर्त्तुलाकार धर्म चक्र तक्षित किया है, जो एक झाड़ीनुमा अलंकरण पर अधिष्ठित है । काला के अनुसार यह विवरण वर्तमान द्वार के अन्तर्भाग से सम्बन्धित है । बेडेल के मत को सन्दर्भित करते हुए काला ने ऐसा भी सुझाव रखा है कि इसे स्तूप का प्रधान प्रवेश द्वार नहीं माना जा सकता है[32]।

कनिंघम को सर्वेक्षण एवं उत्खनन शोधों के क्रम में जो स्तम्भ प्राप्त हुए थे उन पर अवलंबित सूचियों के लघु स्तम्भों (Balusters) पर कुछ एक अक्षर खरोष्ठी के प्रतीत होते हैं, तथा ऐसी स्थिति में जैसा कि पिछले अध्याय में प्रसंगित किया जा चुका है कि तोरण निर्माण की प्रक्रिया तद्देशीय शिल्पियों द्वारा सम्पन्न न होकर अन्यदेशीय (सम्भवतः उत्तरापथ अर्थात् पूर्वकालीन पश्चिमोत्तर भारत जो खरोष्ठी के सृजन और परिवेश का मूल क्षेत्र था) शिल्पियों द्वारा सम्पन्न हुई थी । कनिंघम के उक्त सुझाव को प्रकारान्तर से खण्डित करते हुए ऐसा अनुमान भी लगाया गया कि सम्बन्धित चिह्न अक्षर संकेतक न होकर अंक – संकेतक हैं । किन्तु वस्तुस्थिति का निश्चय साक्ष्यों की गुरूता एवं प्रचुरता के अभाव के कारण अन्तिम रूप में नहीं किया जा सकता है । फिर भी ब्राह्मी संकुल क्षेत्र में कभी–कभी खरोष्ठी के अक्षरों का न्यूनांशतः आयातित होना असम्भाव्य नहीं माना जा सकता है । उदाहरणार्थ दक्षिण भारत में अशोक के कम–से–कम तीन ब्राहमी लिपि में आद्योपान्त उट्टंकित अभिलेखों (ब्रहम गिरि, सिद्धपुर, जटिंगरामेश्वर) के अभिलेखों में "पड" नामक लिपिकर ने अपना हस्ताक्षर खरोष्ठी में किया है । प्रायः गौरीशंकर ओझा से लेकर अद्यतन पुरालिपिशास्त्रियों ने यह पूर्णतया स्वीकार किया है कि "पड" उत्तरापथ का निवासी था, जहाँ खरोष्ठी प्रचलित थी । इसी प्रकार दक्षिण भारत के ही येरागुडी के ब्राह्मी में अंकित लघुशिलालेख में कुछ – एक पंक्तियाँ बाएं से दाहिने (जो ब्राह्मी की लेखन दिशा की शैली थी) के अतिरिक्त दाहिने से बायें भी चलती हैं (जो खरोष्ठी की लेखन दिशा शैली थी)। इसके आधार पर यह सहज निष्कर्ष निकालने में कोई हानि नहीं प्रतीत होती है कि कभी–कभी लेख अथवा अभिलेख – निबन्धन के लिए अन्यदेशीय शिल्पी नियुक्त

किये जाते थे । इस परम्परा – परीवाह की परिणयन का, भरहुत के प्रस्तुत प्रकरण में अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता है । कनिंघम को सर्वेक्षण एवं उत्खनन के क्रम में 49 की संख्या में स्तम्भ मिले हैं हालांकि स्तम्भों के संदर्भ में वासुदेवशरण अग्रवाल ने प्रस्तावित किया हे कि कनिंघम को वेदिका के 47 स्तम्भ प्राप्त हुए थे । 35 तो अपनी असली जगह मिल गये थे और 12 बटनमारा, लिथौरा के पास गाँवों में ढूंढ़ने से मिले थे । उसे उष्णीष के 40 पत्थरों में से 16 उपलब्ध हुए थे । पं0 ब्रजमोहन व्यास ने भरहुत तोरण और वेदिका के 53 भाग इलाहाबाद संग्रहालय के लिए अपनी कुशलता से पुनः प्राप्त किये । उनमें 32 वेदिका स्तम्भ, 1 दोरूखा कोष स्तम्भ, 3 सूची 14 उष्णीष एक खण्डित शीर्षक और दो सोपान खण्ड हैं । स्तूप के अंड की मूल आकृति वेदिका पर तीन–चार जगह अंकित है जिसमें उसकी सच्ची प्रतिकृति का अनुमान होता है । इससे ज्ञात होता है कि मूल स्तूप एक बड़े घंटे की आकृति में (महाघण्टाकार) लगभग अर्ध चन्द्राकार था । उसमें व्यास और ऊँचाई का अनुपात कालान्तर के स्तूपों की अपेक्षा कम था जिस पर कि स्तूप की ऊँचाई बढ़ती चली गई थी । सांची स्तूप की भी यही स्थिति है । बाद में ऊँचाई में वृद्धि होने लगी और स्तूप की आकृति लम्बोतरी हो गयी जिसकी तुलना बुलबुले (महाबुब्बुल, महावंश 30/13) से की गई है जैसा कि कई शिलापट्टों पर उत्कीर्ण आकृतियों से ज्ञात होता है (जैसे मथुरा के क्यू0 1 आयाग पट्ट पर) । एक वेदिका स्तम्भ पर उत्कीर्ण आकृति इस प्रकार के स्तूप का परिचय देती है । उसके चारों ओर वेदिका भी दिखाई गयी है।[34] भरहुत से प्राप्त स्तम्भों की संरचना शैली उन स्तम्भों के समान हैं, जो सांची एवं बोधगया से मिले हैं । प्रवेशद्वार के स्तम्भ वर्गाकार हैं, जिनका आयाम 1 फुट 10.5 इंच है । इनके सिरे कुछ कटावदार हैं, जिन पर कमलासीन एवं बुद्धान्जलि पुरूष एवं नारी आकृतियों का अंकन है । कुछ एक नारी आकृतियों के हाथों में वृक्ष की टहनियों, फूलों एवं फलों को अंकित किया गया है । ऐसे भी निदर्शन मिले हैं, जिनमें हंस का चित्रण है । हंस को निम्नोन्मुख चोंच से फल को चुंगते हुए दिखाया गया है । स्तम्भों के दोनों ओर गोलाकार फलक अंकित हैं । मध्य भाग पूरे फलक

को रखा गया है, तथा नीचे और ऊपर फलक का अर्द्ध भाग अंकित है । इसके अतिरिक्त इन पर कमल – पुष्पों वनस्पतीय रचनाओं, गजाकृतियों, पक्षयुक्त अश्वों, वृषभों, वानरों, घड़ियालों एवं मोरों का भी अंकन है तथा इसके अतिरिक्त इन पर जातक कथाओं से सम्बन्धित दृश्यों को भी उकेरा गया है ।

कोणों के स्तम्भों की संरचना व्यवस्था कुछ भिन्न है । अन्तर्भाग के कोणों के स्तम्भों पर यक्षों, यक्षियों, देवताओं एवं नागराजों की आदमकद आकृतियों को उत्कीर्ण किया गया है । बर्हिभाग में जो कोण स्तम्भ मिले हैं, उनमें दो स्तम्भों की समीक्षा की गई है । इन्हें क्षैतिज स्थिति के रेलिंग समूहों द्वारा तीन उपखण्डों में विभक्त किया गया है । इन पर बौद्ध जातकों के दृश्य उकेरे गये हैं । इसी के साथ ही इन पर अजातशत्रु, प्रसेनजित और ब्रह्मदेव का बुद्ध से मिलने का दृश्य भी तक्षित किया गया है। इसी क्रम में इन पर बेस्संतर जातक के चार उपाख्यानों का भी अंकन हुआ है । काला के अनुसार इनमें अद्वितीय अंकन वह है, जहाँ विदिशा के रेवती मित्र की भार्या चाप देवा के दान का निदर्शक दक्षिण पूर्व के वृत्त पादीय भाग के अन्तिम स्तम्भ पर स्मृति–चिह्नक शोभा–यात्रा का चित्रण हुआ है ।

*****

सन्दर्भ निर्देश

1. उपाध्याय वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, 1972, पृष्ठ 3–5 ।

2 मिश्र रमानाथ, भरहुत, भोपाल, 1971, पृष्ठ 1/2, उमाकान्त प्रे0 शाह, स्टडीज इन जैन आर्ट, पृष्ठ 43 ।

3. पाण्डेय जयनारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 45 ।

4 उपाध्याय वासुदेव, प्राचीन स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, 1972, पृष्ठ 7 ।

5. पाण्डेय जयनारायण भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 46 ।

6 सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस, भाग 1, पृष्ठ 81–82, मिश्र, रमानाथ, भरहुत, भोपाल, 1971, पृष्ठ 1, 2/1, राधा कुमुद मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता (अनुवादक वासुदेव शरण अग्रवाल), पृष्ठ 253 ।

7. पाण्डेय, जयनारायण, भारतीय पुरातत्व एवं कला, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 46 ।

8. मिश्र रमानाथ, भरहुत, भोपाल, 1971, पृष्ठ 215, अग्रवाल वासुदेव शरण स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, पृष्ठ 77–79 ।

9. तत्रैव, पृष्ठ 2 ।

10. तत्रैव, पृष्ठ 2/6, महावंश अध्याय 28–31 ।

11 तत्रैव, पृष्ठ 3/1, अग्रवाल वासुदेव शरण, स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, पृष्ठ 81–83 ।

12 तत्रैव, पृष्ठ 6/1, कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकारम् ख02, भा02 (भरहुत इन्सक्रिप्शंस), लेखक ल्यूडर्स, एच0 ।

13 तत्रैव, पृष्ठ 6/2, कनिंघम ए0, द स्तूप ऑव भरहुत, पृष्ठ 4 ।

14 तत्रैव, पृष्ठ 6/3, फूशे, विगिनिंग्ज ऑव बुद्धिस्थ आर्ट, लन्दन, 1917, पृष्ठ 34 ।

15 कनिंघम ए0, द स्तूप ऑव भरहुत (1879), पृष्ठ 14 ।

16 राय, एस0एन0, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ 176/1, कनिंघम ए0, द स्तूप ऑव भरहुत (1879) पृष्ठ 127

17 मजूमदार, ए0 गाइड टू स्कल्पचर्स इन द इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता, भाग – 1, पृष्ठ 14 ।

18. राय, एस0एन0, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ 176/2, बूॅलर, इण्डियन पैलियोग्राफी, पृष्ठ 58 ।

19 मिश्र रमानाथ, भरहुत, भोपाल 1971, पृष्ठ 6/4, बरूआ, बेनीमाधव, भरहुत, 1, पृष्ठ 32 से आगे, फूशे, बिगिनिंग्ज ऑव बुद्धिस्ट आर्ट, लन्दन, 1917, पृष्ठ 34 ।

20. सरकार डी0सी0, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शंस, भाग 1, पृष्ठ 88, रि0 1 ।

21 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1966, पृष्ठ 160 ।

22 मिश्र रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 6/5, कार्पस, भूमिका पृष्ठ 32 ।

23 बरूआ, बेनीमाधव, भरहुत, भाग 2, पृष्ठ 33 ।

24. मार्शल एण्ड फूशे, द मानुमेण्ट्स ऑव सांची, जिल्द – 1, पृष्ठ 105–106 ।

25 अग्रवाल वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1966, पृष्ठ 139 ।

26. तत्रैव, पृष्ठ 139 ।

27 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव, पृष्ठ 3/3, कनिंघम ए0, द स्तूप ऑव भरहुत, पृष्ठ 12 ।

28 तत्रैव, पृष्ठ 3/3, कनिंघम ए0, तत्रैव पृष्ठ 13 ।

29 अग्रवाल, वासुदेव शरण, तत्रैव, पृष्ठ 140 ।

30 तत्रैव, पृष्ठ 140 ।

31 कनिंघम ए0, तत्रैव, फलक 7 ।

32 काला, एस.सी. भरहुत वेदिका, पृष्ठ 6, बेडेल इन जर्नल ऑव द रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1914, पृष्ठ 138 ।

33 मिश्र, रमानाथ, तत्रैव पृष्ठ 5/2 (कार्पस, भूमिका, पृष्ठ 21) ।

34 अग्रवाल, वासुदेवशरण, तत्रैव, पृष्ठ 140 ।

*****

अध्याय - 3

अंकितक अभिलेखों में कला, शिल्प
एवं
जीवन

कनिंघम, बरूआ, लूडर्स, स्टिला क्रेमरिश, कुमारस्वामी, वासुदेव शरण अग्रवाल तथा आर एन. मिश्र प्रभृति विद्वानों ने भरहुत के अंकितक अभिलेखों में, कला, शिल्प एवं जीवन से सम्बन्धित विभिन्न बिन्दुओं का बहुविध एवं बहु–आयामी विश्लेषण किया है । आलोचित शोध रचना सामान्यतया कनिंघम, बरूआ एवं लूडर्स, वासुदेव शरण अग्रवाल, किन्तु विशेषतया आर.एन. मिश्र के भरहुत पर आधारित है । आवश्यक टिप्पणियों के साथ उक्त बिन्दुओं का पुनर्विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण का प्रयास यहां किया जा रहा है –

(क) प्रस्तुतीकरण का प्रथम पक्ष

(ख) प्रस्तुतीकरण का द्वितीय पक्ष

प्रस्तुतीकरण का प्रथम पक्ष :

भरहुत के कलाकारों ने भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्धित आख्यानों को निदर्शित करने में पर्याप्त समय एवं सावधानी रखने का प्रयास किया था । सम्बन्धित दृश्यों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से इन वास्तु–खण्डों पर संलग्नक अभिलेख मिलते हैं । ये अभिलेख दो प्रकार के हैं, एक तो वे जो जातक – आख्यानों के समकक्ष हैं । दूसरे वे जिनका तालमेल उपलब्ध जातक – आख्यानों से नहीं बैठ पाता । इन्हें कलावन्तों के विवेक एवं कल्पना की प्रसूति माना जा सकता है । मजूमदार के अनुसार वे भरहुत के मूर्तिकारों के सामने भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म से सम्बन्धित ऐसे संस्करण रहे होंगे, जो उपलब्ध जातक–आख्यानों से भिन्न थे।[1] जबकि इन अंकनों में भगवान बुद्ध के पूर्व जन्मों का सविशेष प्रसंग है, इनके जन्म और जीवन का प्रसंग कदाचित ही किया गया है । उनकी वास्तविक आकृति का अंकन कहीं नहीं हुआ है । प्रायः उनका बोध कराने के लिए बोधि–वृक्ष, चरण चिह्न, चक्र, सिंहासन, त्रिरत्न एवं स्तूप जैसे प्रतीकों को प्रयोग में लाया गया है । स्टिला क्रेमरिश के मत में तत्कालीन परम्परा के अनुसार बुद्ध को अतिमानवीय रूप में ग्रहण किया जाता था । ऐसी स्थिति में उन्हें मानवीय रूप में प्रदर्शित न किया जाना स्वाभाविक था।[2] ब्रह्मजाल–सुत्त को प्रसंगित

करते हुए गंगोली का कहना है कि बुद्ध ने अपने जीवनकाल में ही ऐसी निषेधाज्ञा जारी किया था कि उन्हें मानवीय आकार में चित्रांकित न किया जाय।[3]

भगवान् बुद्ध का जीवन चरित मुख्यतः निम्नलिखित विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्य है – महासांधिको का 'महावस्तु', सर्वास्तिवादियों का 'ललितविस्तर', अश्वघोष का 'बुद्धचरित', निदानकथा, धर्मगुप्त का 'अभिनिष्क्रमण सूत्र' । महासांधिको का 'महावस्तु' तथा सर्वास्तिवादियों का 'ललितविस्तर' संस्कृत पालि मिश्रित शैली में है । अश्वघोष का 'बुद्धचरित' संस्कृत काव्य शैली में है । निदान कथा पालि में है तथा धर्मगुप्त का अभिनिष्क्रमण सूत्र अनुवाद के रूप में है जिसका कि वर्तमान समय में अंग्रेजी रूपान्तरण ही प्राप्य है । विनय, निकाय तथा महाबोधिवंश जैसे ग्रन्थ बुद्ध या पूर्व बुद्धों के जीवन चरित के आंशिक विवरण ही प्रस्तुत करते हैं । महावस्तु में प्राप्त बोधिसत्व दीपंकर की कथा तथा शाक्यमुनि के जीवन चरित की कथा लगभग एक सी ही है । सिद्धार्थ की जीवनी महावस्तु के द्वितीय खण्ड में प्राप्त होती है । बोधिसत्व द्वारा अवतार ग्रहण करने के पूर्व परिवार, देश, काल एवं स्थान का चयन तथा उनके जीवन चरित के प्रसंग इसमें संग्रहित हैं । लुम्बिनी ग्राम में उनका जन्म, असित ऋषि द्वारा उनके महापुरूष होने की भविष्यवाणी, विवाह, राहुल का जन्म और मार–विजय का वर्णन आदि प्रसंग भी इसमें हैं । बुद्ध द्वारा विभिन्न व्यक्तियों या समुदायों को धर्म में प्रव्रजित करने की भी विभिन्न घटनाएं इसमें समाहित हैं । ललितविस्तर तथा बुद्धचरित में भी बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण है । बुद्धचरित में बुद्ध के पूर्व संचित पुण्यों के प्रकाश से उनके महामानव रूप की सर्जना की गयी है।[4] निदानकथा में जातको के माध्यम से इक्कीस पूर्व बुद्धों के अवतार ग्रहण करने की गाथाएं संग्रहित हैं । निदानकथा के तीन भाग है : (1) दूरे निदान (2) अविदूरे निदान (3) सांतिके निदान । सम्पूर्ण निदान कथा में वर्णित है कि बोधिसत्व (स्वर्ग के स्वामी) देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके पृथ्वी पर अवतार लेने का निश्चय किया तथा इसके लिए स्वयं ही समय, स्थान, परिवार, जननी, जीवन, आयुमर्यादा आदि का चयन किया ।

सारी घटनाएं एवं चमत्कारों का वर्णन निदानकथा के तीनों भागों में वर्णित है । प्रारम्भिक बौद्धकला परम्परा में मुख्यत. चार प्रमुख घटनाओं का अंकन प्राप्त होता है – जाति (जन्म), सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन तथा परिनिर्वाण । भरहुत में बुद्धजन्म से सम्बन्धित अंकन प्राप्त नहीं है, यद्यपि पूर्वापर घटनाओं के दृश्य मिलते हैं।[5] एक दृश्य में देवताओं के एक महासमाज का अंकन है । सभी देवता नमस्कार की मुद्रा में दिखाये गये है और उनके मध्य एक छत्रयुक्त आसन स्थित है तथा आसन के समक्ष अर्हदगुप्त – देवपुत्र नतमस्तक होकर आसन स्थापित दक्षिणापाद का स्पर्श कर रहा है।[6] बरूआ और सिन्हा ने इस दृश्य को जाति से सम्बन्धित किया है, किन्तु ऐसा अनुमान है कि इसमें तुषित स्वर्ग के देवताओं द्वारा बुद्ध को पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करने के हेतु, आह्वान करने का दृश्य है । अर्हदगुप्त इन देवताओं का प्रतिनिधि है, इसका नाम एक अन्य भरहुत के अभिलेख में[7] बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण से सम्बन्धित दृश्य में मिलता है परन्तु बौद्ध साहित्य में इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता है।[8] दूसरे दृश्य में बुद्ध के गर्भ–प्रवेश का अंकन है जो कि जाति दृश्य के अन्तर्गत प्रतीत होता है । इसमें वस्त्रावृता मायादेवी अपने पर्यंक पर सोयी हैं । एक गज की आकृति उत्कीर्ण है जो उनके स्वप्न की परिचायक है । गर्भवती होने पर स्वप्न में मायादेवी ने बादलों सा श्वेतगज अपनी कुक्षि में प्रविष्ट होते देखा।[9] इसी घटना का संकेत इस दृश्य में "भगवतो उक्रंति" अभिलेख सहित मिलता है।[10] तीन परिचारिकाएं पर्यंक के आसपास दिखाई गयी हैं, जिनमें एक नमस्कार मुद्रा में है, दूसरी चौरी सहित है तथा तीसरी इस घटना से चकित, विस्मय मुद्रा में है । परिचारिकाओं का यह चित्रण मायादेवी के स्वप्न को वास्तविक घटना का रूप प्रदान करता है । भरहुत में बुद्ध का अंकन केवल प्रतीकों के माध्यम से किया गया था किन्तु यहां उनके गजरूप का अंकन परम्परा विरूद्ध है।[11]

बौद्ध ग्रन्थों में गौतम बुद्ध के विलासपूर्ण जीवन का परित्याग कर एक रात में कपिलवस्तु को त्याग देने की घटना को 'महाभिनिष्क्रमण' कहा गया है । बौद्ध ग्रन्थों

में वर्णित है कि बुद्ध शाक्य, कोलिय और मल्ल जनपदों को छोड़कर सूर्योदय होने पर मैनेयों के नगर अनुवैनेय पहुँचे और अपने अश्व कंथक को सारथी छंदक को सौंप दिया।[12] केशश्मश्रु काट डाले और काषाय वस्त्र धारण करके घर से बाहर अनेकांत जीवन में प्रविष्ट हुए।[13] एक अर्ध खण्डित शिला पर तीन दृश्यों में यह घटना संयोजित है । ऊपर के दृश्य में दो देवियों के निकट बुद्ध के पद चिह्नों का अंकन है जो अनुमानतः उनके राजप्रसाद से निकलने का संकेत है । प्रस्तर खण्ड के मध्य में सारथी के साथ अश्वारोही रूप में उनका छत्र समन्वित अंकन है जिसमें उन्हें राजप्रासाद के कंगूरों को पार करते हुए दिखाया गया है । नीचे के दृश्य में छत्र समन्वित अश्व के साथ प्रमुदित देवतागण हैं जिनमें एक का नाम अर्हद्गुप्त अभिलिखित है।[14]

महानिद्देस में वर्णित है कि भगवान् बुद्ध अपने नये जीवन में बहुत उत्साह के साथ, आडार कालाम और फिर उद्रक रामपुत्र से उपदेश ग्रहण किया । शरीर के परिमार्जन के लिए कठोर तप किया परन्तु काय-क्लेश उन्हें उनके निश्चित लक्ष्य तक पहुँचा नहीं सका । इस असफलता के बाद बुद्ध बोध-गया में एक अश्वत्थ वृक्ष की छाया में ध्यान मुद्रा में रत हो गये।[15] अन्ततः मार के अनेक प्रयत्नों को विफल कर उन्होंने सम्बोधि प्राप्त की । विनय पिटक के महावग्ग में लिखा है कि "जब इस जिज्ञासु के लिए सब बाते स्पष्ट हो गयी, मार की सेनाओं को मारकर वह आकाश के सूर्य की भांति प्रदीप्त हुआ।[16] भरहुत की कला में बुद्ध के बोधि वृक्ष को निदर्शित करने वाले तीन दृश्यों का अंकन मिलता है । पहले दृश्य में एक वेदिका युक्त द्वितल प्रासाद के ऊपरी भाग में एक बोधि वृक्ष का अंकन है, प्रासाद के निम्न भाग में स्तम्भों की योजना है और ऊपर के भाग में मेहराब (Arch) युक्त तोरण हैं । नीचे के भाग में एक वज्रासन पर त्रिरत्न आसीन हैं और पुष्पादि बिछे हुए हैं । बज्रासन के एक ओर मार नमस्कार की मुद्रा में बैठे हैं, इनके साथ ही दक्षिण भाग में पुष्पहस्ता स्त्री है और वाम भाग में नमस्कार मुद्रा में एक पुरूष है । अंकन के ऊपरी भाग में बोधि वृक्ष के दोनों ओर विस्मयहस्त देवता और आकाशचारी सपक्ष विद्याधर और सुपर्ण है।[17] अन्य कुछ अंकनों में भी इस दृश्य की प्रतिच्छाया मिलती है।[18] मार के खेद का भी रोचक अंकन भरहुत के दो दृश्यों में किया गया है।[19]

एक में विभिन्न देवताओं के समाज में उसे वृक्ष के नीचे खिन्न मुद्रा में बैठा दिखाया गया हैं तथा अन्य देव–आकृतियां पूजकों के रूप में हैं ।

निदान कथा में वर्णित है कि मार कन्याओं ने बुद्ध को आकर्षित करने का प्रयत्न किया परन्तु वे अडिग रहे । तत्पश्चात् उन्हें दो व्यापारी तपुस्स और भल्लिक मिले जिन्हें बुद्ध ने धर्म दीक्षित किया । धर्म का उपदेश बुद्ध ने ऋषिपत्तन के मृगवन में दिया । इसे धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र कहा गया है।[20] धर्म प्रवर्तन का दृश्य "प्रसेनजित स्तम्भ" पर अंकित है। प्रासाद के निम्न भाग के मध्य में छत्र समन्वित एक धर्म चक्र का अंकन है जिसके दोनों ओर एक–एक भक्त नमस्कार मुद्रा में खड़े हैं । इस दृश्य के निम्न भाग में कोसलराज प्रसेनजित को चार अश्वों द्वारा संचालित रथ पर आसीन धर्मचक्र परिक्रमा के लिए सन्नद्ध दिखाया गया है । ल्यूडर्स के अनुसार यह दृश्य बुद्ध के उपदेश की घटना का परिचायक है । फूशे ने इसे 'श्रावस्ती के चमत्कार' की घटना का अंकन कहा है । परन्तु ल्डूडर्स को फूशे का मत स्वीकार्य नहीं है । ल्यूडर्स एवं कनिंघम का मानना है कि यह भवन जो इस दृश्य में अंकित है उस 'पुण्यशाला' (धर्मशाला) का द्योतक है जो बुद्ध के लिए प्रसेनजित ने श्रावस्ती में निर्मित करायी थी।[21]

बुद्ध का अवसान 80 वर्ष की आयु में 483 ई0पू0 में हुआ । अपने अन्तिम दिवस में बुद्ध मल्लों की राजधानी पावा में चुन्द नामक लोहार की आम्रवाटिका में ठहरे। चुन्द ने आदर सत्कार में बुद्ध को भोजन कराया तथा उसमें उन्हें 'सूकरमद्दव खिलाया जिससे उन्हें रक्तातिसार हो गया । प्राचीन टीकाकारों ने 'सूकरमद्दव को सूअर का नरम मांस कहा है, अन्य के अनुसार यह कोई वनस्पति थी जिसे सूअर खोदकर खाते है, या यह छत्रक (कुकुरमुत्ता) का नाम था जो शूकर की मांद के पास उगता था, या स्वाद उत्पन्न करने के लिए भोजन में मिलाया जाने वाला कोई मसाले जैसा पदार्थ था।[22] बुद्ध रक्तातिसार की भयंकर वेदना को सहन करते हुए कुशीनारा पहुँचे, जहाँ

शाल वृक्षों के बीच विश्राम करते हुए उपदेश देते-देते निर्वाण को प्राप्त किया । बुद्ध के पार्थिव शरीर की अस्थियों पर स्तूप बनवाये गये । पिपरहवा, शाह जी की ढ़ेरी, तक्षशिला, नागार्जुनकोंडा आदि स्थानों के स्तूपों से ऐसी सुवर्ण मंजूषाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें यह भौतिक अवशेष प्राप्त हुए है।[23] भरहुत में 'प्रसेनजित स्तम्भ' पर एक निर्वाण प्रतीक स्तूप अंकित है।[24] स्तूप भली भांति अलंकृत है, जिसमें एक मेधि है । मेधि स्थित एक वेदिका है, जिससे अंड-भाग आवृत है । अंड के सिरे पर हर्मिका तथा तदवलम्बित आसन पर पुष्पमाल्यार्पित दो छत्र हैं । अंड – भाग विभिन्न पुष्पों से भरा है । नीचे के भाग में दो नमित भक्त हैं । ऊपर, वाम भाग में, नमस्कार मुद्रा में एक अन्य भक्त है । दक्षिण भाग में सटे पेटवाले चार सिंहो वाला एक स्तम्भ है, जिस पर वैसे ही व्यक्तियों की आरोहित आकृतियां हैं । अन्तरिक्ष में, दो विद्याधर स्तूप को पुष्पमालाएं अर्पित करते हुए अंकित हैं।[25]

बुद्ध के जीवन चरित से सम्बन्धित कुछ अन्य घटनाएं भी भरहुत की कला में प्राप्त होती है । बुद्ध के बोधिवृक्ष के अंकन में उनके जन्मोत्सव के आशय का अनुमान लगाया गया है।[26] 'जेतवनदान' के दृश्य में, बुद्ध द्वारा 'श्रावस्ती के चमत्कार' के संकेत का अनुमान है।[27] बुद्ध ने श्रावस्ती में एकत्रित जनसमूह के सामनें, आम्र की गुठली से अकस्मात् वृक्ष के विकसित होने का चमत्कार दिखाया था, इस आशय का संकेत दृश्य में अंकित वृक्ष से प्राप्त होता है । यद्यपि यह दृश्य केवल संकेतात्मक रूप में इंगित है, तथापि इसमें उस युग की प्रख्यात परम्परा का अनुमोदन प्राप्त होता है।[28] 'श्रावस्ती में चमत्कार' का अंकन स्पष्टतः भरहुत वेदिका के एक कोणक स्तम्भ पर भी प्राप्त होता है । इस स्तम्भ पर तीन दृश्य संयोजित है । एक में श्रावस्ती में चमत्कार का अंकन है, जिसमें 20 आकृतियां नमित तथा चकित मुद्रा में खड़ी दिखलाई गई हैं । एक अन्य दृश्य में त्रायस्त्रिंश स्वर्ग में बैठे हुए देवताओं को बुद्ध उपदेश दे रहे हैं । छत्र सहित एक खाली आसन और उनके साथ का बोधिवृक्ष, बुद्ध की अदृश्य स्थिति के परिचायक है।[29]

चमत्कार दिखलाने के बाद बुद्ध का त्रायस्त्रिंश स्वर्ग जाने की घटना का उल्लेख दिव्यावदान के 'प्रातिहार्य सूत्र' में मिलता है । दिव्यावदान में कहा गया है कि प्रसेनजित् ने बुद्ध के चमत्कार प्रदर्शन के लिए एक प्रतिहार्यमंडप श्रावस्ती नगर तथा जेतवन के बीच में बनवाया था । इसी स्थल पर बुद्ध ने अग्नि तथा जल से सम्बन्धित चमत्कार दिखलाया था । पृथ्वी से रूप ब्रह्मलोक तक अपनी जैसी अनेकानेक आकृतियां विहित कर लीं, और अन्त में यक्षराज पांचिक ने तीर्थिको के मंडप अपनी शक्ति से तोड़ दिये । इन तीर्थिको ने अपने को बुद्ध का अनुयायी मान लिया।[30] एक जातक[31] में इस स्थान पर एक आम्रवृक्ष के आकस्मिक विकास का प्रकरण प्राप्त है और इसी वृक्ष का अंकन भरहुत के दृश्य में बुद्ध के चमत्कृत अनुयायियों सहित किया गया है।[32]

बुद्ध के जीवन चरित्र के अंकनों की एक विशेषता यह है कि इनमें बुद्ध का मानवीय रूप प्राप्त नहीं होता है । सभी अंकनों में उनकी स्थिति केवल प्रतीकात्मक संकेतों द्वारा ही व्यक्त की गयी है । बुद्ध के प्रतीकात्मक स्वरूप की परम्परा कुषाण–युग तक अखंड रही, परन्तु कुषाण राजाओं के समय से इनकी मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो गया।[33] भरहुत में अंकित अन्य प्रमुख दृश्यों में उल्लेखनीय हैं – (1) अनाथपिंडिक श्रेष्ठी द्वारा जेतवन विहार का दान (2) प्रसेनजित् द्वारा बुद्धचर्या (3) अजातशत्रु द्वारा बुद्धचर्या (4) ऐरापत नागराज द्वारा बुद्धचर्या (5) मुचलिंद नाग द्वारा बुद्धचर्या तथा (6) देवताओं द्वारा बुद्धचूड़ा की पूजा तथा उत्सव।[34]

प्रायः ऐसा प्रश्न उठाया जाता है कि भरहुत के शिल्पी ने तक्षीकरण एवं मूर्तिकरण के प्रयास में जातकों के विवरण का अनुसरण किया था अथवा नहीं । बूलर ने स्वीकारात्मक मत प्रस्तावित किया है।[35] ओल्डेनबर्ग ने ऐसे सुझाव के प्रति असहमति प्रकट किया है।[36] फूशे के अनुसार इनमें किसी ऐसे साहित्यिक स्रोत के अनुसरण का संकेत मिलता है, जो पालि–साहित्य से समपृक्त नहीं किया जा सकता है । इसके तीन कारण दिये गये हैं । एक तो संलग्नक अभिलेखों में प्रसंगित जातकों

एवं पालि–साहित्य में प्रसंगित जातकों के शीर्षक एक दूसरे से भिन्न है । दूसरे संलग्नक अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा पालि साहित्य की भाषा से भिन्न है । तीसरे, संलग्नक अभिलेखों में निदर्शित कथानक उपलब्ध पालि साहित्य के कथानकों से भिन्न हैं।[37]

ल्यूडर्स तथा अन्य विद्वानों ने कहा है कि भरहुत स्तूप के निर्माण काल में पश्चिमी भारत का क्षेत्र पालि कैनन (Canon) के ज्ञान से अपरिचित नहीं था, अतः इसी ज्ञान के आधार पर कलाकारों ने जातक कथाओं को विभिन्न दृश्यों में संयोजित किया है । बहुधा जातक साहित्य में प्राप्त जातक नाम भरहुत के दृश्य समन्वित अभिलेखों में प्राप्त जातक नामों से भिन्न हैं । तथापि यह स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है कि भरहुत के कलाकारों ने कैनन (Canon) को ध्यान में नहीं रखा।[38] भरहुत के अभिलेखों में पेटकिन[39] और पंचनेकायिक[40] शब्द मिलते है जिनसे यह ध्वनित होता है कि पिटक और निकायों में बौद्ध साहित्य तब तक निबद्ध हो चुका था । भरहुत अभिलेखों में प्राप्त पालि भाषा का स्वरूप साहित्य की भाषा से भिन्न है तथा भरहुत से प्राप्त कुछ जातकों का साहित्य में अभाव है । परन्तु ये दोनों ही प्रमाण यह सिद्ध नहीं करते है कि भरहुत के कलाकारों को पालि कैनन का ज्ञान नहीं था । संभव है, अन्तिम संकलन की प्रक्रिया के पूर्ण होने तक की परिस्थितियों में जातकों के नाम बनते और बदलते रहें । कथा के शीर्षक के लिए नामों की आवश्यकता थी और प्रायः एक ही जातक कथा के एक से अधिक नाम भी प्राप्त होते है जैसे, विडाल जातक, कुक्कुट जातक[41] एक ही जातक के दो नाम हैं । इनमें से कोई भी एक नाम कथावार्ता के सूत्र को स्पष्ट कर सकता था।[42]

भरहुत स्तूप की तोरण वेदिका पर लगभग 20 जातक दृश्य, 6 ऐतिहासिक दृश्य, 30 से ऊपर यक्ष, पक्षी, देवता, नागराजाओं आदि की कढ़ी हुई बड़ी मूर्तियां और अनेक भांति के वृक्ष और पशुओं की मूर्तियां है । इनमें से बहुतों पर उनके नाम खुदे है । इनके अतिरिक्त नौका, अश्वरथ, गोरथ और अन्य कई प्रकार के वाद्य,

कई भांति की ध्वजाएं तथा अन्य राजचिह्न अंकित हैं । सूचियों के लगभग अर्ध संख्यक मंडल और स्तम्भों के लगभग आधे चांदे (चन्द्रक) कमल के फुल्लों से भरे हुए है जिनकी कल्पना सुकुमार और सुन्दर है।[43]

ध्यातव्य है कि भरहुत की वेदिका में काल्पनिक एवं वास्तविक, दोनों प्रकार के पशु–पक्षियों को अंकित किया गया है । पहली कोटि के अंकन बौद्ध परम्परा के अतिमानवीय तत्वों के हैं । दूसरी कोटि के अंकन दृश्य जगत के बौद्ध परम्परा में समाहार के प्रमापक हैं, जिनका यथा तथ्य स्वरूप निरूपित हुआ है । इनमें सिंह, गज, वृषभ, भेंड, बानर, हरिण, श्वान, ऊदबिलाव, मोर एवं बटेर आदि की बहुलता दिखाई देती है । इन अंकनों से यह सुव्यक्त हो जाता है कि कलाकारों को इन पशुं–पक्षियों के भिन्न–भिन्न प्रकारों एवं उनके स्वभाव की वास्तविक जानकारी थी । फर्गूसन के अनुसार भरहुत के कलाकारों ने जिस खूबी के साथ, हाथियों, हरिणों एवं बानरों का अंकन किया है, वे विश्व के किसी भी अन्य देश के कलाकारों द्वारा अंकित निदर्शनों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है।[44]

भरहुत के कलाकारों ने वनस्पति जगत के चित्रांकन में काफी दक्षता दिखाई है । कमल का फूल सर्वाधिक लोकप्रिय प्रतीत होता है । इसे पत्र, मुकुल एवं उत्फुल्ल तीनों ही रूपों में अंकित किया गया है । किनारे – किनारे अंगूर–वल्लरियों को चित्रांकित करने का प्रयास किया गयाहै । संगीत और नृत्य के अंकन विनोद प्रियता को परिलक्षित करते हैं । प्रसेनजित् स्तम्भ पर अप्सराओं का नृत्य प्रदर्शन अतीव आकर्षक है । वीणा, मृदंग, शंख और करताल जैसे वाद्यों का अंकन यथा तथ्य रूप में हुआ है । फलक–खण्डों पर समाज के प्रवर एवं अवर दो स्तरों के लोगों के अन्तर्मिश्रण को विशिष्टतया रेखांकित किया गया है ।

भरहुत के कलाकारों ने कभी–कभी परिहास दृश्यों को अंकित किया है । इनका अंकन गोलाकार फलकों पर मिलता है । इस संदर्भ में तीन फलकों का उल्लेख

किया जा सकता है । एक फलक पर हाथी को मजबूत रस्सियों से बांध कर नियन्त्रित किया गया है । इसे चार बानरों द्वारा घसीटे जाने का दृश्य दिखाया गयाहै । दूसरे फलक पर लगभग यही दृश्य है किन्तु बानर हाथी को घसीट नहीं रहे हैं, अपितु उसके पीठ पर बैठे हुए हैं । तीसरे फलक पर मनुष्य एवं वानरों में परस्पर युद्ध का अंकन है । इसमें वानर हाथी की सहायता से रस्सी से बंधे हुए चिमटे से एक हट्टे-कट्टे आदमी के दांतों को उखाड़ रहा है।[45]

ऐसा अनुमान है कि भरहुत की वेदिका पर उकेरे हुए बहुत से पशु-आकृतियों एवं अभिप्रायों पर पश्चिमी एशिया का प्रभाव पड़ा है । पंखों से युक्त घोड़े, मानवमुखी वृषभ, स्तम्भों का घंटानुमा शिरोभाग भारत का विदेशों से सम्पर्क द्योतित करते है । इस सम्पर्क के परिणाम में बहुत से वैदेशिक तत्व भारत में आयातित हुए । इन्हें भारतीय कलाकारों ने भरपूर अपनाया, किन्तु भारतीय मूर्तिकला के मौलिक तत्वों पर इस प्रवृत्ति का विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा । इस सम्बन्ध में कुमार स्वामी का विचार है (जिसका औचित्य संशय-रहित है), कि मौर्य युग के पूर्व भारत "प्राचीन पूर्व"(Ancient East) का अनन्य अंग था, यह क्षेत्र भूमध्य सगरीय प्रान्तर से गंगा-घाटी तक फैला था, तथा एशिया और यूरोप, दोनों का ही अधिगृहीत स्रोत एक ही था।[46]

जातकों में बुद्ध के पूर्व जन्मों का कथात्मक वर्णन हैं । बोधिसत्वों के रूप में बुद्ध ने विभिन्न पारमिताएं अर्जित की तथा अन्त में सिद्धार्थ के रूप में उनका जन्म हुआ । बोधिसत्व केवल मानव रूप में ही नहीं वरन् पशु, पक्षी आदि रूपों में भी अवतरित हुए । भरहुत के दृश्यों में अनेक जातकों और अवदानों का अंकन है।[47] इन दृश्यों में देवता, किन्नर,, विद्याधर के अतिरिक्त तपस्वी, ब्रह्मचारी आदि परम्परागत वेश में अंकित किये गये हैं । विभिन्न जातक दृश्यों में कथा-वार्ता के प्रवाह में तत्संबंधी पशु-पक्षी तथा विभिन्न जन्तुओं के भी निरूपण प्राप्त होते हैं । ये दृश्य साहित्य के विभिन्न संदर्भो से अनुमोदित हैं तथा इनके साथ के अभिलेखों में भी विषय का विवरण प्राप्त होता है । बोधिसत्व के अवतरित रूपों के अनुसार जातक दृश्यों को मानवीय

रूप, पशुरूप तथा पक्षीरूप जैसे शीर्षकों में रखा गया हैं ।[48] इस संदर्भ में जिन विशेष संलग्नक अभिलेखों में, प्रसंगित जातकों के अभिज्ञान का प्रयास किया गया है, वे निम्नोक्त हैं –

हंस जातक

अर्थात् वह जातक जिसका वर्ण्य विषय हंस है । इसका उट्टंकन मुंडेरक शिलाखण्ड(Coping Stone)पर मिलता है । सम्प्रति यह इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है कनिंघम ने इसका अभिज्ञान नच्छ जातक (संख्या 32) से किया है।[49] जातक कथानक के अनुसार पक्षिराज सुवर्ण हंस ने अपनी कन्या को वर–चयन के लिए छूट दे दिया था । उसने एक मोर का चयन किया । प्रसन्नातिरेक की प्रेरणा में मोर नाचने लगा । इस अविनयशीलता से खिन्न होकर पक्षिराज ने उस मोर के साथ अपनी कन्या का वरण नहीं किया । दृश्य में नृत्यरत मयूर पंख फैलाये हुए अंकित है, और उसकी दायी ओर हंस कन्या है । अभिलेख में हंस जातक लिपिबद्ध है।

विडाल जातक कुकुट जातक

अर्थात् वह जातक जिसका सम्बन्ध बिल्ली और मुर्गे से है । सम्प्रति यह 'इंडियन म्युजियम कलकत्ता' में सुरक्षित है । मुंडेरक शिलाखंड के बाएं भाग पर वृक्ष का अंकन है । वृक्ष की शाखा पर मुर्गा बैठा है । वृक्ष के नीचे बिल्ली बैठी है, जिसे मुर्गे से बातचीत करने की मुद्रा में अंकित किया गया है । इसकी पहचान पालि साहित्य के कुक्कुट जातक (संख्या 383) से की गयी है।[50] जातक कथानक के अनुसार बिल्ली अपने तरह–तरह के बातचीत से मुर्गो को पकड़कर अपना भोजन बनाने का प्रयास करती रहती थी । इसी बीच बोधिसत्व मुर्गे के रूप में पैदा होते है । बिल्ली समझ लेती है कि इस अतीव बुद्विमान् मुर्गे को बातचीत से फुसलाना कठिन है। अतएव वह उसकी भार्या बनने का उपक्रम करती है । वह वृक्ष पर बैठे मुर्गे के पास जाकर अपनी चाटुकारिता से उसे अपनी भार्या के रूप में स्वीकारने का प्रयास करती

है । मुर्गे को संदेह होने लगता है, तथा वह बिल्ली के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है । शिलाखण्ड पर दोनों के बीच इसी वार्तालाप का दृश्यांकन उकेरा गया है।

गजजातक ससोजातके

अर्थात् वह जातक (अथवा वे दोनों जातक) जिसका सम्बन्ध गज एवं शशक से है । सम्प्रति यह इलाहाबाद संग्रहालय (प्राप्ति क्रमांक 2910) में सुरक्षित है । जिन विद्वानों ने सम्बन्धित मुंडेरक शिलाखण्ड के संलग्नक अभिलेख की समीक्षा की है, उनमें एस.सी काला[51], डी.सी. सरकार[52] तथा स्टेला क्रेमरिश[53] को प्रसंगित किया जा सकता है । अभिलेख का पहला भाग फलक–पट्ट के ऊपरी भाग पर अंकित है । यहाँ तीन झोपड़ियों का अंकन मिलता है । इन झोपड़ियों के अन्तर में स्थित भूखण्ड पर दो सम्भ्रान्त पुरूषों का अंकन है, जो आपस में बातचीत कर रहे है । बाएं भाग के व्यक्ति के हाथ में शशक जैसी आकृति दिखाई गयी है । एक दूसरी पशु आकृति का भी अंकन हुआ है । संलग्नक अभिलेख का दूसरा भाग एक दूसरे शिला–पट्टक पर अंकित है । बरूआ ने इसे पालि–साहित्य के गजकुम्भ–जातक (संख्या 345) से सम्बन्धित किया है । बी एन. पुरी इसी मत को मान्यता देते हैं । फलक का दूसरा भाग खंडित है जिसमें वृक्ष तथा एक कुटी अवशिष्ट है । गज की आकृति दृश्य में नहीं मिलती है । जातक–कथानक के अनुसार अपने पूर्व जन्म में बुद्ध काशिराज के मंत्री थे । उन्होंने काशिराज को एक कछुए एवं शशक का उपहार दिया । कछुआ आलस्य का निदर्शक था, तथा शशक के निदर्शन का संबंध सक्रियता से था।[55]

नागजातक

अर्थात् वह जातक जिसका संबंध हाथी से है । वृत्तपदीय भाग में उपलब्ध स्तम्भ पर अंकित यह संलग्नक अभिलेख सम्प्रति इंडियन म्युजियम, कलकत्ता में सुरक्षित है । इसकी पहचान कनिंघम ने पालि साहित्य के 'कक्कट जातक' (संख्या 267) से किया था।[56] उक्त जातक में बोधिसत्व हाथी के रूप में, जोड़े के साथ निदर्शित हैं । वे हिमालय में स्थित एक सरोवर के निकट रहते हैं । इस सरोवर में एक

विशालकाय केंकड़ा रहता है । यह केंकड़ा सरोवर में जल–क्रीड़ा करने वाले हाथियों को मार डालता था । जब भीमकाय केकड़ा अपने पंजों से बोधिसत्व को पकड़ता है, उस समय बोधिसत्व निकलने में विवश हो जाते हैं । वे सहायता के लिए चिल्लाते हैं । उनका जोड़ा अर्थात् हथिनी सहायता के लिए आती है । वह केकड़ों को अपने लुभावनी बातों से फुसलाती है, जिससे उसकी पकड़ ढ़ीली हो जाती है । इसके बाद हाथी (बोधिसत्व) केकड़े को पटक कर मार डालता है । ऐसा विचार है कि इस जातक का अधिक उपयुक्त नाम नागजातक ही है, न कि पालि साहित्य में प्राप्त होने वाला "कक्कट–जातक", क्योंकि कथानक का नायक नाग (हाथी) है न कि कक्कट (कर्कटक = केकड़ा)।[57]

लटुवाजातक

अर्थात् वह जातक जिसका संबंध बटेर (पक्षी) से है । सम्प्रति यह मुंडेरक शिलाखण्ड इंडियन म्युजियम, कलकत्ता में सुरक्षित है । कनिंघम ने इसकी पहचान पालि साहित्य के लटुकिकजातक (संख्या 357) से किया है।[58] इसमें बोधिसत्व को हाथियों के एक विशाल झुण्ड के अगुआ के रूप में निदर्शित किया गया है । एक अनाड़ी बटेर ने अपना घोंसला उस जगह बनाया था, जहाँ अपना चारा–पानी करते थे । बटेर ने बोधिसत्व से अनुनय किया कि सम्बन्धित हाथी छोटे पक्षियों को न कुचलें। इस अनुनय के परिणाम में वे हाथी बटेर के घोंसले को बचाकर चलते थे । किन्तु झुंड से अलग रहने वाला एक दुष्ट हाथी, बटेर के अनुनय के बावजूद घोंसले को कुचलने लगता है । इस पर बटेर वृक्ष के ऊपर चढ़कर प्रतिशोध की धमकी देता है । इस कार्य में एक कौवे, नीली मक्खी तथा मेढ़क से सहायता मिलती है । कौआ हाथी की आँखें निकाल लेता है । मक्खी आँखों के गढ्ढे में अंडे देती है । अन्धा हाथी दर्द के कारण पागल हो जाता है, तथा पानी पीने के लिए पानी की तलाश करता है। मेढ़क अपनी आवाज से उसे गुमराह करते हुए एक चट्टान पर ले जाता है । वहाँ हाथी लुढ़क कर गिरता है, तथा मर जाता है । गोलाकार फलक पर इस कथानक

के भिन्न–भिन्न स्तरों को निदर्शित किया गया है । यह कथानक काफी लोकप्रिय प्रतीत होता है, क्योंकि लगभग इसी प्रकार का कथानक पंचतंत्र (कीलहार्न संपादित, 1 15) में भी मिलता है ।

सम्मोदमान जातक

सम्मोदमान जातक (संख्या 33) में बोधिसत्व द्वारा पक्षिराज के रूप में जन्म लेने की कथा है । इसमें एक बहेलिये का उल्लेख है, जो पक्षियों की बोली बोलकर उन्हें आकृष्ट करता था, और धोखे से उन्हें जाल में पकड़ लेता था । बोधिसत्व की सहायता से पक्षी काफी समय तक बहेलिये से बचते रहे, किन्तु पारस्परिक वैमनस्य के कारण, वे एक दिन बहेलिए के चंगुल में फंस गये ।

एक खंडित दृश्य[59] में अनेक पक्षियों को अपनी चोंच में जाल पकड़े दिखलाया गया है और इसमें उक्त जातक कथा का अंकन है । दृश्य की पहचान बरूआ ने की है।[60]

गूथपण्ण जातक

गूथपण्ण जातक (संख्या 227) में एक गुबरैले की कथा है जो भूमि पर गिरी हुई मदिरा को चखकर उन्मत हो गया और हाथी से लड़ने को तैयार हो गया । हाथी के मलविसर्जन से दबकर, गुबरैले की मृत्यु हो गई । दृश्य की पहचान बरूआ ने की है।[61] मनुष्य, पशु अथवा पक्षी आदि से संबंधित उपर्युक्त जातकों की भरहुत के दृश्यों में विभिन्न विद्वानों द्वारा पहचान की जा चुकी है । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य जातक दृश्य भी प्राप्त होते हैं जो विभिन्न देव जातियों या यक्षों आदि से सम्बन्धित है।[62]

आरामदूसक जातक

आरामदूसक जातक (संख्या 46) में बोधिसत्व का उल्लेख प्राप्त नहीं होता । इसमें वानरों की एक रोचक कथा है । काशी में होने वाले उत्सव में भाग लेने के इच्छुक एक माली ने, कुछ वानरों से सहायता मांगी कि उसकी अनुपस्थिति में वे वृक्षों को सींचने का कार्य कर दें । वानरों के राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके अपने वानरयूथ को मशक तथा काष्ठ के जलपात्र पानी लाने और वृक्षों को सींचने के लिए बाँट दिये । पानी व्यर्थ नष्ट न हो, इसके लिए उन्होंने अपने वानरों को आज्ञा दी कि वे प्रत्येक वृक्ष की पानी की आवश्यकता जानने के लिए, पहले उसकी जड़ का निरीक्षण करें । एक – एक जड़ के निरीक्षण के प्रयास में वानरों ने अनेक वृक्षों को नष्ट कर दिया । एक व्यक्ति ने जब यह मूर्खतापूर्ण क्रियाकलाप देखा तो वह स्तब्ध रह गया ।

दृश्य में[63] आराम (उपवन) की पृष्ठभूमि सहित बायीं ओर एक वानर को बहँगी पर पात्र लिए हुए, जल की व्यवस्था हेतु जाते दिखलाया गया है । दक्षिण भाग में, वृक्ष उखाड़ता हुआ एक वानर है, साथ ही एक अन्य व्यक्ति का अंकन है। कथा की पहचान लैनमैन ने की है।[64]

महाकपि जातक

महाकपि जातक (संख्या 407) में बोधिसत्व के वानरराज के रूप में जन्म लेने की कथा है । अपने अस्सी हजार वानरों के समूह के साथ यह एक आम्रवन में रहते थे । इस वन के सुस्वादु आम चखने के बाद, राजा ने और आम खाने की इच्छा से, वन को घेर लिया । वानरों द्वारा बाधा पहुँचायी जाने पर खिन्न होकर, राजा ने धनुर्धरों को, वानरों को मारने का आदेश दिया । वानरराज ने नदी पार जाने का निश्चय किया । उन्होंने एक किनारे के वृक्ष में एक शाखा को लतांगुल द्वारा बांधकर, उसके दूसरे छोर को अपने पैर में बाँध लिया, और दूसरे किनारे के वृक्ष

को पकड़ लिया । इस तरह बने पुल पर से सभी वानर, सुरक्षित, दूसरी ओर पहुँच गये । किन्तु एक दुष्ट वानर के कारण उन्हें चोट पहुँची । राजा ने उन्हें बचाने का प्रयत्न किया किन्तु सफल न हो सका । राजा की भर्त्सना करके, बोधिसत्व वानर ने प्राण त्याग दिये ।

दृश्य में कथा के सभी सूत्रों का सटीक अंकन है । नदी के तट के दोनों वनांतरों का अंकन है, जिसमें, वानरराज के पैरों से बँधी शाखा भी स्पष्ट है । दो वृक्षों के बीच वानरराज का शरीर है जिस पर से, बायीं ओर से दाहिनी ओर के वन में, वानरों को नदी पार करते हुए दिखाया गया है । दृश्य के नीचे वानरराज बोधिसत्व तथा काशिराज के वार्तालाप का प्रकरण अंकित है।[65]

दम्भपुप्फ जातक

दम्भपुप्फ जातक (संख्या 400) में दो उद्रों (ऊदविलाव) की कथा है । दोनों ने मिलकर एक रोहित मत्स्य पकड़ा किन्तु बँटवारे में मतभेद होने पर उन्होंने एक श्रृंगाल की सहायता माँगी । श्रृंगाल ने एक को मत्स्य की पूँछ दे दी, और दूसरे को मुँह और बीच का मांसल भाग अपनी श्रृंगाली के लिए लेकर चलता बना । वृक्षदेवता के रूप में बोधिसत्व ने सारी घटना देखी । दृश्य में शिलायुक्त पृष्ठभूमि पर नदी के निकट श्रृंगाल एवं उद्र अंकित हैं । नदी में मछलियाँ भी हैं । उद्रों के समक्ष रोहित मत्स्य का मुँह और पूँछ का भाग पड़ा है । दाहिनी ओर मत्स्य का मांसल भाग ले जाता हुआ श्रृंगाल दिखाया गया है । वामपार्श्व में वृक्ष के साथ तपस्वी का अंकन है । दृश्य के साथ लेख है – उद जातक।[66]

निग्रोधमिग जातक

निग्रोधमिग जातक (संख्या 12) में मृग–बोधिसत्व एक गर्भिणी मृगी के प्राणों की रक्षा हेतु अपने प्राण उत्सर्ग करने को तत्पर हो जाते हैं । बनारस के राजा की

रसोई में प्रतिदिन एक मृग भेजा जाता था । गर्भिणी मृगी के भेजे जाने के अवसर पर बोधिसत्व ने स्वयं जाना स्वीकार किया । इससे प्रभावित होकर राजा ने सभी जीवों को अभयदान दिया । दृश्य में "गण्डिका" (वधस्थान) पर मृग खड़ा है । सामने कुल्हाड़ी लिए रसोइया है । गंडिका रस्सी से बँधी हुई है । दृश्य के साथ लेख है : इसिमिगो जातक।[67]

रूरू जातक

रूरू जातक (संख्या 482) में बोधिसत्व के स्वर्णमृग के रूप की कथा है जिन्होंने गंगा में डूबते हुए एक दुष्ट श्रेष्ठी को बचाया । सुवर्णमृग देखने की इच्छुक रानी को उक्त व्यक्ति ने मृग का निवास स्थान बता दिया । रानी द्वारा प्रेरित राजा ने जब मृग को मारने का प्रयास किया तो मृग ने राजा को उस व्यक्ति की कृतघ्नता के विषय में बताया । राजा ने उस व्यक्ति को दंड दिया और मृगों को अभयदान । दृश्य में कथा की तीन घटनाओं का अंकन है । नीचे की ओर जलमग्न होते व्यक्ति की मृग द्वारा रक्षा की घटना अंकित है । बायीं ओर एक हिरनी जल पी रही है । ऊपर की ओर, वनप्रांगण में एक हरिण विश्रामरत है ओर चार अन्य हिरनियाँ राजा की शरसंधान मुद्रा से भयभीत हैं । राजा की शरसंधानरत आकृति के आगे, दो सेवकों सहित, राजा पुनः नमस्कार मुद्रा में हैं, मानों वे मृग के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर रहे हों । दृश्य पर अभिलेख है – मिग जातकं।[68]

छद्दंत जातक

छद्दंत जातक (संख्या 514) में वर्णित कथा के अनुसार बोधिसत्व छह दाँतोवाले श्वेत हाथी थे, जिनकी दो पत्नियाँ थीं । इनमें से एक पत्नी उन्हें अधिक प्रिय थी । दूसरी ईर्ष्यावश प्राण त्याग देती है । अगले जन्म में वह बनारस के राजा की रानी बनती है और पूर्वजन्म की स्मृतिवश वह हाथी के छह दाँत प्राप्त करना चाहती है । सोनुत्तर आखेटक उससे आदेश प्राप्त कर वन में हाथी को घायल कर

देता है और फिर उसके दाँत काट लेता है । दाँत प्रस्तुत किये जाने पर, रानी, हाथी के दु:ख की चर्चा सुन, प्राण त्याग देती है । दृश्य में न्यग्रोध वृक्ष के साथ गजराज की पत्नियों को दिखाया गया है । बायीं ओर पुनः घायल गजराज है और आखेटक एक ओर से उनके दाँतों को काटता हुआ दिखाया गया है । दृश्य का अभिलेख है – छद्दंतिय जातकं।[69]

<u>सूचिजातक</u>

सूचिजातक (संख्या 387) में बोधिसत्व द्वारा एक कुशल कर्मकार के रूप में काशी में जन्म लेने की कथा है । निकटस्थ ग्राम के एक राजकर्मकार की कन्या का सौन्दर्य विख्यात था । उक्त कन्या के वरण के प्रति आकांक्षी बोधिसत्व कर्मकार ने अपने कौशल द्वारा उसे प्रभावित करने की चेष्टा की । अपनी कुशलता और भाग्य की परीक्षा करने के लिए उसने एक सूची (सुई) बनायी जो लौह को बेध सकती थी और पानी पर तैर सकती थी । उसने सात महीन खोल बनाकर सुई को उनमें रखा और राजकर्मकार के भवन पर पहुँचा । कर्मकार की कन्या एक ताड़पत्र का पंखा अपने पिता पर झल रही थी । उसने बाहर निकलकर बोधिसत्व से उसके आने का प्रयोजन पूछा । बोधिसत्व ने विभिन्न कर्मकारों की मंडली में स्वनिर्मित सुई के गुणों का प्रदर्शन किया और धन तथा पद प्राप्त करके उस कन्या का वरण किया ।

दृश्य में दायीं ओर एक सीधे और एक लम्बे भवन के अन्तर में राजकर्मकार आसनासीन हैं । बायीं ओर कर्मकार की कन्या तथा बोधिसत्व को सुई के संबंध में वार्तालाप करते दिखाया गया है । इस दृश्य की पहचान बरूआ ने की है।[70]

<u>मघादेव जातक</u> (संख्या 9)

इस जातक में विदेहराज मघादेव का उल्लेख है जो नापित द्वारा श्वेत केश दिखाये जाने पर राजपाट अपने पुत्र को सौंपकर सन्यासी हो गया था।[71]

इस जातक के अंकन में, लताबद्ध दृश्य के मध्य, मघादेव नामक राजा को न्यस्तकेश, आसनासीन दिखाया गया है । पीछे एक नापित है जो राजा के बढ़े हुए हाथ में कुछ देने की चेष्टा में है । सामने की ओर नापित का पात्र तथा क्षौर–कर्म के अन्य उपकरण हैं । राजा के वाम पार्श्व में एक व्यक्ति नमस्कार मुद्रा में है । यह राजा का पुत्र है।[72]

<u>महाउम्मग जातक</u> (संख्या 546)

इस जातक में बोधिसत्व विदेहराज के परामर्शदाता हैं । उनकी सम्मानपूर्ण स्थिति से ईर्ष्याग्रस्त चार अन्य अमात्य राजा के रत्न चुराकर उनकी पत्नी अमरा को दे देते हैं । बोधिसत्व शंकावश भयभीत होकर भाग जाते हैं किन्तु अमरा यत्नपूर्वक चारों अमात्यों को टोकरियों में बंद करके राजा के समक्ष उपस्थित करती हैं, और राजा के रत्न वापस लौटाकर उनके षड्यंत्र को प्रकट करती है ।

अंकित दृश्य में मध्य में राजा सिंहासनासीन हैं । उनके एक ओर एक चौरीधारिणी सेविका है और पीछे चार सभासद हैं । वाम भाग में अमरा की प्रभावशाली आकृति है । उसके साथ उसकी सेविका है । दो झावे खुले हुए हैं जिनकी ओर अमरा संकेत कर रही है । तीसरे को एक सेवक खोल रहा है और चौथा झावा विहंगिका सहित लाया जा रहा है । मन्त्रियों के मुंडित शिर उनके अपमान के सूचक हैं।[73]

<u>महाबोधि जातक</u> (संख्या 528)

इस जातक में बोधिसत्व द्वारा उदीच्य ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने की कथा है । वाराणसी में आकर उन्होंने राजा की न्याय व्यवस्था की रक्षा की । राजा के धूर्त मन्त्री मनमानी करते रहते थे । महाबोधि नामक इस ब्राह्मण की बढ़ती हुई ख्याति के कारण ईर्ष्यावश उन्होंने इन्हें मारने का प्रयत्न किया और इनके विरूद्ध षड्यंत्र रचा ।

किन्तु एक श्वान ने बोधिसत्व को पहले ही आगाह कर दिया था, अतः वे बोधिसत्व को मारने में सफल नहीं हो सके । बोधिसत्व खिन्न होकर नगर छोड़ चले गये यद्यपि राजा ने उन्हें रोकने का भरसक प्रयास किया ।

दृश्य में विभिन्न कुटियों की पृष्ठभूमि सहित दायीं ओर राजा तथा रानी का और बायीं ओर ब्राह्मण महाबोधि का अंकन है । इनके बीच में श्वान है जिसने राजा रानी की बात सुनकर षडयंत्र की जानकारी बोधिसत्व को दी थी । श्वान को भौंकते हुए दिखाया गया है । बोधिसत्व नगर छोड़ने के लिए तत्पर हैं । बरूआ ने इसकी पहचान बक जातक से की है।[74] जो सही नहीं है ।

भिस जातक (संख्या 488)

इस जातक में ब्राह्मण रूपी बोधिसत्व द्वारा कुटुम्ब तथा सेवकों सहित तप का वर्णन है । नौ व्यक्तियों के इस तप समुदाय में प्रतिदिन कोई एक व्यक्ति भोजन की व्यवस्था करता था । अन्य लोग अपनी तपश्चर्या में रत रहते थे । सक्क ने इनके तप को भंग करने की चेष्टा में, भोजन के लिए लाये गये कमलनाल अदृश्य कर देने का प्रयत्न किया । बोधिसत्व ने अपने साथियों पर इसका दोषारोपण किया किन्तु सभी साथियों ने अपनी निर्दोषिता सिद्ध कर दी । इसकी साक्षी हाथी, मर्कट तथा एक वृक्षदेवता ने दी । अन्ततोगत्वा सक्क ने प्रकट होकर कमलनाल वापस कर दिये और अपना छल स्वीकार कर लिया । दृश्य में पर्णकुटी के समक्ष एक आसन पर मृगछाला बिछाये बोधिसत्व बैठे हैं, साथ में एक तपस्विनी स्त्री है । सामने सक्क हैं जो कमलनाल लौटाते दिखाये गये हैं । मर्कट तथा हाथी भी इस दृश्य में साक्षी रूप में दिखाये गये हैं । दृश्य के साथ अभिलेख हैं भिस हरनिय जातक।[75]

दूभियमक्कट जातक (संख्या 174)

इस जातक में बोधिसत्व द्वारा काशी के एक ब्राह्मण कुल में जन्म लेने की कथा है । नगर के बाहर स्थित कूप से स्वयं पानी पीकर बोधिसत्व ने एक

प्यासे बन्दर को पानी पिलाया । जल पिपासा शांत हो जाने पर वानर ने बोधिसत्व को मुँह चिढ़ाया और धिक्कारे जाने पर उसने वृक्ष के नीचे लेटे बोधिसत्व पर विष्टि कर दी । कथा अंकन में बोधिसत्व वानर की जल-पिपासा शान्त करते हुए दिखाये गये हैं । दाहिनी ओर वे विहंगिका स्थित जल-पात्रों को लेकर जाते दिखाये गये हैं । वानर मुँह चिढ़ा रहा है । दृश्य पर अभिलेख हैं, सेच्छ जातक।[76]

मूगपक्ख जातक (संख्या 538)

बोधिसत्व ने बनारस नरेश के पुत्र के रूप में जन्म लिया । एक बार चार डाकुओं को दण्ड पाते देख, खिन्न मत होकर वह एक मूक, बधिर एवं निस्पंद व्यक्ति का सा आचरण 12 वर्ष तक करते रहे । अन्ततोगत्वा राजा ने उन्हें मृत समझ, गाड़ देने का आदेश अपने सारथी को दिया । किन्तु वन में जाकर बोधिसत्व ने संसार से वैराग्य लेने का मन्तव्य प्रगट किया । राजा उन्हें पुनः वापस लाने के विचार से उनसे मिलने गये, परन्तु बोधिसत्व को वापस लाने के बजाय वह स्वयं ही उनके विचारों से सहमत हो गये ।

इस कथा का निरूपण एक ही दृश्य के तीन भागों में किया गया है । एक ओर राजा एक मंडलाकार आसन पर बोधिसत्व को गोद में लिए बैठा है, इसके ऊपर राजा का सभा-भवन अंकित है । इस दृश्य के सामने, चार अश्व संयुक्त एक रथ हैं, जिसके साथ बोधिसत्व राजपुत्र की आकृति है । राजपुत्र के वाम पार्श्व में रथ का सारथी है जो गढ्ढा खोद रहा है । इनके ऊपर वन प्रांगण में योग-मुद्रा में बैठे बोधिसत्व नमस्कार मुद्रा में खड़े राजा को व्याख्यान दे रहे हैं।[77]

अलम्बुसा जातक (संख्या 523)

इस जातक कथा के अनुसार बोधिसत्व ब्राह्मण के रूप में जेन्म लेते हैं और आयु होने पर वानप्रस्थी हो जाते हैं । उनके वीर्य से मिश्रित जल पीने के कारण

एक हिरनी गर्भवती हो जाती है और उससे ऋष्यश्रृंग नामक बालक का जन्म होता है । दृश्य में, ऊपर की ओर वानप्रस्थी ब्राह्मण को अग्निचर्यारत दिखाया गया है । वाम भाग में उसकी पर्णकुटी है । बीच में कुमार ऋष्यश्रृंग के जन्म को स्वाभाविक रूप में अंकित किया गया है । मृगी तथा ऋषि के एक-एक अंकन और हैं।[78]

<u>वेस्सन्तर जातक</u> (संख्या 547)

इस जातक में बोधिसत्व द्वारा वेस्सन्तर नामक एक राजकुमार के रूप में जन्म लेने की कथा है । यह राजकुमार अपनी दानवृत्ति के कारण कष्ट के भागी होते हैं । इनके निकटस्थ देश कलिंग में अकाल पड़ता है । कलिंगराज की अनुमति लेकर कुछ ब्राहमण जेतुत्तर नगर के पूर्वी द्वार पर आकर वेस्सन्तर से उनका शुभ हाथी मॉग लेते हैं । यह हाथी जहाँ रहता है वहाँ अनावृष्टि आदि कष्ट नहीं व्याप्त होते । राजकुमार हाथी दे तो देते हैं पर उन्हें, अपना राज्य छोड़कर वन को प्रस्थान करना होता है । राज्य छोड़कर जाते समय चार अन्य ब्राह्मण उसके चतुरश्वरथ के घोड़े मॉग लेते हैं । वनवास काल में भी अपनी दानवृति के कारण इन्हें अनेक कष्ट प्राप्त होते हैं । परन्तु अन्ततोगत्वा वेस्सन्तर का जीवन सुखपूर्वक बीतता है।

स्तूपों में वेस्सन्तर जातक के अंकन का विशेष विधान था।[79] भरहुत के दृश्यों में भी एक खंडित वेदिका स्तम्भ पर वेस्सन्तर जातक के हाथी तथा घोड़ों के दान के प्रकरण दिए गए हैं।[80] एक कोणक स्तम्भ के दो मुखों पर उसके कथा सूत्रों का अंकन है । स्तम्भ के दो खण्डों में हाथी के दान प्रकरण का और शेष दो में घोड़ों के दान प्रकरण का अंकन है । इनमें हाथी पर बैठे वेस्सन्तर दिखाए गए हैं । नीचे की ओर दो बालक हैं, जो उनके "जाति" नामक पुत्र और "कन्हाजिना" नामक कन्या की ओर संकेत करते हैं । वेस्सन्तर द्वारा विधिवत् ब्राह्मणों को हाथी देते हुए दिखलाया गया है । अन्य दृश्यों में ब्राह्मणों द्वारा उनसे घोड़े प्राप्त करने की कथा का निरूपण है ।

यह दृश्य वेस्सन्तर जातक का प्रमाणिक दृश्य है।[81]

<u>मिगपोतक जातक</u> (संख्या 372)

इस जातक में बोधिसत्व के सक्क रूप में जन्म लेने की कथा है । तपस्वी जीवन में इन्होंने एक मृग का पालन पोषण किया । इस मृग की मृत्यु के कारण उन्हें विषाद होने पर सक्क देवता ने इन्हें धर्म की ओर प्रेरित किया । दृश्य में दाहिनी ओर कुटी के सामने, तपस्वी को मृग पर झुका दिखलाया गया है । सक्क बायीं ओर खड़े उपदेश दे रहे हैं । दो वृक्ष भी अंकित हैं।[82]

<u>सुजात जातक</u> (संख्या 352)

इस जातक में बनारस के एक भूमिधर (धनिक) की कथा है जो पिता की मृत्यु से विह्वल हो अपना सब काम छोड़ देता है । बोधिसत्व उसके पुत्र के रूप में अवतरित हैं । वे एक मृत वृषभ को घास खिलाने का प्रयत्न करके यह दिखाते हैं कि मृत जीव के प्रति ऐसी आसक्ति अनावश्यक तथा परिहार्य है । दृश्य में वृषभ जीवित रूप में अंकित है । बोधिसत्व उसे घास खिलाने के यत्न में है, पिता इनके पीछे खड़े है।[83]

<u>कण्डरी जातक</u> (संख्या 341)

इस जातक में कण्डरिकी नामक एक सुन्दर राजा की चरित्रहीन पत्नी का उल्लेख है जिसके दुराचरण से रूष्ट हो राजा उसे मृत्यु–दण्ड देता है, किन्तु पांचाल चंड नामक पुरोहित के निर्देश पर राजा भ्रमण के लिए निकलता है और अनेक स्त्रियों को आचरण भ्रष्ट देख उसका ह्रदय परिवर्तन होता है । वह अपनी पत्नी को क्षमा कर देता है । दृश्य में राजा तथा रानी खड़े हुए अंकित किये गये हैं । रानी के वामहस्त में पक्षी (सारिका ?) है । राजा के हाथ में सम्भवतः वह कुंडल है जिससे रानी पर उसका संदेह सिद्ध हुआ था।[84]

<u>अंडभूत जातक</u> (संख्या 62)

इस जातक में बनारस नरेश बोधिसत्व और उसके पुरोहित की घूतक्रीड़ा की कथा है । राजा घूतक्रीड़ा के समय सदैव एक लय बोलकर कि "स्त्रियां अवसर पाकर सदैव धोखा देती हैं" जीत जाता था । कथन की सत्यता उसकी जीत को सुलभ बनाती थी । पुरोहित एक कन्या को जन्म से ही अपने साथ रखता है और उसे परपुरूष की छाया से भी बचाता है । परन्तु राजा छल से उसके व्रत को भंग करा देता है और पुरोहित पुनः राजा से हार जाता है ।

एक खंडित वेदिका स्तम्भ पर वह दृश्य अंकित है । पुरोहित बैठा वीणा वादन कर रहा है । उसकी ऑखों पर पट्टी बँधी है, सामने उसकी पत्नी नृत्य मुद्रा में उत्थितहस्ता है । पुरोहित और उसकी पत्नी के बीच एक मुष्टि दिखायी गयी है । पुरोहित की पत्नी का प्रेमी स्वयं छिपा हुआ है और उस मुष्टि से पुरोहित पर आघात कर रहा है । पद्यक के दक्षिण भाग में पुरोहित पत्नी पुनः नृत्य मुद्रा में दिखायी गयी है।[85]

<u>महाजनक जातक</u> (संख्या 539)

इस जातक में महाजनक और उसकी पत्नी सीवली की कथा है । महाजनक वैरागी होकर राजपाट छोड़कर चले गये । सीवली उनकी अनुवर्तिनी हुई जो राजा को उचित नहीं प्रतीत हुआ । भिक्षा मांगते हुए जनक एक इषुकारक (वाणकार) के घर पहुँचें । उसकी एकाग्रता से प्रभावित होकर उन्होंने यह शिक्षा ग्रहण की कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए एकाग्रता ही सारपूर्ण है । कथा के अंकन में इषुकारक बैठा हुआ शर-निर्माण में रत है । सामने राजा रानी खड़े है और दो अन्य व्यक्ति भी अंकित हैं।[86]

<u>छम्मसाटक जातक</u> (संख्या 324)

इस जातक में एक ज्ञानगर्वित ब्राह्मण की कथा है जो एक चर्मशाटक पहने वाराणसी का पर्यटन कर रहा था । एक मेष ने अपना सर झुकाकर आवेशपूर्वक इस पर सींगों से प्रहार करने की चेष्टा की, परन्तु ब्राह्मण ने मेष के झुके हुए सिर को देखकर यह विचार किया कि वह मेष उनकी विद्वता से प्रभावित होकर, उसके प्रति नमितशिर हो, श्रद्वा व्यक्त कर रहा है । तभी मेष ने ब्राह्मण की जंघा पर प्राणघाती वार किया । ब्राह्मण और उसका भिक्षापात्र भूमि पर गिर गये । बोधिसत्व ने, जो एक श्रेष्ठी परिवार में जन्में थे, ब्राह्मण को सान्त्वना दी, परन्तु ब्राह्मण की जीवनरक्षा न हो सकी ।

दृश्य में एक ओर विहंगिका सहित ब्राह्मण का अंकन है । इसके सामने एक व्यक्ति और एक पशु (मेष ?) हैं । दोनों वार्तालाप रत हैं । दूसरी ओर मेष के आघात से ब्राह्मण भूमि पर गिरता दिखाया गयाहै । साथ में एक व्यक्ति की आकृति है जो ब्राह्मण के साथ वार्तालाप कर रहा है।[87] बोधिसत्व का श्रेष्ठीरूपी अंकन इसमें नहीं है । दृश्य की पहचान लैनमैन ने की थी।[88]

यद्यपि जातकों के विभिन्न अंकन भरहुत के दृश्यों में प्राप्त होते हैं, तथापि निश्चित सूत्रों के बिना इनकी पहचान का प्रयास कठिन है । बौद्धों के बीच जातक कथाएं बड़ी विख्यात रही होंगी । इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं । हर्षचरित के आठवें अध्याय में एक बौद्ध वनखंड का वर्णन है जिसमें उलूकों द्वारा जातक के पाठ का उल्लेख प्राप्त होता है । जातकों के अंकन का निर्देश महावंस से प्राप्त होता है । अपनी सिंहल यात्रा के विवरण में फाह्यान ने उल्लेख किया है कि अभयगिरि नामक स्थान पर उसने पाँच सौ जातक दृश्यों में बोधिसत्व के विभिन्न रूपों के दर्शन किये । भरहुत के अतिरिक्त साँची, अमरावती, नागार्जुनकोंडा, मथुरा, गांधार आदि की कलासामग्री में भी जातक दृश्य निरूपित है।[89] परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि भरहुत में जातक के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के अंकन नहीं हैं । बरूआ

ने भरहुत पर विचार करते हुए अधिकांश दृश्यों को जातकों से संबंधित किया है, किन्तु उनके अनेक मतों को मान्यता नहीं मिली।[90]

बौद्ध साहित्य में विभिन्न स्वर्गो की कल्पना है जिनमें विभिन्न देवताओं का उनके पद और प्रतिष्ठा के अनुसार निवास माना गया है । चार दिशाओं के चतुर्महाराजिक देवता हैं, जिनमें पूर्वदिशा स्थित धृतराष्ट्र, दक्षिण दिशा स्थित विरूढ़क, पश्चिम में विरूपाक्ष और उत्तर में कुबेर की सत्ता है।[91] भरहुत के एक दृश्य में तीन अभिलेखों से[92] उत्तर स्थित 'सर्वगांऋशंस (उत्तरम् दिसि तिनि सवगनिसिसा)' देवता, दक्षिण स्थित 'कामावचार देवता' तथा पूर्व स्थित 'शुद्धावास देवताओं' का उल्लेख प्राप्त है । चौथी दिशा का उल्लेख नहीं है, किन्तु दृश्य में पश्चिम दिशा के क्षेत्र में मार तथा नाग एवं सुपर्णो का अंकन है जो इस दिशा में इन देवताओं के निवास का द्योतक है । सर्वगांऋशंस (?) लोक की स्थिति बौद्ध साहित्य में प्राप्त नहीं है । अनुमान है कि भरहुत अभिलेख में प्राप्त इन देवताओं के तीन वर्ग, 'रूपब्रह्मलोक' के एकादश (निम्नवर्ग के) देवताओं के प्रतिरूप हैं।[93] भरहुत के एक दृश्य[94] में, उपर्युक्त चतुर्वर्गीय देवताओं का पॉच-पॉच के समूहों में चार दिशाओं में अंकन है । दिशाओं का अन्तर आकृतियों के बीच में आरोपित वृक्षों द्वारा दिखाया गया है । इस प्रकार वृक्ष दिशाओं के मध्य एक विभाजन रेखा प्रस्तुत करते हैं । सभी देवता, बुद्ध के अमूर्त रूप के प्रति, आदर भाव से नमस्कार मुद्रा में दिखाये गये हैं । दायीं ओर नीचे, एक वृक्ष की छाया में, खिन्न मुद्रा में बैठे मार को दिखाया गया है । शेष उन्नीस आकृतियाँ खड़ी हैं । मार के साथ फण-युक्त नाग तथा पंख वाले सुपर्ण भी हैं ।

देवों से संबंधित अन्य दृश्यों को बुद्ध के जीवन की घटनाओं से जोड़ा जा सकता है । साथ ही, इनमें स्वर्ग लोक के विभिन्न दृश्य भी संयोजित हैं । 'प्रसेनजित स्तम्भ' के एक मुख पर[95] देवताओं का मुदित समाज दिखाया गया है । इस समुदाय में बायीं ओर आठ स्त्रियां वाद्यवृन्द सहित बैठी हैं । उनके हाथों में वीणा,

मृदंग तथा शम्या (मजीरा) हैं । दो स्त्रियां करतल ध्वनि करती दिखलायी गयी हैं। दाहिने भाग में, चार अप्सराएँ तलांतर द्वारा दो युग्मों में उत्कीर्ण हैं । निम्नतल में अलम्बुषा और मिश्रकेशी तथा उनके मध्य स्थित एक नृत्यरत बालक है । अलम्बुषा के सर पर पगड़ी है, मिश्रकेशी स्त्री वेश में है । इसमें गीत और नाटक के दृश्य में नकल का आशय भी है । इस दृश्य को कुछ विद्वानों ने बुद्ध के जन्म की घटना से संबंधित किया है । उनका अनुमान है कि नाट्य दृश्य में स्वयं शुद्धोदन अपने नवजात बालक के साथ, पगड़ी धारिणी अलम्बुषा और बालक के माध्यम से अंकित किये गये हैं।[96] ऊपर की ओर सुभद्रा तथा पद्मावती अंकितहैं । सारे दृश्य के साथ अभिलेख है 'साडिक सम्मदम् तुरम् देवानम्' ।

पालि ग्रन्थों में त्रायस्त्रिंश नामक स्वर्ग के निवासी, सुधर्मा देवताओं के अधिपति, इन्द्र की 'सुधर्मा–सभा' का बहुधा उल्लेख मिलता है।[97] एक जातक[98] की निदान कथा में वर्णन है कि 'अभिनिष्क्रमण' के बाद बोधिसत्व ने अपने केश काट डाले और उन्हें अन्तरिक्ष की ओर फेंक दिया । सक्क ने यह महाचूड़ा आदरपूर्वक ग्रहण की[99] और एक सुवर्णपात्र में रखकर इसे 'चूड़ामणि चैत्य' में स्थापित किया । भरहुत के दृश्य में चूड़ा से सम्बन्धित एक उत्सव का अंकन है । जिसमें 'सुधम्मा सभा' में एक छत्रयुक्त आसन पर चूड़ा स्थित है । साथ के भवन का नाम 'वैजयन्त प्रासाद' है जो वेदिका आवेष्ठित, विभिन्न तारेणयुक्त एक त्रितल प्रासाद है । प्रथम तल में चार सेविकाओं सहित इन्द्र अंकित हैं, जो निम्न तल में अंकित चार अप्सराओं के नृत्य को निहार रहे हैं । अप्सराओं के साथ चार पुरूष तथा तीन स्त्रियाँ विभिन्न वाद्ययंत्रों सहित दिखलायी गयी हैं । चूड़ापर्व का यह बड़ा ही आकर्षक निरूपण है सक्क का अंकन अन्यत्र भी प्राप्त है।[100] इसमें एक स्थल पर, इन्द्र से संबंधित बुद्ध के जीवन का एक दृश्य उल्लेखनीय है । घटना का उल्लेख दीघनिकाय के 'सक्कपन्हसुत्त' में प्राप्त होता है जो इस प्रकार है : पंचशिखिन् नामक गंधर्व के गीत से बुद्ध ने उनकी शंकाओं को समाधान किया । भरहुत के दृश्य में एक पद्मक के

अन्तर्गत गुफा का चित्रण है । जिसमें एक छत्र समन्वित आसन पर अदृश्य बुद्ध हैं। इन्द्र का पृष्ठभाग दृष्टिगत होता है । इनके अतिरिक्त आठ अन्य देवता हैं । गुफा के द्वार पर पंचशिखिन् गंधर्व वीणा समेत अंकित हैं।[101]

यक्ष–पूजा और यक्षों के कल्याणकारी एवं विनाशकारी रूपों का विशद वर्णन प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है । सामान्यतः इन्हें वन, जलाशय, नगर की सीमा पर, निर्जन पथ पर, पर्वतों पर या समुद्र के विभिन्न रास्तो पर निवास करने वाले जीवों के रूप में माना गया है, जो अपनी इच्छा या वृत्ति के अनुरूप, मनुष्य की सहायता करते, अथवा कष्ट देते हैं । इनसे संबंधित सभी दृष्टान्तों में, इनके प्रति लोकजीवन में व्याप्त आस्थाएं और विश्वास विरोधाभास से परिपूर्ण हैं । यक्ष यदि महाकाय, महौजस् और विकट आकृति वाले जीव थे तो यक्षणियाँ दिव्य सौंदर्य की स्वामिनी थीं । कुछ यक्ष स्वभावतः, बौद्ध धर्मावलम्बी थे तो कुछ बौद्धों को विभिन्न संत्रासों से पीड़ित करते थे । कुछ धन, वैभव, संतान आदि देकर भक्तों को सुखी करते थे तो कुछ नरभक्षी और शिशुहंता यक्ष उनके दुःख का कारण बन जाते थे । इनकी क्षमताएं असीम थीं और लाभकारी एवं विनाशकारी रूपों में समान गति से प्रवाहित होती थीं । यक्षों के अनेकानेक परिवार थे और वे विभिन्न नगरों में निवास करते थे अथवा उनके स्वामी थे । उत्तर कुरू में यक्षों के राजा वैश्रवण (कुबेर) का निवास था । वे असीम धनराशि के स्वामी थे, साथ ही उनके अनेक सेनापति थे । ये सेनापति स्वयं भी दिव्य चतुरंगबल के स्वामी थे । बौद्ध साहित्य में सत्कर्म अथवा दुष्कर्म, दोनों ही, यक्ष योनि के कारक कहे गये हैं, जो इनके द्वैधी रूप को और भी स्पष्ट करता है । समाज का कोई ऐसा वर्ग नहीं था जो यक्षों में आस्था न रखता हो । राजा, ब्राह्मण, धनिक, सामान्य वर्ग, व्यापारी, पुरोहित आदि सभी इनके प्रभाव में थे और इनसे अपने कल्याण की अपेक्षा रखते थे । किन्तु यक्षों द्वारा त्रस्त होने पर वह बुद्ध अथवा अन्य देवों की शरण में जाते थे । पालि ग्रन्थों और उनकी अट्टकथाओं में अनेक यक्षों के कथारूपों का विकास प्राप्त होता है । संयुत्त

निकाय के 'यक्खख सुत्त' में मणिभद्र, पूर्णभद्र, इंदक, सुचिलोम, खर, आलवक आदि ऐसे यक्षों का भी वर्णन प्राप्त होता है जो बुद्ध के प्रति प्रेरित हुए । संयुत्त निकाय तथा सुत्त निपात की टीकाओं में इनके अधिक विशद वर्णन है।[102]

भरहुत में विभिन्न यक्षों के अंकन प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ का वर्णन तो बौद्ध साहित्य में मिलता है, किन्तु शेष ठीक से पहचाने नहीं जा सके हैं । भरहुत के जातक दृश्यों में यक्षों से संबंधित लोककथाओं को स्थान दिया गया है । पुन्नक यक्ष से सम्बन्धित 'विधुरपंडित' की जातक कथा (संख्या 545) एवं उससे संबंधित विभिन्न सूत्रों का अंकन, एक ऐसा ही उदाहरण है।[103]

विधुरपण्डित नाम के एक ज्ञानी व्यक्ति के रूप में बोधिसत्व अवतरित होते हैं । नागरनी विमला उनके उपदेश सुनने की इच्छा व्यक्त करती है । इसमें, उसकी पुत्री इंरदती का प्रेमी, पूर्णक यक्ष सहायक होता है । पूर्णक, विधुरपण्डित के समक्ष राजा से द्यूतक्रीड़ा का प्रस्ताव रखता है और अंतत· विधुरपण्डित को दाँव पर लगवाकर जीत लेता है तथा उसे साथ लेकर नागराज्ञी से मिलने के लिए प्रस्थान करता है । रास्ते में कालगिरि पर्वत पर दोनों में शक्ति का प्रदर्शन होता है, जिसमें पूर्णक विधुरपण्डित का अनुगामी हो जाता है । वह विधुरपण्डित को नागलोक ले जाकर पुनः इन्द्रप्रस्थ वापस ले आता है । यह समस्त कथा भरहुत में शिलांकित है । ऊपर के भाग में इरन्दती तथा पूर्णक वनखंड में वार्तालाप रत हैं । नागभवन के द्वार पर संभवतः इरंदती का सिर है, इसके नीचे नाग राजा को सपत्नीक सिंहासनासीन दिखलाया गया है । इनके सामने पूर्णक तथा विधुरपंडित हैं । प्रासाद के द्वार में प्रवेश करने वाला व्यक्ति भी संभवतः पूर्णक है । फलक के निम्न भाग में अपने दिव्य अश्व सहित, द्यूतरत पूर्णक हैं, द्वार पर विधुरपंडित है।[104]

मध्यवर्ती दृश्य में बायीं ओर, पूर्णक को बोधिसत्व सहित गंतव्य की ओर अग्रसर होते दिखाया गया है । ऊपर, बायें भाग में, कालगिरि पर्वत पर पूर्णक बोधिसत्व

को उल्टा लटकाए है । दायीं ओर बोधिसत्व के व्याख्यान का दृश्य अंकित हैं । दाहिनी ओर ही, बने हुए स्थान में, पूर्णक, बोधिसत्व विधुरपंडित को वापस इन्द्रप्रस्थ ले जाता हुआ दिखलाया गया है।[105] दृश्य के साथ-साथ लेख है - 'वितुर पुनकिय जातकं' ।

भरहुत वेदिका के उत्तर पश्चिम तोरणांतर के कोने वाले स्तम्भ पर कुबेर, चंद्रा यक्षी तथा अजकालक यक्ष हैं और उसके अनुरूप ही दक्षिण पूर्वी स्तम्भ पर विरूढ़क और गंगित यक्ष तथा चक्रवाक नागराज हैं । इससे स्पष्ट होता है कि 'आटानाटिय सुत्त'[106] में उल्लिखित चतुर्महाराजिक देवताओं में कुबेर तथा विरूढ़क के अतिरिक्त सम्भवतः विरूपाक्ष एवं धृतराष्ट्र भी भरहुत वेदिकाओं के अन्य तोरणांतर - स्थित स्तम्भों पर बने रहे होंगे जो अब अप्राप्य हैं । इनके अतिरिक्त, यक्षों में सुप्रवास यक्ष, सुचिलोमन् यक्ष एवं सुदर्शना यक्षी के भी मूर्ति - अंकन प्राप्त होते हैं । सभी वाहन-युक्त हैं और स्थानक मुद्रा में हैं । अजकालक के अतिरिक्त सभी यक्षों के हाथ नमस्कार मुद्रा में मिलते हैं । कुबेर का वाहन एक वामन नर है, अजकालक का वाहन खंडित है किन्तु इसके अवशेष से निम्न मत्स्यार्ध सहित नर-आकृति का भान होता है । गंगित तथा सुप्रावृष् के वाहन गज हैं । विरूढ़क के वाहन स्थान पर वनखंड अंकित है, और सुचिलोम को एक वेदिका पर खड़े हुए दिखाया गया है । इन यक्षों में कुबेर, विरूढ़क और सुचिलोमन् के नाम बौद्ध साहित्य में प्राप्त हैं, प्रथम दो यक्ष उत्तर तथा दक्षिण दिशा के रक्षक हैं । सुचिलोम गया का यक्ष है जो संघ का अनुशासन भंग करने के कारण कुरूप हो गया था । भरहुत के अन्य यक्षों का बौद्ध साहित्य में नाम नहीं मिलता, यद्यपि इनके विषय में बरूआ, हुल्श आदि विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । बरूआ के अनुसार भरहुत का अजकालक यक्ष और उदान[107] में वर्णित पावा का अजकलापक यक्ष एक ही है । गंगित तथा सुप्रावृष् के लिए कोई निश्चित उल्लेख प्राप्त नहीं है, अतः इन्हें यक्ष पूजा की स्थानीय परम्परा से संबंधित करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

यक्षिणियों में चन्द्रा तथा सुदर्शना के नाम प्राप्त होते हैं । चन्द्रा, नागवृक्ष के साथ, दाएं हाथ से उसकी एक शाखा को पकड़े हुए तथा बाएँ हाथ व पैर से उसके तने को घेरे हुए अंकित है । नीचे एक मकरमेष की आकृति उसके वाहन के रूप में है । दूसरी यक्षी है सुदर्शना, जो मकरवाहन पर खड़ी अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाए, तर्जनी से ऊपर की ओर संकेत करती हुई अंकित है । इन दोनों यक्षिणियों का वर्णन प्राचीन साहित्य में प्राप्त नहीं होता । महाभारत[108] में एक सुदर्शना की कक्षा है जिसमें इसे माहिष्मती के राजा दुर्योधन तथा नर्मदा की कन्या बतलाया गया है । सुदर्शना और चन्द्रा दोनों ही नाम यक्षियों के असीम सौंदर्य से संबंधित विश्वास की ओर संकेत करते हैं।[109]

मथुरा और विदिशा आदि विभिन्न स्थानों से यक्ष और यक्षिणियों को अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं किन्तु भरहुत की इन मूर्तियों का कला–परम्परा की दृष्टि से अद्वितीय महत्व है । भरहुत के कलाकारों ने यक्षिणियों के अंकन में अपने आपको अनुशासन की सीमाओं के अर्न्तगत रखा, किन्तु मथुरा के कुषाण कालीन कलाकारों ने इस आदर्श को न अपनाकर, नग्नता एवं शारीरिक सौंदर्य के उत्तेजक रूप को प्रधानता दी।[110]

यक्षों को जल का एक प्रमुख देवता माना गया है । जल से प्राण तत्व की उत्पत्ति का विचार प्राचीन साहित्य में बहुधा प्राप्त होता है । कुमारस्वामी[111] का मत है कि यक्षों के माध्यम से इस विचारधारा का पर्याप्त रूप से परिचय दिया गया है । प्रारम्भिक कला में यक्षों की अनेक ऐसी मूर्तियाँ हैं जिनमें इनके मुख या नाभि से प्रसूत एक अमरबेल अथवा कल्पलता दिखलायी गयी है।[112] इस कल्पवल्ली में, जल से, प्राणसंचार की भावना निबद्ध है । मंगलघट के अंकनों से भी यही विचारधारा स्पष्ट होती है।

भरहुत में "देवता" नामांकित दो देवियों के अंकन हैं । इनकी 'क्षुद्र' अथवा 'महा' पदवियों का भी उल्लेख है । प्रथम मूर्ति में, क्षुद्रकोका देवता को एक पुष्पित अशोक वृक्ष की शाखा पकड़े[113] वामहस्त एवं पद से इसकी डाल को अवगुंठित किये अंकित किया गया है, नीचे इसका वाहन, गज है । मूर्ति अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत है । दूसरी मूर्ति महाकोका की है – इसका बायां हाथ बायीं जंघा पर आश्रित है और उठा हुआ दाहिना हाथ सिर पर है।[114] ल्यूडर्स का अनुमान है कि कोका, 'कोकनदा' का संक्षिप्त रूपांतर है । कोकनदा तथा चुल्लकोकनदा का नाम वृष्टि के देवता पज्जुन्न की पुत्रियों के रूप में संयुत्तनिकाय में मिलता है।[115] इनके अतिरिक्त 'सिरिमा' देवता का भी अंकन भरहुत की एक वेदिका पर प्राप्त है।[116] महावस्तु तथा ललित–विस्तर में पश्चिम दिशा की देवियों में 'श्रीमती' का नाम प्राप्त होता है । सम्भवतः 'सिरिमा' नाम से इसी देवी का अभिप्राय रहा होगा।[117]

नागपूजा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से स्थापित है । विभिन्न धर्मो के प्राचीन ग्रंथों में अनेक नागराजाओं तथा नागलोक के संदर्भ प्राप्त होते हैं।[118] यक्षों की ही भांति, नाग भी प्राचीन लोकजीवन के धार्मिक विश्वासों का एक महत्वपूर्ण अंग थे । बुद्ध के जीवनकाल में अनेक नागराजा उनके संपर्क में आये और बुद्ध ने उनका उद्धार, दमन अथवा सहायता द्वारा किया । इस तरह के अनेक दृष्टांत साहित्य में प्राप्त होते हैं ।

भरहुत के अंकनों में नागों के कई दृश्य हैं । एक दृश्य[119] में, वनखंड – स्थित एक कुटी के सामने किसी जटायुक्त तपस्वी और पंचफणयुक्त नाग के वार्तालाप का दृश्य है । दूसरे में, नागराजा वरूण, उनकी पत्नी विमला तथा कन्या इरंदती के अंकन हैं । नागदम्पत्ति को अपने राजप्रासाद के सभा भवन में बैठा दिखलाया गया है।[120] 'प्रसेनजित् स्तम्भ' पर प्रख्यात नागराजा एरकपत्त की कथा का दृश्य अंकित है । कथासूत्र को तीन दृश्यों में एक साथ निरूपित किया गया है । प्रथम

दृश्य में नागराजा को अपनी पुत्री तथा उत्तम सहित गंगा से प्रकट होते दिखाया गया है । उत्तम, नागकन्या को पुष्प भेंट कर रहे हैं । गंगा तथा छह शिरीय वक्ष भी दृश्य में समन्वित हैं, वाम भाग में नागराजा को दो नाग कन्याओं सहित एवं दक्षिण भाग में आसन पर बैठे हुए अदृश्य बुद्ध की पूजा करते हुए दिखाया गया है।[121]

मुचिलिन्द नागराजा का अंकन एक अन्य दृश्य में है । सम्बोधि के बाद, एक घोर झंझावात और वर्षा से बुद्ध की रक्षा इस नाग ने की थी । यह घटना उरूवेला में घटित हुई थी । दृश्य में आसन पर बुद्ध अदृश्य रूप मे अंकित हैं । उनके पद चिह्न उनकी उपस्थिति की ओर संकेत करते हैं । इन पद चिह्नों पर नागराज अपने फणछत्र को फैलाए है।[122] एक अन्य नागराज, चक्रवाक का अंकन वेदिका स्तम्भ पर प्राप्त होता है । इसे यक्षों की भाँति नमस्कार मुद्रा में अंकित किया गया है । इसके चरणों के नीचे जलाशय है जो संभवतः इसका निवास स्थान था । चक्रवाक नाम साहित्य में अज्ञात है ।

नागों को उनके स्वाभावित रूप में अथवा मानवीय रूप में, दोनों ही प्रकार से अंकित किया गया है । नागराज वरूण, विमला, इरन्दती, एरकपत्त तथा चक्रवाक के अतिरिक्त भरहुत के सभी नाग अंकनों में उनके स्वाभाविक रूप को प्रकट किया गया है । मानवीय रूप में अंकित नागों को पांच फण और नागों को एक फण से युक्त निरूपित करने की परम्परा संभवतः सर्वमान्य थी । उनका फण समन्वित अंकन उन्हें शेष मानवीय आकृतियों से भिन्न रूप प्रदान करता है । एरकपत्त तथा मुचिलिन्द नागराजों से सम्बन्धित दृश्यों में बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध घटनाएं समन्वित हैं।[123]

भरहुत के एक अन्य दृश्य में[124] एक 'त्रिकोणक चंक्रम' के अन्तर्गत तीन फना नाग का अंकन है । साथ में दो सिंह तथा सात हाथी वनखंड में दिखाये गये हैं । कनिंघम ने इसे नागलोक का दृश्य सिद्ध किया है, किन्तु यह मत

स्वीकृत नहीं है । बरूआ – सिन्हा ने इसे एक जातक कथा का निरूपण माना है।[125] परन्तु यह मत भी प्रामाणिक नहीं है । इस दृश्य के अभिप्राय का पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं हो सका है।[126]

प्राचीन धार्मिक विश्वासों के अनुसार प्रमुख देवताओं से अपेक्षाकृत निम्न कोटि का एक देव–समुदाय था जिसमें यक्ष, राक्षस, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, नाग तथा अप्सरा आदि थी । इनके अनेक दृष्यांतों का उल्लेख भारतीय साहित्य में मिलता है । कला में भी इनके प्रथम चित्रण स्पष्टतः भरहुत से ही प्राप्त होते हैं। अप्सरा, यक्ष, देवता तथा नागों के अतिरिक्त भरहुत के दृश्यों में विद्याधर, किन्नर एवं सुपर्ण भी निरूपित किये गये है । सुपर्णो का एक अंकन विभिन्न स्वर्गो के देवताओं के साथ किया गया है और दूसरे अंकन में उन्हें एक ध्वजदण्ड के साथ निरूपित किया गया है।[127] सुपर्णो के अंकन में उन्हें पंख तथा पुच्छ समन्वित रूप में दर्शित किया गया है। किन्नरों का आधा भाग नर का होता था और आधा अश्व का । इनके इस रूप का विवरण साहित्य एवं कला के क्षेत्रों में प्रायः मिलता है । भरहुत में किन्नरों का अंकन तक्करिय जातक के एक प्रकरण में प्राप्त होता है । इसमें राजा के साथ किन्नर–युगल अंकित है जिनका कटिप्रदेश से ऊपर का अर्धाङ्ग मनुष्यों का सा है नीचे का भाग खण्डित है किन्तु पर्ण–आवृत दिखाया गया है।[128] भरहुत के एक जातक–अंकन में विद्याधर का निरूपण है।[129] विद्याधर का नाम है 'विजपि' (विजल्पिन् ?)। बरूआ–सिन्हा ने इसे समुग्ग जातक का दृश्य कहा है।[130] जातक कथा में एक विद्याधर तथा एक अन्य दानव की पत्नी द्वारा, दानव को छलने का वर्णन है। दानव अपनी पत्नी को एक पेटी में बन्द रखता है और पेटी वह अपने पेट के अन्दर रखता है। एक बार स्नान के लिए जाते समय वह पेटी बाहर निकालकर रख जाता है। इसी बीच दानव की पत्नी एक गगनचारी विद्याधर को बुलाकर अपने साथ पेटी में छुपा लेती है । दानव काफी समय तक इस घटना से अपरिचित रहता है किन्तु कालान्तर में एक तपस्वी द्वारा उसे वस्तुस्थिति का ज्ञान होता है । शंका–निवारण हेतु जब वह पेटी खोलता है तो विद्याधर, अदृश्य हो जाता है । दानव अपनी पत्नी का परित्याग

कर देता है । दृश्य में, पृष्ठभूमि में शिलाएं अंकित है तथा एक पुरूष और एक स्त्री निरूपित हैं । पुरूष का हाथ आधी बँधी पगड़ी पर है । शिला पर आसीन स्त्री के दाहिने हाथ में पुष्पगुच्छ है । उसके सिर के ऊपर एक वृक्ष के अग्रभाग में एक विचित्र आकृति अंकित है । इसे पेटी का ढक्कन[131] अथवा विद्याधर का परिधान[132] माना गया है । निम्न कोटि के देवताओं में गंधर्व भी सम्मिलित हैं, इनके विभिन्न पक्षों का वर्णन वैदिक काल से बाद तक के साहित्य में मिलता है । गंधर्व का एक अंकन भरहुत के 'इन्द्रशालगुहा' नामक दृश्य में मिलता है । इसकी आकृति खंडित है किन्तु इसे एक वीणासहित दिखलाया गया है जो गंधर्वो की साहित्य-अनुमोदित संगीत-प्रियता की ओर इंगित करता है । इन्द्र के इस गंधर्व का नाम था पंचशिखिन् । दीघनिकाय के 'सक्कपह्नसुत्त में इसका उल्लेख है जिसमें कहा गया है कि इसने बुद्ध को प्रसन्न करने के लिए अपनी वीणा पर उन्हें मधुर संगीत सुनाया । इस संगीत में बुद्ध की प्रशस्ति थी ।

लोकजीवन में प्रचलित तमाम तत्कालीन विश्वासों और अनेक निम्न कोटि के देवी देवताओं के प्रभाव का परिचय भरहुत के अंकनों में मिलता है । सभी अंकन बड़े सजीव और सारगर्भित हैं।[133]

भरहुत के विभिन्न दृश्यों में अनेक पशु-पक्षियों के अंकन प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ तो अपने स्वाभाविक रूप में है और कुछ समन्वित हैं । स्वाभाविक रूप में स्थल-जन्तु, जलजन्तु, जल-स्थल, रेंगनेवाले, आकाशचारी जन्तु एवं गिलहरी और केकड़ा आदि हैं । विभिन्न जातक कथाओं में सम्बन्धित पशुओं के अंकनों का वर्णन किया जा चुका है । पशुओं में सिंह, गज, अश्व, वृषभ, वराह, मृग, श्रृँगाल, मेष, विड़ाल, श्वान और शश, हंस, कुक्कुट, काक, लट्वा तथा मयूर, पक्षियों में उल्लेखनीय हैं । रेंगनेवाले जन्तुओं में छिपकली और सर्प तथा जल-स्थल-जन्तुओं में मेढ़क, उद्र (ऊदबिलाव) तथा कच्छप के अंकन प्राप्त होते हैं । जलजन्तुओं में मत्स्य का भी निरूपण है । कुछ दृश्यों में केवल पशु-जगत् का अंकन है, किन्तु अन्य में उन्हें

मनुष्यों के साथ कथा के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुए दिखलाया गया है । सामान्यतया कथाचक्र के सूत्रों में उनका महत्व उतना ही है जितना मानवीय आकृतियों का है । कुछ कथांकनों में तो उनका महत्व मनुष्यों से भी अधिक है।[134]

काल्पनिक पशुओं का उल्लेख प्राचीन साहित्य में प्रायः मिलता है। रामायण[135] में ईहामृगों का उल्लेख है जो निश्चय ही काल्पनिक पशु रहे होंगे । वैदिक ग्रंथों में भी काल्पनिक पशुओं से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते हैं । शतपथ ब्राहमण[136] में 'उभयशीर्ष्णी सुपर्णी' का उल्लेख है । संयुक्त आकृति अथवा काल्पनिक आकृति के पशु-पक्षी, सक्षम कल्पना शक्ति के परिचायक हैं । ऐसे कलात्मक निरूपण केवल भारत ही नहीं वरन् पश्चिम-एशियाई विभिन्न प्राचीन स्थलों में भी मिलते हैं । इनके निर्माण का मूल स्रोत कहां था, इस विषय पर विचार करते हुए कुमारस्वामी ने कहा हे कि ईसा से लगभग दो शती पूर्व गंगा की घाटी से लेकर भूमध्य सागर तक के क्षेत्र में एक विशेष कला-परम्परा प्रचलित थी और ये नमूने (motifs) उस संस्कृति की देन है जो किसी एक ही स्थान तक सीमित न होकर सारे मध्य-एशियाई क्षेत्र में व्याप्त थी । भरहुत से ईहामृगों के अंकन के विभिन्न नमूने प्राप्त होते हैं जैसे गज-मकर, सपक्ष सिंह अथवा सपक्ष अश्व।[137] एक पद्मक में जलाशय स्थित गज-मकर की पीठ पर बैठा एक नर उसे अंकुश द्वारा चलाता हुआ दिखाया गया है।[138] एक अन्य दृश्य में मत्स्यपुच्छ-समन्वित सिंह अंकित है।[139] ऐसे वृषभ का अंकन मिलता है जिसके मुख पर गजशुंड आरोपित है।[140] कनिंघम ने इसे गैंडा माना है परन्तु पृष्ठ भाग की आकृति तथा लम्बी पूँछ के कारण यह आकृति वृषभ के अधिक निकट है ।

पशुओं के विभिन्न अंकनों में इनकी पार्श्व आकृतियाँ ही अधिक प्राप्त होती है । सम्मुख (frontal) दिग्दर्शन की परम्परा भरहुत को कला में प्रायः कम ही परिलक्षित होती है । किन्तु विभिन्न मुद्राओं में, जैसे एकाकी, पशुयुग्म, पृष्ठाबद्ध-युगल, परस्पर उन्मुख अथवा विमुख बैठे अथवा खड़े, पंक्तिबद्ध आदि रूपों में इनके अनेक अंकन प्राप्त होते है।[141]

पशुओं का उनके स्वाभाविक रूप में अंकन प्रचुरतापूर्वक मिलता है । इनमें भी सिंह, हाथी, मृग, वानर अधिक मिलते हैं । सिंहों की आकृतियाँ ओजपूर्ण हैं जिनमें इनके पुष्ट शरीर, गर्जन करते हुए मुख, तीखे दाँत, अयाल, रक्त–शिराएँ और पंजे स्वाभाविक रूप से दर्शाए गए हैं । हाथियों का अंकन बहुत प्रभावशाली है और उन्हें प्रत्येक सम्भव मुद्रा में दिखलाया गया है; जैसे वृक्षों को उखाड़ते हुए, अपनी सूँड़ से अपनी पीठ पर पानी उछालते हुए, चैत्य या बोधिवृक्ष की पूजा में झुकते हुए, माल्यार्पण करते हुए इत्यादि । भरहुत के दो अभिलेखों[142] में नडोद पर्वत (अज्ञात) के बहुहस्तिक न्यग्रोध वृक्ष का उल्लेख है । इनमें छह हाथियों को वृक्ष के नीचे स्थित आसन की पूजा करते हुए दिखाया गया है।[143] 'बहुहस्तिक' शब्द भरहुत में अन्यत्र भी प्राप्त होता है।[144] हाथियों की ही भाँति मृगों के भी विभिन्न रूपों और मुद्राओं के अंकन मिलते हैं । प्रायः मृग–समूहों को चैत्यों के निकट बैठे या खड़े हुए दिखाया गया है । इनमें एक दृश्य के साथ अभिलेख है 'मिग समदकं चेतय' दृश्य में पाँच मृगों को दो सिंहों के साथ एक चैत्य की विभिन्न दिशाओं में अंकित किया गया है जो, चैत्य के पुनीत अहिंसात्मक वातावरण के प्रभाव को स्पष्ट करता है । सिंह जैसा हिंस्र पशु भी चैत्य के आश्रय में बुद्व की अहिंसावृत्ति का अनुगामी प्रतीत होता है । दृश्य का आशय किसी जातक से नहीं है, यद्यपि बरूआ ने इसे 'व्यघ्घ जातक' से सम्बन्धित किया है।[145] मृगों के विश्राम का लगभग ऐसा ही किन्तु सिंह–रहित एक अन्य दृश्य भी प्राप्त हैं,[146] जिसे बरूआ ने 'तिपल्लथ्थमिग जातक' का दृश्य कहा हैं, पर यह मत स्वीकार नहीं किया गया है।[147]

इलाहाबाद के संग्रहालय में एक खंडित उष्णीष भाग हैं, जिसमें वृक्ष के नीचे दो मृगों को दिखलाया गया है । एक अन्य वृक्ष पर एक मानव आकृति है । खंडित होने के कारण दृश्य के सम्पूर्ण सूत्र अज्ञात है और इनकी पहचान सम्भव नहीं है।[148]

वानरों से सम्बन्धित अनेक रोचक दृश्य पशुओं के सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं । तीन पद्मकों पर प्राप्त कुछ ऐसे दृश्य है जिनमें सम्भवतः एक ही कथासूत्र के तीन सन्दर्भो का अंकन किया गया है । प्रथम दृश्य में वानरों द्वारा एक गज को पकड़ने का अंकन है, दूसरे दृश्य में गाते बजाते हुए वानर, हाथी को अंकुश के सहारे ले जाते दिखाये गये है, तीसरे दृश्य में एक मोढ़े पर बैठे यक्ष के दाँत से बँधे रज्जु को, हाथी खींचता हुआ दिखाया गया है । यक्ष के सम्मुख, एक आसन पर विराजित वानर, यक्ष के नख काट रहा है । वानरों के साथ यक्ष का अंकन, कुषाण कालीन एक वेदिका-स्तम्भ पर,[149] मथुरा से प्राप्त हुआ है । इसमें एक वानर एक ओर किसी उलूक (?) का चक्षु-निरीक्षण कर रहा है, दूसरा वानर एक नग्न यक्ष की ओर आकृष्ट है, यक्ष अपनी आँखों पर हाथ रखे हैं । वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे 'चिकित्सा दृश्य' माना है । ऐसे दृश्यों का कथात्मक आधार उपलब्ध नहीं है, यद्यपि वानरों के साथ यक्षों का प्राचीन साहित्य में उल्लेख प्राप्त होता है । रामायण में[150] यक्षिणी-प्रसूत वानरों का उल्लेख है जिन्होंने राम की सहायता के लिए जन्म लिया था । गन्धमादन नामक वानर का उल्लेख महाभारत में मिलता है जो कि कुबेर का पुत्र था । मथुरा के निकट उरूमुण्ड पर्वत पर वानरों के निवास-स्थान और इनके एक यूथपति का उल्लेख दिव्यावदान में प्राप्त है । उक्त तीन दृश्यों में वर्णित कथासूत्र को बरूआ ने 'वानर द्वारा यक्ष की दंत-चिकित्सा' का दृश्य कहा है । किन्तु इस अनुमान का आधार, विषय संबंधी किसी कथावस्तु में न मिलने के कारण, इसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता । वानरों से संबंधित एक अन्य दृश्य में वानर और नर के किसी झगड़े का अंकन किया गया है।[151] दृश्य की बायीं ओर किसी वानर पर प्रहार करता हुआ एक मनुष्य अंकित है । मध्य भाग में नर-वानर परस्पर आबद्ध (झगड़े में ?) दिखाये गये हैं (मनुष्य आकृति वानर की पीठ पर बैठी है ?)। उष्णीष का शेष भाग खंडित है, जिससे समस्त दृश्य का अभिप्राय पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता । कनिंघम ने[152] ऐसे छह दृश्यों का उल्लेख किया है जिनमें वानरों का निरूपण प्राप्त होता है । इन दृश्यों में दो से सम्बन्धित जातक कथाएं प्राप्त हैं जिनका उल्लेख पिछले पृष्ठों में जातकों के वर्णन में किया जा चुका है । वानर सम्बन्धी एक अन्य दृश्य को बरूआ ने 'सुंसुमार

जातक' का दृश्य कहा है।[153] किन्तु बाद में उन्होंने स्वयं ही अपना मत त्याग दिया और इसे केवल एक आलंकारिक दृश्य के रूप में प्रस्तुत किया है।[154]

भरहुत की कला में अश्वों का अंकन भी विभिन्न दृश्यों में प्राप्त है । मृगपक्ख जातक, विधुर पंडित जातक, वेस्संतर जातक तथा प्रसेनजित् द्वारा बुद्ध पूजा के दृश्य में अश्वों की विभिन्न छवियां प्राप्त होती हैं । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य दृश्वों में अश्वारोहियों का अंकन है।[155] वृषभ का अंकन स्वतंत्र अथवा शकट के साथ प्राप्त होता है । एक दृश्य में एक सरिता में खड़े वृषभ के वाम भाग में दो श्रृंगाल अंकित हैं । वृषभ आकृतियां कुब्जयुक्त हैं । सुजात जातक के दृश्य में अंकित वृषभ की आकृति में इनका उन्नत कुब्ज, महाकाव्य पैरों के खुर आदि स्पष्ट रूप में दिखलाये गये हैं । कनिंघम[156] ने पशुओं के इन विभिन्न अंकनों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि सामान्यतया ये अंकन सटीक और सजीव हैं । मृग तथा अश्वों के पैरों के अंकन अपनी स्थूलता के कारण सौंदर्यरहित हैं । हाथियों का अंकन बड़ी सफलता से किया गया है, विशेषकर ऑखों का अंकन बड़ा ही सजीव है । कनिंघम के अनुसार सबसे सजीव अंकन वानरों के हैं जिनकी विभिन्न मुद्राओं का निरूपण अपेक्षाकृत अधिक सफलता से किया गया है।[157]

शैली की दृष्टि से भरहुत की कला का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है । पूर्वकालीन मौर्य कला–परम्परा से इसकी निस्संगता स्पष्ट प्रतीत होती है । इसके साथ उद्भूत अंकनों की जो परम्परा आरम्भ हुई उसका रूप बोधगया, उड़ीसा के विभिन्न क्षेत्र, अमरावती और अन्य स्थानों में, जैसे, पाउनी (भंडारा जिला) अथवा पीतलखोरा आदि में भी मिलता है । इसमें विभिन्न प्रकार के निम्न अथवा उच्च उभारवाले अंकन हैं जो गोल, चौकोर अथवा आयताकार खंडों में संयोजित है । इनके अतिरिक्त यक्ष, नाग आदि विभिन्न देवताओं की भी उद्भूत आकृतियां है जिनमें कला के तीसरे आयाम का उत्कृष्ट निर्वाह हुआ है । इन आकृतियों में मुख्यतः दो भेद प्राप्त होते हैं । एक प्रकार की आकृतियां हैं, 'चन्द्रा', 'सुदर्शना' आदि की जिनमें देहयष्टि की मांसलता को

रेखा की वर्तुलाकार अवाधित निर्झरता से प्रकट किया गया है । इनके सम्पूर्ण स्वरूप में प्राण का स्पन्दन है और चपलता एवं गति का स्पष्ट सामंजस्य है । दूसरी मूर्तियां वे हैं जिनमें रेखा की ऐसी अजस्रता अपेक्षाकृत कम है । उदाहरणतः श्रावस्ती–चमत्कार, त्रायस्त्रिंश स्वर्ग में बुद्ध द्वारा धर्म के उपदेश आदि के दृश्य ऐसे ही है । इन दृश्यों में आकृतियां साथ–साथ होती हुई भी जैसे परस्पर असम्बद्ध हैं । इनमें न तो वह चापल्य है और न भावों का उद्वेलन; केवल एक रूढ़िबद्ध नियमितता का निष्प्राण सा अंकन है । सुचिलोम और विरूढ़क यक्ष, और चक्रवाक नाग की मूर्तियाँ इसी कोटि की है। सिरिमा देवता की मूर्ति इन दोनों कोटियों की बीच की संक्रमण अवस्था की ओर संकेत करती है, जिसमें शरीर के घनत्व का निरूपण तो है परन्तु रेखाओं की गति कुण्ठित एवं स्वरूप कुछ चपटा सा है । इससे ज्ञात होता है कि भरहुत में, उत्तरोत्तर, अंकन की सजीवता की ओर उन्मुख कला–धारा का विकास होता गया।[158]

भरहुत में प्राप्त उद्भूत अंकनों की शैली की कुछ अपनी विशेषताएं हैं, जैसे दृश्यों में विविध घटनाओं के काल अथवा स्थान–क्रम पर ध्यान न देकर एक ही फलक के विस्तार में उन्हें आबद्ध किया गया है । इसे निरन्तर अंकन (Continuous narration) पद्धति कहा जा सकता है । उदाहरण स्वरूप एरापत नागराज द्वारा बुद्ध की अर्चना के दृश्य[159] में सर्वप्रथम नागराज को अपनी कन्या सहित वनखंड से प्रकट होते दिखाया गया है । इनका अंकन पुनः एक बार दायीं ओर, फिर एक बार बायीं ओर मिलता है । ये घटनाएँ विभिन्न स्थानों पर समयान्तर से हुई होंगी, किन्तु दृश्य में इन्हें एक साथ ही पिरोया गया है । कथासूत्रों से सम्बन्धित लगभग सभी दृश्यों में निरन्तर–अंकन विधि का ही पालन किया गया है । दृश्य की घटनाओं के नियोजन का कोई निश्चित क्रम नहीं मिलता । 'विधुर पंडित जातक' में कथा ऊपर से आरम्भ होती है, निम्न खंड में कथा के अगले भाग का अंकन है । मध्यवर्ती खंड में ऊपर की ओर, दायें तथा बायें, बची हुई कथा का निरूपण है । प्रसेनजित् से सम्बन्धित प्रकरण में कथा का प्रारम्भ फलक के वामभाग से होता है । इस प्रकार घटनाक्रम के निश्चित क्रम का प्रायः अभाव दिखता है, किन्तु सभी अंकनों में कलाकार

ने यथासाध्य सम्पूर्ण फलक को विभिन्न आकृतियों एवं वस्तुओं की सहायता से पूरा-पूरा भर दिया है । फलस्वरूप अनावश्यक रूप से कल्पवल्ली, कल्पवृक्ष अथवा अलंकार आदि भी दृश्यों में संयोजित हो गये है । इस दृश्य-योजना से फलक भरा पूरा लगता है परन्तु कथावस्तु की दृष्टि से इसकी कोई सार्थकता नहीं है।[160]

वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के आकार, उनके कथा से सम्बन्धित महत्व के आधार पर निर्धारित किये गये हैं । दृष्टिकोण अथवा सापेक्षिक आकार को आधार न बनाकर कथावस्तु में उनकी स्थिति के आधार पर उन्हें निरूपित किया गया है । जहाँ व्यक्तियों के समूह का अंकन है, इन्हें एक समुदाय में क्रमबद्ध खड़े या बैठे दिखाया गया है । सबसे निचली पंक्ति के व्यक्तियों का सम्पूर्ण अंकन है, उनके बाद तलबद्ध रूप में उठते हुए क्रमों में अन्य व्यक्तियों की पूर्वकाय (bust) अथवा केवल शिरों का अंकन किया गया है । किसी भी दृश्य में मानवीय आकृतियों की लघुता अथवा दीर्घता वातावरण में स्थित अन्य आधारों पर आश्रित है, वे स्वयं-शासित आधार नहीं है।[161]

भरहुत की कला में तीन प्रकार की कोरी हुई मूर्तियां प्राप्त होती हैं - निम्नोद्भृत (low relief) उच्चोद्भृत (high relief) तथा मध्योद्भृत (middle relief) आकृतियों के अंकन में सामान्यतया सम्मुख अथवा पार्श्व रूप भरहुत के दृश्यों में मिलते है । किन्तु बैठे अथवा खड़े हुए व्यक्तियों के पृष्ठभाग के अंकन के भी उदाहरण प्राप्त है । अंकनों की विशेषता है कि दृश्य-विन्यास में शिलाखंड में रिक्तता नहीं वरन् पूरा भराव मिलता है । दृश्य का सम्पूर्ण पटल चित्र-विचित्र आकृतियों से परिपूर्ण मिलता है । जिन दृश्यों में आकृतियों की कमी है, उनमें दृश्यपटल को लताओं, आवर्तों (spirals), पुष्प, अलंकार, वस्त्र, वृक्ष आदि से भरकर, रिक्त स्थान की पूर्ति कर दी गयी है । दृश्यों को परस्पर भिन्न रूप में नियोजित किया गया है और इनके सीमा-संकेत के लिए वृक्षों को विभाज्य-माध्यम के रूप में अंकित किया गया है । विभिन्न स्वर्गों के देवताओं के अंकन में इसी पद्वति को अपनाया गया है । उष्णीष पर नियोजित दृश्यों को ऊपर

और नीचे के किनारों सहित दिखलाया जाता था । ऊपर के किनारों पर इन्द्रशीर्ष-पंक्ति के बीच में बनी कमल-कलिकाएं और नीचे छुद्रघंटिका-पंक्ति मिलती है । दृश्यों को स्तम्भान्तरों में अथवा लताबद्ध रूप में दिखलाया गया है।[162]

भवनों के अंकन में भी इनके लम्बे अथवा चौड़े भागों का निरूपण मिलता है । यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उन दृश्यों में है जो भवन-समूहों से सम्बन्धित हैं भवन-समूहों में मुख्य भवन के अतिरिक्त अन्य भवनों का केवल शीर्ष ही निरूपित है, जिनमें उनकी दीर्घ वलभी आदि का रूप भी दिखलाया गया है।[163]

उद्भूत अंकनों की जो परम्परा शुंग-काल में प्रारम्भ हुई उसका प्रारम्भिक कला के परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान है । मौर्यकालीन एक - शैलोत्कीर्ण (monolithic) प्रतिमाओं में प्रदर्शन की अपनी बाधाएँ थीं । इसमें एक अंकन-विशेष में उसी की विषय-वस्तु का बोध सम्भव था । उद्भूत अंकनों द्वारा कलाकार को एक ऐसे माध्यम का ज्ञान हुआ जिससे वह अपनी सीमाओं को जटिलता से मुक्त हो सका और अपने विषय को कलात्मक प्रखरता के साथ प्रदर्शित कर सका । कथा के निरूपण के साथ एक-एक दृश्य में जीवन के विभिन्न पक्षों और व्यक्तियों के विभिन्न रूपों को उसने समाहित किया । चरित-कथा, आख्यान अथवा उपाख्यान-निरूपण, लम्बे चौड़े दृश्य आदि को जो निरूपम सौन्दर्य इन उद्भूत अंकनों में हैं वह अपने गांभीर्य एवं सहजबोध के कारण प्रशंसनीय है।[164]

(ख) प्रस्तुतीकरण का द्वितीय पक्ष

दीघनिकाय के 'ब्रह्मजाल सुत्त' में बुद्ध ने अपनी भौतिक काय की पूजा का निषेध किया है। तदनन्तर इनकी 'धर्मकाय' जिसका आशय बुद्ध के उपदेशों से है, के प्रति निष्ठा की परम्परा उपलब्ध होती है। सम्भवतः इन्हीं विश्वासों के कारण भरहुत में बुद्ध की कोई भी आकृति अंकित नहीं है। केवल प्रतीकात्मक चिह्नों के माध्यम से उनकी उपस्थिति की सूचना मात्र दी गई है। इन्हीं चिह्नों की पूजा के विभिन्न दृश्य भरहुत की कला में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के जो भी विभिन्न अंकन हैं उनमें स्तूप, छत्रयुक्त अश्व, वृक्ष, पद चिन्ह, छत्र अथवा वृक्ष–समन्वित आसन आदि, बुद्ध की स्थिति की ओर संकेत करते हैं। बुद्ध ने स्वयं अपने पूर्वजन्म की विभिन्न कथाओं का वर्णन अपने विभिन्न उपदेशों में किया था जो 'जातक' कथाओं के नाम से बौद्ध साहित्य में प्राप्त होती हैं। बुद्ध के जीवन की प्रशस्त घटनाओं या उनके पूर्वजन्मों की घटनाओं से संबंधित विभिन्न जातकों का भरहुत में विशद अंकन यह सिद्ध करता है कि इन घटनाओं का कला और साहित्य में समान प्रभाव रहा होगा । स्तूप निर्माण का कार्य किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया, वरन् इसके लिए 'उत्सर्ग' कार्यो में धर्मलाभ के लिए अनेक प्राचीन और दूरस्थ नगरवासियों ने अपना सहयोग दिया। वेदिकाओं, स्तम्भों और तोरण आदि पर प्राप्त अभिलेखों में उने नगर निवासी दानकर्ताओं के नामों का उल्लेख मिलता है।[165]

बुद्ध के प्रति पूजा केवल मनुष्यों के ही लिये नहीं थी, इसका क्षेत्र बड़ा व्यापक था। भरहुत के देवताओं को भी बुद्ध की पूजा करते हुए दिखाया गया है, साथ ही साथ पशु भी चैत्यों की पूजा करते हुए दिखाए गए हैं। देवता, मनुष्य या पशु सभी बुद्ध की पूजा करके अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। यह अभिप्राय इन दृश्यों से व्यक्त होता है। 'सुधम्मा सभा' में देवताओं सहित इन्द्र द्वारा बुद्ध की चूड़ा की पूजा का उत्सव अंकित है। तुषित स्वर्ग में, बुद्ध से, अवतार लने के लिए

प्रार्थना की जाती हुई परिलक्षित होती है । विभिन्न स्वर्गों के देव-समुदाय का, बुद्ध की सम्बोधि-प्राप्ति पर, उल्लास के दृश्य का सुन्दर अंकन मिलता है । देवताओं के अतिरिक्त, मनुष्यों को पूजकों के रूप में अनेक स्थानों पर प्रदर्शित किया गया है। अजातशत्रु और प्रसेनजित् राजा, कपिलवस्तु के शाक्य, अन्य मुनि और सामान्य व्यक्ति, सभी के लिए बुद्ध के पास उपदेश थे । जीवनपर्यन्त बुद्ध पूर्वी भारत के क्षेत्रों का भ्रमण करते रहे और लोगों को धर्म की ओर अभिप्रेरित करते रहे । विभिन्न मनुष्यों से सम्बन्धित उनकी जीवन-गाथाएं भरहुत के दृश्यों में बड़े ही मार्मिक ढंग से अंकित की गयी है । पशुओं से भी बुद्ध के जीवन की अनेक घटनाएं सम्बन्धित है जैसे वानरों से उन्होंने प्राप्त किया था, नलगिरि नामक हाथी के प्रचंड क्रोध को शांत किया था । मुचिलिन्द नागराज ने उनकी वर्षा से रक्षा की थी । तिमिंगिल नामक महामत्स्य और एरापत नागराज, जो पूर्वजन्म के भिक्षु थे, अपने वर्तमान जन्म में बुद्ध की अमृतवाणी के याचक थे । इन जीवों से सम्बन्धित, बुद्ध के जीवन की घटनाएं उनके प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव और करूणा द्वारा उनके कल्याण की भावना का परिचय देती हैं । भरहुत के दृश्यों में निरीह तथा दुर्दान्त दोनों ही प्रकार के पशुओं को चैत्यों की पूजा करते दिखाया गया है।[166]

चैत्य-पूजा से सम्बन्धित, भरहुत में, अभिलेख-सहित दो दृश्य प्राप्त हैं, जिनमें एक का उल्लेख किया जा चुका है । उक्त दृश्य में चैत्य के पुनीत वातावरण में मृग और सिंह के साहचर्यपूर्ण सहअस्तित्व का अंकन है । दूसरे दृश्य में अम्बोद पर्वत पर स्थित एक अन्य चैत्य का अंकन है, जिसमें दो हाथियों को एक शिला की आराधना करते हुए दिखाया गया है । एक हाथी की सूँड़ में कमलनाल है और दूसरा पास ही की एक सरिता से पानी लेकर अपने ऊपर डाल रहा है।[167] बरूआ-सिन्हा ने इस दृश्य को मातिपोसक जातक का दृश्य घोषित किया है।[168] और हार्नले ने अभिलेख में प्राप्त 'अबोद' शब्द का उद्‌गम 'अर्बुद' (आधुनिक आबू पर्वत) से माना है । किन्तु आम्रवृक्ष की उपस्थिति इस अनुमान को अप्रामाणिक सिद्ध करती है।[169] इस प्रकार के अनुमानों का स्पष्ट आधार न होने के कारण इन्हें स्वीकार करने में बाधा उत्पन्न होती है ।

बौद्धों के मध्य चैत्य–पूजा का स्वरूप बहुत विकसित था । बौद्ध साहित्य में अनेक चैत्यों के उल्लेख प्राप्त होते हैं । वैशाली में पॉच 'चेतिय' थे जिनके नाम थे, गोतमक, सारन्दद, सत्तम्ब, चापाल, बहुपुत्र । इन नामों का उल्लेख दीघनिकाय और उदान आदि ग्रंथों में आता है । अट्ठकथाओं में इन 'चेतियों' को यक्षपूजा से सम्बन्धित किया गया है । ऐसी सम्भावना है कि ये चैत्य प्रारम्भ में यक्षों के निवास स्थान रहे हो, किन्तु कालान्तर में बुद्ध ने इनमें अपने विहार बना लिए हों । 'चैत्य' शब्द बौद्ध साहित्य में किसी भी पूज्य स्थान के लिए प्रयुक्त हुआ है । कुमारस्वामी का मत है कि अधिकांश चैत्य 'वृक्षों' के रूप में रहे होंगे।[170] बौद्धों द्वारा चैत्यों का पूजा की अधिक प्रसार बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् प्रारम्भ हुआ और इसके प्रमुख प्रचारक थे महादेव । कालान्तर में इस परम्परा की स्थापना बौद्ध धर्म की विशिष्ट शाखा के रूप में हुई । महादेव स्वमं पर्वत पर रहते थे जिस पर एक चैत्य भी था, इसलिए इनके अनुयायी "चैत्यक" कहलाए । चैत्यों के प्रमुख सिद्वान्तों में कहा गया है कि चैत्यों के निर्माण, अलंकरण और पूजा से पुण्य प्राप्त होता है । चैत्यों को फूल मालाएं और सुगन्ध अर्पित करनी चाहिए । चैत्यों की प्रदक्षिणा पुण्यदायिनी होती है, इत्यादि।[171] इस दृष्टि से भरहुत में प्राप्त चैत्यों के दृश्य विशेष महत्वपूर्ण है । कुछ चैत्यों में केवल पूजा का उल्लेख उनके अभिलेखों में प्राप्त है । अन्य दृश्य, नडोद पर्वत, जिसका उल्लेख किया जा चुका है, से सम्बन्धित हैं । भरहुत के अभिलेखों में उल्लिखित उक्त चैत्य किन विशिष्ट बोधिसत्व अथवा अन्य देवताओं को अर्पित थे, इस विषय में भरहुत की कला और अभिलेखों से कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है । प्राचीन साहित्य भी इनके विषय में मूक हैं । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य दृश्य भी है जिनसे पूर्वबुद्धों की पूजा की परम्परा के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है । बौद्ध साहित्य में विभिन्न पूर्वबुद्धों का उल्लेख प्राप्त होता है । इनके नामों अथवा कृतियों का संकलन दीघनिकाय, निदानकथा, महावस्तु, ललितविस्तर तथा दिव्यावदान आदि ग्रंथों में किया गया है । इनकी नाम तालिका में विपश्यिन्, विश्वभू, ककुत्सन्ध, कोणगमन तथा कश्यप आदि के नाम प्राप्त होते हैं । ये ऐतिहासिक बुद्ध के पूर्वज थे और इनकी संख्या सात थी । इनमें से पॉच के बोधिवृक्ष भरहुत के शिलांकनों में प्राप्त हुए है।

ऐसा अनुमान है कि सम्भवतः शिखिन् नामक मानुषी बुद्ध का भी शिलांकन रहा होगा जो अब अप्राप्य है।[172] साहित्यिक परम्परा में इन बुद्धों के विभिन्न बोधिवृक्षों में शालवृक्ष विश्वभू के लिए, शिरीष ककुत्संघ के लिए, उदुम्बर कोणागमन के लिए, न्यग्रोध कश्यप के लिए, तथा पाटलि विपश्यिन् के लिए स्वीकार किया गया है । भरहुत के शिलांकन में इन विभिन्न मानुषी बुद्धों और उनके बोधिवृक्षों की परम्परा का अनुमोदन है । इस दृष्टि से विपश्यिन् के बोधिवृक्ष के लिए पाटलिवृक्ष के बजाय भरहुत के एक दृश्य में अशोक वृक्ष का अंकन अपवाद उपस्थित करता है । विपश्यिन् के लिए एक उल्लेख में पाटलि के बजाय अशोक वृक्ष का निर्देश प्राप्त होता है और ल्यूडर्स ने विभिन्न आधारों पर यह सिद्ध किया है कि यह अपवाद भरहुत के कलाकार की भ्रांति नहीं सिद्ध करता। ऐसी परम्परा साहित्य द्वारा भी अनुमोदित है।[173] विभिन्न दृश्यों में इन मानुषी बुद्धों का अंकन लगभग समान है।[174]

भरहुत की धार्मिक परम्पराओं में वैराग्य अथवा अनिकेत अवस्था की प्रवृत्ति का बड़ा प्रचलन हुआ । संन्यास की परम्परा ब्राह्मण धर्म में काफी पहले से ही निहित थीं । उपनिषद् और सूत्रों में 'वानप्रस्थ', 'वैखानस', 'परिव्राजक' आदि ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख है जिनके पक्ष अथवा विपक्ष में इन ग्रंथों में विभिन्न मत–मतान्तरों का वर्णन प्राप्त होता है । रीज् डेविड्स[175] ने कहा है कि निरन्तर भ्रमण करने वाले परिव्राजकों के विभिन्न समुदायों का विकास इस युग के बौद्धिक आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ । वैराग्य की इस प्रवृत्ति को पुरोहित अथवा सामान्य वर्गो से संयुक्त करने का प्रयत्न किया गया है, और अनुमान किया गया है कि इस युग की श्रमणक प्रवृत्तियों से ही इस आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ । भौतिक सुख और वैभव आदि की निस्सारता से खिन्न होकर, वैराग्य अथवा भिक्षाटन का आश्रय लेने की प्रवृत्ति, इस युग में व्याप्त एक अपूर्व बौद्धिक मनस्थिति का परिचय देती है । बढ़ते हुए धार्मिक संप्रदाय, बदलती हुई राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ, साम्राज्यवादी शक्तियों का उदय आदि इस संयासोन्मुख प्रवृत्ति को तीव्र करने में सहायक हुए होंगे और तभी ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणेत्तर परिव्राजक वर्गो का विकास हुआ । जटिल, निग्रंथ, परिव्राजक, आजीविक आदि तपोन्मुख सम्प्रदायों

का भी विकास सम्भवतः इसी भाँति हुआ होगा । ब्राह्मण तपस्वियों तथा जटिलों के कुछ अंकन भरहुत में प्राप्त होते है । कलकत्ता संग्रहालय के भरहुत संग्रह में एक वेदिका का एक खंडित अंश है जिसमें जटिल तपस्वी अंकित है । साथ में एक अभिलेख है – 'जटिल सभा' । कनिंघम के अनुसार यह दृश्य उरूविल्व कश्यप तथा उसके दो भ्राताओं के धर्म–परिवर्तन के प्रसंग का है।[176] बरूआ ने इस खंडित अंश को एक अन्य प्रस्तरखंड से जोड़कर इसे 'इन्दसमानगोत्त जातक' अथवा 'मित्तामित्त जातक' से सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया है।[177] अंकन का निश्चित आशय अज्ञात है।[178] अनुमान है कि जटिल सम्प्रदाय के तपस्वी वनों में रहकर तपश्चर्या में रत रहते थे । विनयपिटक में इनके समुदाय या समुदाय–नेताओं के उल्लेख प्राप्त हैं और इनके विषय में सूचना मिलती है कि वे तप करते थे, अग्निचर्या में संलग्न रहते थे और विभिन्न प्रकार के यज्ञ किया करते थे । अग्निचर्या के कारण इन्हें 'अग्गिका जटिलका' कहा गया है । यह भी अनुमान है कि ये जटिल कर्मो में विश्वास करते थे – कम्मवादिनो इते किरियावादिनो।[179] एक विचारधारा यह भी है कि ये योगी जटा रखते थे, अतएव इन्हें 'जटिल' संज्ञा दी गयी ।

भरहुत का संसार तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों से परिपूर्ण है । बौद्ध धर्म के दार्शनिकतापूर्ण प्रभाव के होते हुए भी भौतिक जीवन के विभिन्न आयामों का सरल निरूपण इसमें मिलता है । क्षणभंगुरता और उसके कारण व्याप्त दुःख (सर्व क्षणिकम् क्षणिकम् सर्वम् दु:खम् दु:खम्) तथा तज्जन्य पीड़ा के ही विश्लेषण के बजाय बौद्ध धर्म द्वारा अभिसिंचित लोकमानस का स्वरूप प्राप्त होता है । इस समन्वित रूप के आधार पर, भरहुत की कला को बौद्ध कला नहीं अपितु लोकमानस की एक सर्जना माना जा सकता है । धार्मिक दृश्य अपेक्षाकृत कम संख्या में हैं । यद्यपि बुद्ध की पूजा को लक्ष्य बनाकर और ध्यान में रखकर इसमें मूर्तिसज्जा की सृष्टि की गयी, तथापि तत्कालीन जीवन के विविध भौतिक पक्ष अनायास ही भरहुत की कला में समाहित हो गये । इनमें जीवन के प्रति निस्संगता नहीं वरन् एक प्रगाढ़ अनुराग के दर्शन होते हैं, जो बौद्ध धर्म के परिवेश में यदाकदा स्पष्ट किया गया है । एक ओर तपस्वी और बुद्ध

पूजा में रत व्यक्तियों के अंकन हैं, तो दूसरी ओर प्रवंचक मंत्रियों अथवा द्यूतप्रेमी पुरोहितों का भी निरूपण मिलता है। बुद्ध चरित के साथ ही लोकजीवन में व्याप्त अनेक देवी देवताओं का अंकन है । सामाजिक अनुवर्गो में केवल राजा अथवा कुलीन व्यक्ति ही नहीं वरन् विभिन्न व्यवसायों के, निम्न वर्ग के, व्यक्तियों का भी, उनकी मर्यादा के अनुसार, अंकन किया गया है । बौद्ध धर्म में ब्राह्मण धर्म की जाति-व्यवस्था का अनुमोदन नहीं प्राप्त था । यद्यपि विद्वानों का मत है कि क्षत्रियों को अन्य वर्गो की तुलना में अधिक महत्व मिला हुआ था, तथापि भरहुत के जगत में ब्राह्मणों, वैश्यों (श्रेष्ठियों), अमात्यों, पुरोहितों तथा व्यवसाय में रत निम्न वर्ग के लोगों को सहज रूप में अंकित किया गया है । राजा अथवा कुलीन व्यक्ति पुण्य के पुतले नहीं है, साधारण मनुष्यों की भांति चारित्रिक दोषों से वे भी ग्रस्त है । इन सभी पक्षों से स्पष्ट होता है कि भरहुत की कलाछवि धार्मिक श्रद्वा से प्रभावित होते हुए भी उसमें ओत प्रोत नहीं है । भरहुत में संयोजित दृश्यों के अंकन के पीछे कलाकार या दानकर्ता का कोई आग्रह था, इस बात को स्वीकार किया जाय और इन दृश्यों में अंकित कथासंदर्भो की व्याख्या की जाय तो इससे तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गो की प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्राप्त होता है।[180]

भरहुत में प्राप्त कला सामग्री को साहित्यक विवरणों से संयुक्त करके विषयवस्तु का सम्पूर्ण चित्र उपलब्ध हो जाता है । अंकनों में छूटे हुए अंशों का जो विवरण साहित्यिक कथासूत्र में प्राप्त होता है, उसका समुचित समावेश करके ही समालोचक इन चित्रों के प्रति न्याय कर सकता है और इसी के आधार पर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को प्रस्तुत किया गया है । भरहुत के जन-समुदाय में राजा, मंत्री, पुरोहित, परिव्राजक, तपस्वी, श्रेष्ठी तथा विभिन्न व्यवसाय के व्यक्ति अथवा निम्न वर्गो में, परिचारकों के अंकन प्राप्त होते हैं । वैदिक धर्म की सामाजिक व्यवस्था के आधार पर इनमें मुख्यतः चतुर्वर्ण तथा चतुराश्रम की मान्यता भी स्पष्ट होती है । यद्यपि बौद्ध धर्म में वर्णाश्रम व्यवस्था को कोई स्थान नहीं है । ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना हो चुकी थी परन्तु भरहुत के विषयों का मूल परिवेश बौद्ध विचारधारा से प्रभावित है

अतः भरहुत में अंकित समाज का वर्गीकरण वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर करना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता । दृश्यों के महत्व को ध्यान में रखकर भरहुत के सामाजिक जीवन की व्याख्या निम्नलिखित वर्गीकरण के आधार पर की जा सकती है.[181]

राज–समुदाय ओर उससे संबंधित पक्ष, कुलीन व्यक्ति, निम्न वर्ग, स्त्रियाँ/ राजाओं के लिए भरहुत के अभिलेखों में 'राजा', 'रओ', 'राजन' अथवा 'अधिराज' शब्दों का प्रयोग किया गया है । राजा के पुत्र के लिए 'कुमार' और राजा की पत्नी के लिए 'देवी' का प्रयोग किया गया है । भरहुत के अभिलेख में उल्लिखित धनभूति नामक राजा के वंश–वर्णन में वंश की मातृमूलक परम्परा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[182] एक स्थान पर नागरक्षिता नाम की रानी के लिए राञो मयये (भार्या)[183] का प्रयोग है । पत्नी के लिए एक अन्य सामान्य शब्द 'वधू' भी प्राप्त है ।

इन अभिलेखों में प्राप्त सामग्री के अतिरिक्त भरहुत के शिला–उद्‌भूत अंकनों में भी विभिन्न राजाओं से सम्बन्धित दृश्य प्राप्त है । इनमें प्रसेनजित् तथा अजातशत्रु से सम्बन्धित प्रकरण निम्नलिखित रूप में प्राप्त होता है । कोसलराज प्रसेनजित् से संबंधित दृश्य में[184] द्वितल भवन का निरूपण है जिसके आन्तरिक भाग में दो व्यक्तियों द्वारा धर्मचक्र की पूजा को दिखलाया गया है । भवन के निम्न भाग में, एक ओर एक अन्य भवन के द्वार से रथ को प्रगट होते दिखाया गया है । दूसरी ओर एक चतुरश्व रथ है जिस पर अपने सारथी सहित प्रसेनजित् विराजमान है । राजत्व–चिन्ह स्वरूप उनका छत्र और साथ में दो अन्य राजसेवक दिखाये गये है । राजा के रथ के आगे दो व्यक्ति दौड़ते हुए और इनके आगे दो अश्वारोही दिखाये गये है । कलाकार का अभिप्राय प्रसेनजित् द्वारा बुद्ध की प्रदक्षिणा के अंकन का था, अतः राजा के इस यात्रा–प्रकरण की निरन्तरता का आभास दृश्य के वामभाग में, द्वितल विमान के पार्श्व में अंकित, मानव आकृतियों की सहायता से दिया गया है । ये आकृतियां दो गजारूढ़ पुरूषों की हैं।

कनिंघम ने उस दृश्य के भवन की पहचान प्रसेनजित् द्वारा निर्मित पुण्यशाला से की है।[185] बरूआ के मतानुसार[186] इस दृश्य में मज्झिमनिकाय के 'धम्मचेतिय सुत्त' का निम्पण है । ल्यूडर्स ने कनिंघम के मत को स्वीकार किया है।[187]

अजातशत्रु द्वारा बुद्धचर्या का दृश्य भी भरहुत से प्राप्त है और इसमें दीघनिकाय के 'सामञ्ञफल सुत्त' में वर्णित घटना का निरूपण है।[188] उक्त संदर्भ में जीवक द्वारा प्रेरित किये जाने पर, अजातशत्रु का, जीवक के आम्रवन में विश्राम करते हुए, बुद्ध की पूजा के लिए जाने का, प्रकरण प्राप्त है । अजातशत्रु हाथियों पर बैठकर अपनी रानियों के साथ बुद्ध से मिलने गये थे । दृश्य में इन घटनाओं का सम्पूर्ण एबं सविस्तार निरूपण होता हे । इसमें निम्न भाग में गजारूढ़ अजातशत्रु को, उनकी छत्रधारी सेविका तथा अन्य गजारूढ़ स्त्रियों को दिखाया गया है । इसके वाम भाग में जीवक का झुकता हुआ हाथी है । दृश्य की ऊपरी भूमि में छत्र–समन्वित एक आसन है, जिसके निम्न भाग में बुद्ध के पदचिन्हों से उनकी स्थिति की ओर इंगित किया गया है । इसके एक पार्श्व में श्रद्वानत अजातशत्रु हैं । राजा के पीछे जीवक तथा चार अन्य स्त्रियों को नमस्कार मुद्रा में खड़े हुए दिखाया गया है।[189]

इनके अतिरिक्त अन्य पूर्वोल्लिखित जातक दृश्यों में भी विभिन्न राजाओं से संबंधित दृश्य प्राप्त है।[190] राजाओं के वेश सामान्यतया कुलीन व्यक्तियों जैसे ही दिखलाये जाते थे । इनके साथ छत्र का भी अंकन है जो उनके राजत्व का चिन्ह था राजाओं में छत्र केवल अजातशत्रु और प्रसेनजित् के साथ ही अंकित है । इनके अतिरिक्त बुद्ध से संबंधित महाभिनिष्क्रमण दृश्य, बोधिवृक्षों तथा बुद्ध के आसनों के साथ भी छत्र का अंकन प्राप्त होता है । प्राचीन साहित्य तथा कला में गज, छत्र आदि चक्रवर्ती के लक्षणों के रूप में स्वीकार किये गये हैं और भरहुत के शिलांकनों गें छत्र का स्वरूप इसी लक्षण की ओर संकेत करता है।[191]

राजाओं के जीवन के विविध पक्षों का संकेत भरहुत के जातक दृश्यों में प्राप्त होता है । एक वेदिका–स्तम्भ पर अंडभूत जातक' का अंकन है जिसमें

द्यूतव्यसनी राजा का वर्णन प्राप्त होता है । यह राजा अपने पुरोहित से द्यूतक्रीड़ा में रत रहता है और अपने विभिन्न कौशल द्वारा कभी उससे जीत जाता है, कभी हारता भी है । 'विधुर पंडित जातक' में धनंजय कौरव्य नामक इन्द्रप्रस्थ के राजा का उल्लेख मिलता है । इस जातक के अंकन में भी द्यूतक्रीड़ा राजा के व्यसन के रूप में अंकित थी जो अब खंडित है । जातक में द्यूत–सम्बन्धी नियमों का भी उल्लेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि द्यूतक्रीड़ा के विभिन्न नाम थे – मालिका, सावत, बहुल, सेति और भद्र । ये नाम पासों के चयन के आधार पर प्रचलित थे।[192] राजाओं के मनोरंजन में द्यूतक्रीड़ा के अतिरिक्त मृगया का भी विशेष महत्व था । राजा द्वारा आखेट का एक अंकन 'रूरू जातक' के दृश्य में है, इसमें राजा को शर–संधान करते दिखलाया गया है ।

राजाओं के कर्मचारियों और सेवओं आदि के विभिन्न अंकन भी भरहुत से प्राप्त है । 'महाउम्मग जातक' में राजा के धूर्त और ईर्ष्यालु अमात्यों का उल्लेख है, जिनकी प्रवंचना का रहस्योद्घाटन अमरा ने किया और राजा के सम्मुख उनके दोष को प्रमाणित किया । राजा की 'सभा' का भी अंकन भरहुत में मिलता है । एक अंकन अमरा के प्रकरण से संबंधित है जिसमें राजा अपनी सभा में सभासदों से घिरा एक आसन पर बैठा है । 'मूगपक्ख जातक' के दृश्य में राजा को आसन[193] पर बैठा दिखलाया गया है । कुमार तेमिय उनकी गोद में है और राजा द्वारा डाकुओं को दंड देने का आभास कराया गया है । यद्यपि डाकुओं का प्रत्यक्ष अंकन नहीं है, तथापि दंड देने का पर्याप्त संकेत है । इसमें सभासदों का भी अंकन है । राजा की सभा से सम्बन्धित दृश्यों का निरूपण मुख्यतः दण्डविधान के प्रकरण में ही किया गया है । एक दृश्य में अपराधी मंत्रियों का अंकन है, दूसरे में अपराधी डाकुओं के अंकन का संकेत किया गया है।

महाजनक तथा महाबोधि जातक में राजा को उनकी पत्नी के साथ अंकित किया गया है । मूगपक्ख और मघादेव जातक के अंकन में राजा पुत्र के साथ दिखाये

गये हैं । कण्डरी जातक में राजा की एक चरित्रहीन पत्नी का विवरण प्राप्त होता है किन्तु महाजनक जातक में राजा जनक की पतिपरायणा पत्नी का वर्णन है जो बराबर उनका अनुसरण करती हुई उन्हें संन्यास लेने से विमुख करने का प्रयत्न करती है।[194]

संन्यासवृत्ति वाले राजाओं का अंकन विशेषत: मघादेव तथा महाजनक जातकों के दृश्यों में किया गया है । मघादेव अपने एक श्वेत बाल को देखते ही राजपाट छोड़ संन्यास लेने का निश्चय कर लेते है । जनक की धर्म में उत्कट आस्था उनके राज्य-त्याग और भ्रमण से स्पष्ट होती है । बौद्ध युग में वानप्रस्थी वृत्ति के विकास की जिस पराकाष्ठा का विवरण तत्कालीन वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसी वृत्ति के सर्वव्यापी प्रभाव की पुष्टि भरहुत में अंकित उक्त दृश्य से होती है । विलास के सभी उपकरणों के होते हुए भी उस युग का शासक वर्ग इस त्यागवृत्ति के प्रभाव से अछूता नहीं था । बोधिसत्व सिद्धार्थ ने राजपाट छोड़कर जैसे उनके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया था, जिसका निर्वाह करना तत्कालीन परम्परा में अनुमोदित था।[195]

राजा की वेशभूषा अन्य कुलीन व्यक्तियों जैसी ही अंकित है । विशेष दृश्यों में उसे गज अथवा अश्व पर आसीन दिखलाया गया है । सभा भवन में उसे सिंहासनासीन दिखाया गया है । वस्त्रों में, जैसा उस युग का प्रचलन था, साधारणतया तीन वस्त्रों के पहनने की प्रथा थीं; ये तीन वस्त्र थे – अन्तरवासक (धोती), उत्तरासंग (दुपट्टा) तथा उष्णीष (पगड़ी) । राजाओं को यही वस्त्र धारण किए हुए दिखाया गया है । आकर्षक वस्त्रों के साथ ही विभिन्न आभूषणों से भी शरीर को अलंकृत करने की प्रथा थी । भरहुत के दृश्यों में राजाओं के शरीर विभिन्न आभूषणों से अलंकृत दिखाये गये हैं । महाउम्मग जातक के दृश्य में राजा की आकृति तथा कंडरिकी नामक राजा की आकृतियां विशेष उल्लेखनीय है । उनकी आकृतियों में वक्र-कुंडल (घुमावदार कुंडल) हार, वलय आदि आभूषण स्पष्टत: अंकित हैं । वस्त्रों में उत्तरासंग का उपयोग अक्सर नहीं मिलता । अन्य वस्त्र अवश्य ही मिलते हैं । जनक तथा मघादेव के वेश भिन्न हैं । जनक के बाल खुले हैं तथा तापसों जैसा उत्तरीय, वाम स्कंध से दाहिने पैर के घुटने तक विस्तृत दिखलाया गया है।[196]

सामान्यतया रानियों की वेशभूषा अन्य स्त्रियों के समान ही है । इस प्रकार के अंकनों में कण्डरिकी की पत्नी और मायादेवी की आकृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । स्त्रियों के विभिन्न वस्त्रों में सट्टसाटक[197] तथा कंचुक[198] प्रमुख हैं ।[199]

स्त्रियां अपने रूप का विशेष ध्यान रखती थीं । और श्रृंगार में रंगों के मिलान का बड़ा ध्यान रखती थीं । विरूपाक्ष की पुत्री के श्रृंगार प्रकरण में उसके द्वारा नीलवस्त्र, नील विलेपन, नीलमणि आदि द्वारा शरीर का श्रृंगार उल्लिखित है । राजा के सेवकों के भी विभिन्न रूप भरहुत में प्राप्त हैं । राजा की सेवा के लिए परिचारकों की एक मंडली थी, जिसमें नापित (मघादेव जातक), रसोइया (निग्रोधमिग जातक) एवं आखेटक (छद्दन्त जातक) का अंकन स्पष्ट रूप से भरहुत के दृश्यों में मिलता है । इनके अतिरिक्त राजा की यात्रा में छत्रधारी सेवक, अश्वारोही अथवा गजारोही, पार्षद, रथ–सारथी आदि का भी अंकन प्राप्त होता है । महाबोधि जातक के दृश्य में राजा के श्वान का भी अंकन है।[200]

इस युग में धनिक तथा कुलीन व्यवितयों की वेशभूषा आदि एक ही जैसी थी । यदि किन्हीं वर्गो में सामान्य रूप से कोई अन्तर प्राप्त होता है, तो गृहस्थ और परिव्राजकों के अंकन में । ब्राह्मणों से सम्बन्धित अनेक दृश्य भरहुत के शिलांकनों में मिलते है । ब्राह्मणों के लिए राजा का संरक्षण महत्वपूर्ण माना गया है।[201] जिन जातकों में ब्राह्मणों से सम्बन्धित प्रकरण प्राप्त होते हैं, उनमें इनके चरित्र सम्बन्धी विभिन्न गुण–दोषों का उल्लेख है । छम्मसाटक जातक का ब्राह्मण अपने वेद–ज्ञान से श्रमिक था किन्तु 'विधुरपंडित जातक' का विधुरपंडित अपने ज्ञान के कारण सम्मानित था । उसके ज्ञान से नागदंपति तथा पुन्नक यक्ष का कल्याण हुआ । ज्ञान के कारण ही वह धनंजय कौरव्य के राज्य में महत्वपूर्ण पद पर आसीन था । उसे अनेक महत्वपूर्ण उपहार प्राप्त हुए थे, जैसे नागराजा द्वारा मणि ग्रैवेयक, इन्द्र द्वारा रेशमी वस्त्र, सुपर्णराज द्वारा सुवर्णमाला कौरव्यराज द्वारा गोधन[202] आदि । भिस जातक में ब्राह्मण तपस्वियों का उल्लेख है, जो धर्म में निरत थे और जीवन की सार्थकता निभा रहे थे । इस कथा का मूल रूप ऐतरेय ब्राह्मण[203] तथा महाभारत[204] में प्राप्त होता है । ब्राह्मणों के धनिक होने

होने का प्रमाण भी इस जातक में वर्णित दृष्टान्त से प्राप्त होता है । यह धनिक ब्राह्मण, अपने सम्पन्न जीवन को छोड़कर, अपने समस्त कुटुम्ब एवं दास दासियों सहित हिमवत् की ओर चले गये थे । ब्राह्मणों के साथ उनकी भगिनी भी इस कृत्य में सम्मिलित थी । इससे यह सिद्ध होता है कि इस युग में स्त्रियां तपस्वी जीवन की भागी थीं । ब्राह्मणों के वानप्रस्थ जीवन के विभिन्न रूपों का अंकन भरहुत के दृश्यों में प्राप्त है; जैसे, ये पर्णशालाओं में रहते थे[205] और अग्निचर्या से सम्बन्धित धार्मिक कृत्यों में विश्वास रखते थे।[206] भिक्षाटन इनके परिव्राजक-जीवन का एक प्रमुख अंग था।[207] क्षुधा शांत करने के लिए वन की सामग्री, जैसे कंद, मूल, फल आदि पर भी ये निर्भर थे। भिस जातक में इनके द्वारा कमलनाल के आधार पर जीवन-यापन करने का उल्लेख प्राप्त होता है ।

भरहुत में एक दृश्य के साथ अभिलेख में ब्रह्मदेव नामक एक युवा ब्राह्मण का उल्लेख प्राप्त होता है।[208] दृश्य का आशय अज्ञात है, यद्यपि बरूआ-सिन्हा ने दृश्य में बुद्ध द्वारा मार-विजय के पश्चात्, ब्रह्मकायिक देवताओं द्वारा उनकी अभ्यर्चना का आशय सिद्ध किया था।[209] किन्तु अभी तक यह दृश्य ठीक से पहचाना नहीं गया है।[210] दृश्य तीन तलों में विभाजित है; ऊपर के तल में चार आकृतियां हैं, तथा भवन से निकलता हुआ एक गजारोही दिखलाया गया है । चार आकृतियों में एक का हाथ उठा है, शेष तीन, विभिन्न उपहार लिए हैं । बीच के दृश्य में चारों आकृतियां गजारूढ़ हैं, एक आकृति के साथ अभिलेख है 'ब्रह्मदेवों मानवको' । नीचे ब्रह्मदेव को एक बोधिवृक्ष के सम्मुख नमित होते हुए दिखाया गया है । साथ में अन्य आकृतियां भी हैं। जब तक इस दृश्य की निश्चित पहचान नहीं हो जाती, इसका प्रयोजन बतलाना कठिन है, किन्तु ब्राह्मण द्वारा इसमें बोधिसत्व की पूजा का स्पष्ट संकेत है।[211]

धनिक वर्ग में श्रेष्ठियों की प्राचीन समाज में विशेष स्थिति थी । अपने धन के कारण ये प्राय: राजाओं के कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त करते थे । राजगृह के राजा बिंबिसार के विभिन्न कोषाध्यक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है । इनमें से एक (जोतिक)

की धन सम्पदा तथा अपार वैभव का वर्णन धम्मपद अट्ठकथा में मिलता है । भरहुत के एक दृश्य में अनाथपिंडिक द्वारा, जेतवन विहार को, बुद्ध को दान करने की रोचक घटना का वर्णन प्राप्त है । कथा का वर्णन चुल्लवग्ग तथा निदानकथा में मिलता है। इन ग्रन्थों में कहा गया है कि अनाथपिंडिक ने राजा जेत से इस वनखंड को प्राप्त करने के लिए, इसके समस्त भूभाग पर स्वर्ण-मुद्राएं बिछाकर, वह सम्पूर्ण राशि इसके मूल्य स्वरूप दी थी और वनखंड में बुद्ध तथा बौद्ध भिक्षुओं के लिए विहार आदि का निर्माण कराया था । निदानकथा[212] में उल्लेख है कि विहारों के निर्माण के बाद अनाथपिंडिक ने अपने कुटुम्बियों और पाँच सौ अन्य श्रेष्ठियों के साथ यहां बुद्ध का स्वागत किया और एक सुवर्ण भिंकार (भृंगार) द्वारा, जल से विधिवत्, बुद्ध को विहार दान किया। भरहुत के एक दृश्य में इन विभिन्न घटनाओं का अंकन है । इसमें नीचे की ओर अनाथ-पिंडिक खड़े हैं, और एक गाड़ी पर लदी हुई मुद्राएं हैं, जो उनके सेवक पृथ्वी पर बिछा रहे है । दृश्य के मध्य में अनाथपिंडिक को भृंगार सहित दिखलाया गया है । वे अदृश्य बुद्ध को दान देने की क्रिया में रत हैं । दृश्य के दाहिने किनारे पर, ऊपर की ओर, सम्भवतः राजा जेत तथा अन्य श्रेष्ठियों को विस्मय तथा प्रसन्नता व्यक्त करते हुए दिखलाया गया है । दृश्य में दो कुटियां भी दिखायी गयी हैं । अभिलेख में इनके नाम 'गंधकुटी' तथा 'कोसम्बकुटी' प्राप्त होते हैं । इस दृश्य में स्पष्ट रूप से श्रेष्ठियों के धन तथा बुद्ध के प्रति उनकी अपार श्रद्धा का बड़ा मार्मिक अंकन निरूपित है । श्रेष्ठी का एक अन्य अंकन सुजात जातक के दृश्य में प्राप्त होता है जिसमें बनारस के एक गृहपति की कथा का अंकन है, जिसका वर्णन किया जा चुका है । रूरू जातक के दृश्य में भी महाधनिक का अंकन है जिसे मृगराज ने डूबने से बचाया था । जातक की कथा में उल्लेख मिलता है कि यह व्यक्ति अपार धन का स्वामी था किन्तु इसने अपना सारा धन कुटेवों में गँवा दिया था।[213]

भरहुत में विभिन्न सामाजिक मर्यादाओं वाले व्यक्तियों का संयोजन प्राप्त होता है । कुछ अभिलेखों में विभिन्न व्यक्तियों के व्यवसायों का भी उल्लेख है जिनसे सिद्ध होता है कि स्तूप-निर्माण केवल धनिकों के ही सहयोग से नहीं वरन् निम्न वर्ग

के भी यथाशक्ति सहयोग से हुआ था । जिन व्यवसायों और पदों आदि का उल्लेख भरहुत के अभिलेखों में है उनमें से कुछ के उदाहरण इस प्रकार है :

'भतुदेसक' (भत्तुद्देसक –<भक्तोदेशक)[214] जो विहार में भोजन वितरण की व्यवस्था का अधिकारी होता था । 'गृहपति' का उल्लेख है[215] जो अनुमानतः 'भूमि के स्वामी' के लिए प्रयुक्त शब्द था । इनके अतिरिक्त बुद्धरक्षित नामक 'रूपकारक' (मूर्तिकार), सुलब्ध नामक असवारक (अश्वरक्षक), वेडुक नामक आरामक (वनरक्षक) के उल्लेख भी भरहुत के अभिलेखों से प्राप्त होते है।[216] एक अन्य अभिलेख में[217] एक तीर बनाने वाले का उल्लेख है जिसे 'इषुकार' कहा गया है । इसका नाम प्राप्त नहीं होता । अभिलेखों के अतिरिक्त, दृश्यों द्वारा अन्य व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों के विषय में सूचनाएं प्राप्त होती है, जैसे मघादेव जातक के दृश्य में नापित, मूगपक्ख जातक के दृश्य में राजा का सारथी, सूचि जातक के दृश्य में कर्मकार, आरामदूसक जातक के दृश्य में आरामक, छद्दन्त जातक के दृश्य में राजा का शिकारी और निग्रोधमिग जातक के दृश्य में राजा का रसोइया, अंकित किये गये है ।

इन दृश्यों में विभिन्न व्यवसाय के व्यक्तियों के उपयोग की वस्तुओं का भी अंकन है । नापित के उपकरणों में राजा के क्षौर कर्म के लिए स्वर्णछुरिका, केश–प्रक्षालन के पात्र तथा नापित का कप्पक (Brush) आदि दिखाये गये हैं। राजा के आखेटक को, 'छद्दन्त जातक' के दृश्य में, तीर कमान और आरे सहित दिखाया गया है । सोनुत्तर नामधारी इस आखेटक ने हाथी के दाँत काटने के लिए खुरम् (क्षुरम् = छुरा) अथवा ककच (ककचम् = आरा) का प्रयोग किया । आखेटक वर्ग का विशद वर्णन 'छद्दन्त जातक' में प्राप्त है।[218] निग्रोधमिग जातक के दृश्य में राजा के रसोइये का अंकन है । जातक कथा[219] में संकेत है कि राजा का रसोइया मृग का माँस तैयार करने के लिए जंगल से मृग मारकर लाता था । रसोइये की, पशु को मारने की, कुल्हाड़ी और धम्मगंडिका (स्थान–विशेष, जहाँ पशु का वध किया जाता था) का अंकन मिलता है । दृश्य में दिखलायी गयी गंडिका विशेष महत्वपूर्ण है । इसका उल्लेख

जातकों में कई स्थलों से प्राप्त होता है।[220] गंडिका को रज्जु के जाल से आबद्ध दिखलाया गया है । इसकी बनावट लकड़ी के एक कुन्दे जैसी है ।

भरहुत के महाजनक जातक के वर्णन में एक इषुकार का उल्लेख है जिसमें कहा गया है कि उक्त इषुकार सर्वप्रथम तीर के फल को दहकते अंगारों में गर्म करता था और चावल के मॉड़ में डुबोता था।[221]

भरहुत के विभिन्न शिलांकनों में स्त्रियों के अंकन प्राप्त होते हैं । दृश्य संबंधी जातक कथाओं से नारी–विषयक धारणाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है । एक ओर सती साध्वी, कुशल तथा दक्ष स्त्रियों का वर्णन है तो दूसरी ओर चरित्रहीन एवं कुटिल स्त्रियों का उल्लेख है । 'अंडभूत' तथा 'कंडरिकी' जातक एवं विद्याधर विजल्पिन् से संबंधित दृश्यों में कुटिल स्त्रियों का विवरण प्राप्त होता है । ये स्त्रियां परकीया थीं जिन्होंने अवसर पाते ही पति से छल किया । 'अंडभूत जातक' में इस कलंक को और स्पष्ट किया गया है । जातक में उल्लेख है कि प्राकृतिक नियमानुसार, जैसे सरिताएं वक्र होती हैं, वृक्ष बढ़ते हैं, वैसे ही स्त्रियॉ अवसर पाते ही छल करने से नहीं चूकतीं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियों का केवल भ्रष्ट और हीन रूप ही भरहुत के कलालोक में दिखलाया गया है । धर्मनिष्ठा राजा जनक की पत्नी, सीवली देवी, महाउम्मग जातक की अमरा देवी तथा तक्कारिय जातक की किन्नरी, जो अपने किन्नर पति के कल्याण की कामना में सदैव रत रहती थी, आदि महान् स्त्रियों के विवरण भी प्राप्त होते हैं, जो नारी–संबंधी प्रशस्त विचारधारा की ओर संकेत करते है । अमरा की सूझ बूझ से उसके पति को कलंक से मुक्ति मिलती है । भिस जातक में ब्राह्मण की तपस्विनी भगिनी का उल्लेख है, और इस जातक के दृश्य में उसका अंकन भी प्राप्त होता है, जिससे यह भी ज्ञात होता है कि उस युग में स्त्रियों द्वारा तपश्चर्या की प्रवृत्ति भी समाज में व्याप्त थी।[222]

स्त्रियों के अंकन से सम्बन्धित भरहुत का एक दृश्य है,[223] जिसमें एक स्त्री एक वृक्ष पर बैठी है । नीचे तीन श्रृंगाल और एक पुरूष आकृति है । श्रृंगालों

की दृष्टि स्त्री की ओर है । दृश्य के साथ अभिलेख है 'असडाबधू सुसाने सिगालत्रति'। कनिंघम ने दृश्य को संयुत्त निकाय में वर्णित कोलियों के उद्भव की कथा से सम्बन्धित किया है । बरूआ ने इसे असिलक्खण जातक से सम्बन्धित किया है । किन्तु ल्यूडर्स ने इन मतों को अमान्य घोषित किया है । बौद्ध साहित्य में उक्त दृश्य से सम्बन्धित कथा अभी तक प्राप्त नहीं है ।

तपस्वियों तथा ब्राह्मणों की वेशभूषा विशिष्ट प्रकार की होती थी । भरहुत के अभिलेखों, अंकनों तथा तत्सम्बन्धी कथानकों द्वारा इस विषय की जानकारी प्राप्त होती है । तापसों के एक उल्लेख में उनके वस्त्रों के लिए वृक्षों की लाल छाल एवं त्रिचीवर, अर्थात् अन्तरवासक, उत्तरासंग एवं संघाटि का उल्लेख किया गया है। साथ ही, कंधे के लिए एक काला मृग–चर्म, बैठने के लिए ऊनी (?) अच्चर (अस्तर), कंधे पर विहंगिका (बहेंगी) से बँधे भिक्षापात्र,[224] जलपात्र, कमण्डलु, पीठिका आदि का अंकन भरहुत में प्राप्त होता है । छम्मसाटक जातक में परिव्राजक के 'खारिभार' (कंधे पर स्थापित दंड पर रज्जुबद्ध पात्र) का स्पष्ट उल्लेख है और भरहुत के दृश्य में परिव्राजक का तदनुकूल अंकन है । इस जातक में चर्म के बने एक शटक (छम्मसाटक) का उल्लेख है जो ब्राह्मण परिव्राजक द्वारा उपयोग में लाया जाता था।[225] ब्राह्मण के तपस्वी वेश में दंड, अजिन, छत्र, उपानह, अंकुश, पात्र, संघाटि का उल्लेख महाबोधि जातक के उस प्रकरण में है जब राजा के व्यवहार से खिन्न होकर, ब्राह्मण ने उसके सीमांत प्रदेश में जाने का विचार किया था।[226] सम्भवतः परिव्राजक ब्राह्मणों की सम्पूर्ण ऐहिक सम्पदा इतनी ही होती थी और इसके साथ वे निरन्तर भिक्षाटन करते घूम सकते थे । सांसारिक ऐश्वर्य तपस्या के बाधक रूप में प्रमुख माना गया है । 'भिस जातक' के प्रकरण में तपस्वी जीवन की बाधक वस्तुओं का उल्लेख है । इसमें ब्राह्मण ने खिन्न होकर अपने सहधर्मियों को शपथ दिलायी थी कि यदि वह दोषी हों तो उन्हें सम्पदा प्राप्त हो (जिससे वे अपने तपस्या के आदर्शो से विमुख होकर धर्म का लाभ न कर पायें) । इस सम्पदा के उल्लेख में घोड़े, हाथी, रजत, सुवर्ण, पति–परायणा पत्नी, राजा की कृपा, पुत्र–पुत्री, उपानह, माला, धन और ख्याति का परिगणन है । इससे

यह भी सिद्ध होता है कि राजा का संरक्षण ब्राह्मणों के लिए एक ईप्सित सुख था, किन्तु तपस्या के बाधक तत्वों में यह प्रमुख था।[227] ब्राह्मणों के अथवा तपस्वियों के वेष का अंकन भरहुत के वेस्सन्तर जातक के दृश्य में स्पष्ट रूप में प्राप्त होता है। इसमें इन्हें कटि से घुटने तक की लम्बी शाटक पहने, उत्तरीय (मृगचर्म) धारण किए, श्मश्रु एवं दाढ़ी सहित, लम्बे खुले बाल अथवा पीछे कपर्द रूप में बँधे जटाभार अथवा कुटिल केश सहित तथा एक वक्र दंड एवं यज्ञोपवीत धारण किए दिखलाया गया है।[228] महाबोधि जातक के दृश्य में, ब्राह्मण परिव्राजक को छत्र, दंड, अंकुश (?), दंड से लटकता हुआ पात्र (खंडित) और एक शाटक धारण किये दिखलाया गया है । छम्मसाटक जातक के दृश्य में चर्म का शाटक स्पष्ट है ।

तपस्वियों के दो वेशों का अंतर भरहुत के दृश्यों से स्पष्ट है । एक था तपस्वी–समुदाय जो नगरों को त्याग कर वनों में तपस्या–रत रहता था । इन तपस्वियों के लिए वाशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है कि वे ग्रामान्त में स्थापित देवगृहों, शून्यागारों या वृक्षमूलों में रह सकते थे । भरहुत में इनका अंकन मिलता है।[229] तापसों के वनप्रांगण निवासी होने की पुष्टि इनकी कुटियों के साथ बने वृक्षों के अंकन के आधार पर होती है । इन तपस्वियों का वेश भी भिन्न है । इन्हें एक शाटक पहने, जटाभार सहित दिखाया गया है । शाटक तृणों का अथवा चर्म का प्रतीत होता है, कंधे का भाग अनावृत दिखलाया गया है । जटाएं पीछे लटकती हुई या धमिल्ल रूप में पीछे बँधी हुई दिखायी गयी है।[230] बाल तपस्वी की जटाएं भी इसी भाँति दिखायी गयी हैं।[231] ब्रह्मचारी वेश में बालों का अंकन प्राप्त होता है जो जटारहित एवं सामान्य है ।

तपस्वियों के उपयोग की वस्तुओं में आसन आदि का भी अंकन मिलता है । कहीं–कहीं आसन के बजाय अस्तरक (बिछाने का कम्बल) मिलते हैं । कंथा का भी उल्लेख तपस्वी के वस्त्रों के संदर्भ में मिलता है । महाभारत के शांतिपर्व में वनों के तापसों के लिए पर्णकृत कंथा निर्देशित है – 'जीर्ण पलाश संहतिकृतां कंथा वसानो वने' । 'महावस्तु' में आनन्द के वस्त्र के विषय में उल्लेख है कि वह अपने वस्त्र जीर्ण

'छिन्नक' से बनाता था जिसके जोड़ ऐसे प्रतीत होते थे जैसे मगध के जुड़े हुए कृषि–क्षेत्र।[232] भरहुत के अंकनों में कंथा का अंकन वेडुक नामक आरामक के संदर्भ में किया गया है । इसके अभिलेख से 'कंथा' का उल्लेख भी प्राप्त होता है । अभिलेख का पाठ विवादपूर्ण है । इनके अतिरिक्त उपयोगी वस्तुओं में डंडे से लटकते हुए रज्जुओं के जाल में बँधे पात्र अथवा भूमि–स्थित पात्र सेंठों अथवा डंडियों की बिनी टोकरी आदि का अंकन है । तीन दृश्यों में[233] एक विशेष वस्त्र अंकित है जिसे 'अवसक्थिका', 'संघाटिपल्लथिका' अथवा 'दुस्सपल्लथिका' कहा गया है । यह वस्त्र बैठने के बाद घुटनों और कूल्हों को सहारा देने के लिए उपयोग में लाया जाता था ।

भरहुत में तपस्वी वेश का दूसरा भेद परिव्राजकों का है । ये नगरों का भ्रमण करते थे और भिक्षाटन द्वारा जीवन यापन करते थे । ऐसे परिव्राजकों से संबंधित दृश्यों का भी अंकन मिलता है।[234] परिव्राजकों को भ्रमण की स्थिति में खड़े दिखलाया गया है, जबकि वनखंडों के तपस्वियों के साथ कुटी है और उन्हें अधिकांशतः कुटी के सामने बैठे दिखलाया गया है । तपस्वियों की इन दो भिन्न परम्पराओं का भरहुत में अंकन ध्यान देने योग्य है । इससे यह स्पष्ट होता है कि भरहुत के कलाकार ने तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों का अंकन सच्चाई से किया है । 'दूभियमक्कट जातक' के दृश्य में[235] अंकित व्यक्ति की वेशभूषा भी उल्लेखनीय है । ल्यूडर्स ने कहा है कि वस्त्रों के आधार पर इस व्यक्ति को ब्राह्मण अथवा तपस्वी मानना सही नहीं है । बरूआ द्वारा व्यक्त मत को गलत सिद्ध करते हुए ल्यूडर्स ने कहा है कि यह व्यक्ति, जैसा कि उसके साथ के अभिलेख में भी लिखा है, तपस्वी न होकर 'शैक्ष्य' अर्थात् 'प्रथमकल्पिक' है, जिसका अर्थ है "वह व्यक्ति जिसने अपना अध्ययन–कल्प प्रारंभ ही किया है" । व्यक्ति का ब्रह्मचारी वेश है । मनु के निर्देशानुसार ब्रह्मचारी केश नहीं रखता था, दक्षिण स्कंध विवस्त्र रखता था और अपने गुरू के लिए जल लाता था।[236] इस दृश्य में ऐसे ब्रह्मचारी वेश का स्पष्ट अंकन प्राप्त होता है।[237]

तपस्वियों, परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त धनिक एवं विभिन्न व्यवसायों के व्यक्तियों का भी विशद अंकन भरहुत की मूर्तिकला में प्राप्त है । धनिकों तथा राजाओं का अंकन एक जैसा ही है । सामान्यतया इन्हें आभूषण तथा तीन वस्त्र

पहने दिखलाया गया है, निम्न वर्ग के व्यक्तियों का वेश अन्य आकृतियों से भिन्न अंकित है । इनमें भी कुछ का धनिक वेश इनके ऐश्वर्य की ओर स्पष्ट संकेत करता है, जैसे 'सूचि जातक' के कर्मकार तथा कर्मकार की पुत्री गण्यमान्य व्यक्तियों जैसे वेश में दिखायी गयी हैं । अन्य व्यवसायों के व्यक्तियों के स्वरूप में कुछ भिन्नता है । सोनुत्तर को कमर से घुटने तक का काषाय वस्त्र पहने हुए दिखलाया गया है । वस्त्र सामने की ओर बंधन द्वारा पहना गया है और उसके दो छोर लटकते हुए दिखाये गये हैं । कमर पर 'सरक फूँद' द्वारा यह काषाय बँधा है । सिर पर पगड़ी भी अंकित है । अनाथपिण्डिक के सेवक भी इसी प्रकार शरीर के अधोभाग को वस्त्रान्वित किये, सिर पर पगड़ी पहने, दिखलाये गये हैं, उत्तरीय इन आकृतियों में नहीं परिलक्षित होता है । एक अन्य दृश्य में[238] किसी आखेटक को हाथ में दंड लिए, एक ओर शूकर और दूसरी ओर श्वान के साथ दिखलाया गया है, इसका भी कंधा खाली है और यह निम्न वर्ग का व्यक्ति प्रतीत होता है । 'मूगपक्ख जातक' के रथचालक का, 'निग्रोधमिग जातक' के राजा के रसोइये का तथा 'आरामदूसक जातक' के आरामक तथा वेडुक का ऐसा ही अंकन है । इससे प्रतीत होता है कि सामान्य एवं निम्न वर्ग के व्यक्ति धन की कमी अथवा अपनी निम्न सामाजिक स्थिति के कारण एक 'शाटक' ही धारण करते थे । उत्तरीय का प्रचलन इनमें नहीं था ।

वस्त्रों के अंकन में दो अर्धचित्रों में, सिले हुए कोट जैसे भी वस्त्र मिलते हैं । एक में राजा का अनुचर एक वट वृक्ष की पूजा करते हुए, कोट पहने, दिखाया गया है।[239] कोट का छोर गोलाकार है तथा गला, बाहें, मोहरियाँ एवं किनारे फीते से अलंकृत है । इसे धोती और पगड़ी पहने दिखलाया गया है । एक अन्य मूर्ति में किसी द्वारपाल का अंकन है । बरूआ ने इसकी पहचान उत्तरापथ के देवता मिहिर से की है।[240] यह बाहेंवाला कोट पहने हुए है, जो सामने दो जगहों पर पट्टियों से बँधा है । कोट का छोर घुमावदार है । ललाट पर एक अन्य पट्टिका दर्शायी गयी है । यह धोती और बूट पहने है । इसके बायें हाथ में खड्ग है और दाहिने में फूलों की एक टहनी अंकित है।[241]

अलंकारों में सिर पर मौक्तिकजाल, मस्तक पर ललाटिका, ग्रीवास्थित ग्रैवेयक, छन्नवीर, कानों में कुण्डल, बाहों पर भुजबन्ध, कलाई पर कटक, कटिप्रदेश पर अनेक लरोंवाली मेखला, छुद्रघंटिका, पैरों में पाजेब आदि, नारी वेश के संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। पुरूषों के अलंकार कम होते थे; इनमें कुण्डल, ग्रैवेयक, हार, भुजबन्ध और कटक उल्लेखनीय हैं। शरीर पर भाँति-भाँति के गुदने (tattoo marks) गुदवाने की भी प्रथा थी। अलंकारों में छुद्रघंटिका, वप्रकुण्डल, पुष्पपत्र, अंकुश, त्रिरत्न और मनके आदि की रचनाओं का प्रयोग प्राप्त होता है। नारी-मूर्तियों में विभिन्न वेणियों का, जैसे, द्विवेणी तथा चतुर्वेणी का अंकन मिलता है।[242] तपस्वियों के लिए आभूषणों का उपयोग वर्जित था और इस परम्परा का अनुमोदन भरहुत के दृश्यों में भी प्राप्त होता है।

समाज में उत्सवों का विशेष महत्व था। जैन सूत्रों में यक्ष, नाग, रूद्र, इन्द्र, स्कंद, वृक्ष, चैत्य आदि से संबंधित अनेक 'महों' के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जैसे, इन्द्रमह, रूद्रमह आदि। ऐसे उत्सवों पर विभिन्न प्रकार के कार्यकलाप पूजा के साथ जुड़े रहते थे। इन कार्यकलापों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के मनोरंजन होते थे। अन्तगडदसाओं में चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य का विशद वर्णन है, जिसमें चैत्यों से संबंधित पूजा और उत्सव का कुछ संकेत भी प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि विभिन्न प्रकार के खिलाड़ी, नट, संगीत नृत्य में पारंगत और करतब दिखलाने वाले व्यक्ति यहां आकर एकत्रित होते थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्सवों में इस प्रकार के मनोरंजनपूर्ण कोशल का विशेष महत्व था।[243]

भरहुत में इस प्रकार के दो दृश्य है। एक में दो पुष्टकाय मल्ल परस्पर मल्लयुद्ध करते दिखाये गये हैं। दूसरे में, भाँति-भाँति के वस्त्र धारण किये विभिन्न व्यक्तियों को एक पिरामिड बनाते हुए दिखलाया गया है जो किसी नटलीला से संबंधित है। उक्त दृश्य में, चार क्रमों में, व्यक्ति खड़े हुए दिखलाये गये हैं। सबसे नीचे आठ व्यक्तियों की एक पंक्ति है जिनके हाथ उठे हुए हैं और उनकी हथेलियों पर चार

व्यक्ति सधे हैं । इन चार व्यक्तियों के हाथों पर दो व्यक्ति इसी भाँति संतुलन किए खड़े हैं । और इन दोनों के हाथों पर एक व्यक्ति बड़ी सहजमुद्रा में हाथ ऊपर उठाए खड़ा हुआ दिखलाया गया है। दृश्य के साथ अभिलेख है – पुसदतए नागरिकाए भिखुनिए।[244] बरूआ का मत है कि यह दृश्य 'थूपमह' अर्थात् स्तूप के उत्सव या मेले का है।[245]

मल्लयुद्ध के दृश्य में दोनों मल्लों की आकृतियाँ बड़ी सजीव बन पड़ी हैं । इनके एक–एक पैर आपस में फँसे हैं और हाथों से दोनों एक दूसरे से आबद्ध किसी दावँ की घात में दिखलाये गये हैं। दृश्य के साथ एक अस्पष्ट, अधूरा अभिलेख है – (रा) म । बरूआ ओर सिन्हा ने इसे 'हिमनि' पढ़ा और सम्पूर्ण लेख 'हिमानि चंकमो' माना था।[246] बरूआ ने बाद में यह माना कि शीत के प्रकोप से बचने के लिए दो व्यक्ति परस्पर आलिंगनबद्ध दिखलाये गये हैं । दृश्य के साथ पुष्पों का अंकन है जिसे बरूआ ने बर्फ माना है।[247] किन्तु बरूआ द्वारा प्रस्तुत विवरण निराधार है और यह दृश्य स्पष्टतः मल्लयुद्ध का दृश्य है ।

उत्सवों में नृत्य, गायन आदि का विशेष महत्व था । जातकों में स्पष्ट उल्लेख है कि इन अवसरों पर मदिरा एवं विभिन्न भोज्य पदार्थ भी ग्रहण किये जाते थे । देवताओं की सभा के उत्सव में विभिन्न अप्सराओं का उल्लास और नृत्यमंडली की मनोहर नृत्य–मुद्राओं का अंकन है । दृश्य की आकृतियों से इनके विभिन्न वाद्यमंत्रों का भी अनुमान होता है । भरहुत के दृश्य में मुख्यतः वीणा का सप्ततंत्री रूप मिलता है। इसके अतिरिक्त ढोल, डमरू, शम्या, शंख एवं तुरही आदि भी वाद्यमंत्रों में सम्मिलित थे । नृत्य के साथ करतल ध्वनि की भी परम्परा थी जिसे 'पाणितलसद्द' कहा गया है।[248] अप्सराओं के दृश्य के साथ का अभिलेख अपने शब्दों के कारण महत्वपूर्ण है । अभिलेख है 'साडिकसम्मदम् तुरं देवानं' । तुरं (तूरं, तूर्य) का उल्लेख हेमचंद्र ने दैवी संगीत के संदर्भ में किया है । सडिकम् (सट्टक) नाटक में उपरूपक का एक भेद माना गया है और सट्टक अथवा साटक का स्त्रीलिंग शब्द 'साटिका' रहा होगा,

जिसे 'साडिकम्' के रूप में भरहुत के अभिलेख में उल्लिखित किया गया है । साहित्यदर्पण में उल्लेख है कि प्राकृत में लिखित नाटिका 'सट्टक' नाम से जानी जाती है । अन्य विभिन्न उल्लेखों में 'सट्टक' अथवा 'साटक' को अद्भुत रस से व्याप्त देशी नाट्य (अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित लोकनाट्य), अथवा स्त्रियों से संबंधित कहा गया है।[249] भरहुत का दृश्य इन तत्कालीन मान्यताओं को स्वीकार करता है । नाट्य से संबंधित इस दृश्य के अतिरिक्त दो अन्य दृश्य हैं, जिनमें नृत्य के हावभाव, संगीत एवं वाद्यमंत्रों का समावेश है । इनमें, एक में वैजयन्त प्रासाद के अंकन के साथ विभिन्न अप्सराओं की नृत्यलीला है, तथा दूसरे में हाथी और वानरों से संबंधित एक दृश्य में वाद्यमंत्रों का अंकन प्राप्त होता है । वानरों के साथ वाद्यमंत्रों का अंकन बड़ा रोचक है, किन्तु इरू दृश्य की सही पहचान न होने के कारण इसका आशय अज्ञात है।[250]

भरहुत के अंकनों में विभिन्न व्यवसायों में रत सामान्य एवं विशेष व्यक्तियों द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं का भी चित्रण मिलता है, जिससे तत्कालीन दैनिक जीवन के विभिन्न पक्षों का रूप स्पष्ट होता है । नित्यप्रति के उपयोग में आने वाले पात्रों के विविध रूप प्राप्त है, जैसे, फैली हुई तश्तरियाँ, कटोरे आदि । कुछ ऐसे पात्र है जो नीचे से गोल हैं किन्तु लम्बे और सँकरे गले वाले हैं; यह आकृति सुराही जैसी है । कमण्डलु का उपयोग धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त सामान्यतया पानी पीने के लिए भी होता था । मायादेवी के दृश्य में उने सिरहाने रखा हुआ कमण्डलु इस ओर संकेत करता है । तपस्वियों की कुटी के साथ कमण्डलु का अंकन भरहुत में प्रायः प्राप्त होता है । इनके अतिरिक्त बिनी हुई टोकरियों के भी तीन रूप भरहुत के अंकनों में मिलते हैं – (1) ऊपर से बन्द, (2) ऊपर से खुली, (3) पकड़ने के लिए ऊपर एक गोल डंडे सहित, जिससे लटकाकर पकड़ने में सुविधा हो । पात्रों में घट का भी अंकन विभिन्न दृश्यों में प्राप्त होता है । इनका स्वरूप आज भी वैसा ही है । मायादेवी के दृश्य में दीपधारक – दंड पर रखे हुए दीपक का अंकन है । घरेलू वस्तुओं में दीपधारक का भी एक महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा । इन विभिन्न पात्रों आदि के निर्माण के लिए मृत्तिका अथवा काष्ठ का उपयोग किया जाता होगा।[251]

शय्या एवं आसनों का अंकन भी भरहुत में प्राप्त होता है । मायादेवी को शय्या पर सुषुप्त दिखलाया गया है । बौद्ध भिक्षुओं के लिए विभिन्न पीठिकाओं, आसंदिकाओं और शय्याओं का उल्लेख 'चुल्लवग्ग' के छठे अध्याय में प्राप्त होता है । भरहुत में सामान्य पीठिकाओं और राजा के लिए प्रयुक्त पीठिकाओं का भेद स्पष्ट किया गया है । इनमें कुछ पीठिकाएं आधुनिक मोढ़ों की भाँति हैं । इनके अतिरिक्त पीठिकाओं के अन्य अनेक स्वरूप भी इनमें प्राप्त होते हैं।[252]

भारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए बहँगी का उपयोग होता था । अमरा ने चार दुष्ट अमात्यों को जिन टोकरियों में बन्द करके राजसभा में प्रस्तुत किया था, वे टोकरियाँ विहंगिका द्वारा ही वहन करके राजसभा में लायी गयी थीं । निरन्तर भ्रमण करने वाले परिव्राजक अपनी वस्तुओं को विहंगिका द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे । ब्रह्मचारी गुरूओं के लिए जल जाते थे, आरामक नदी से जल लाकर पौधों का सिंचन करते थे । इन सभी के संदर्भ में विहंगिका का अंकन भरहुत के दृश्यों में किया गया है । रज्जुजाल से बँधे हुए पात्रों का भी इनमें अंकन है।[253]

यातायात के साधनों में मुख्यतः बैलगाड़ियों और रथों का उपयोग होता था । इनके कुछ रूप शिलांकनों में प्राप्त हुए हैं । भरहुत में अंकित बैलगाड़ियों का स्वरूप वही है जो आजकल की बैलगाड़ियों का है । भरहुत के शिलांकनों में बैलगाड़ियों के दो रूप प्राप्त होते हैं – एक तो खुली हुई और दूसरी पार्श्व से बन्द रहती हुई। जोतने के लिए बैलों का नाथा जाता था । राजाओं की सवारी के लिए चतुरश्व रथ का अंकन प्राप्त होता है । रथों का आकार मोहक था । प्रसेनजित् से संबंधित दृश्य में रथ पर बैठे सारथी के अतिरिक्त राजा के साथ एक छत्रधारक सेवक का भी अंकन है । स्थल–मार्गो पर हाथी और घोड़े भी वाहन रूप में प्रयुक्त होते थे । अनेक दृश्यों में सैनिकों तथा राजपुरूषों को इन पशुओं पर आरूढ़ दिखलाया गया है । जलयात्रा अथवा सामुद्रिक यात्राओं के लिए नौका का उपयोग होता था । नौकाएँ काष्ठ–पट्टिकाओं को लोहे के जोड़ों से जोड़कर बनायी जाती थीं।[254]

इन विभिन्न वस्तुओं के साथ राजकीय साज सज्जा का उल्लेख भी इस संदर्भ में समीचीन है । सैनिकों को विभिन्न प्रकार के ध्वज धारण किये दिखाया गया है । इनमें सुपर्ण–ध्वजों का अंकन दो दृश्यों[255] में प्राप्य है । ध्वजों के अतिरिक्त दंड अथवा त्रिशूल एवं छत्र का भी अंकन मिलता है । अस्त्र–शस्त्रों में केवल धनुष, तीर और खड्ग ही अंकित किए गए हैं ।

भरहुत का स्तूप स्वयं ही तत्कालीन स्थापत्य का एक नमूना है । इसके अतिरिक्त इसमें उत्कीर्ण विभिन्न दृश्यों में अनेक प्रकार के भवनों के स्वरूप का ज्ञान होता है । बौद्ध साहित्य में विभिन्न स्थानों पर पर्णशालाओं, कूटागारशालाओं का उल्लेख किया गया है । भवनों के लिए भरहुत अभिलेखों में 'कोसम्बकुटी', 'गंधकुटी' और 'प्रासाद' तीन शब्द प्राप्त होते हैं और इनके विन्यास एवं स्वरूप का निरूपण भी मिलता है । इनमें 'वैजयन्त प्रासाद' एक त्रितल प्रासाद है, जिसके विभिन्न तल वेदिका सहित बने हैं और इन पर मेहराबयुक्त गवाक्ष हैं । सामान्यतया भवनों में गवाक्षों से झाँकती आकृतियाँ दिखलायी गयी हैं । 'छद्दन्त जातक' में स्पष्ट उल्लेख है कि राजा द्वारा बुलाये गये लुब्धकों (आखेटकों) को रानी ने अपने प्रासाद के ऊपरी तल से, दूर से, देखा था और सोनुत्तर को कार्य के उपयुक्त जॉचा था । गवाक्ष पथ की ओर खुलते होंगे जिससे विभिन्न दृश्यों को सुविधापूर्वक देखा जा सके । विभिन्न तलों के भवनों का उल्लेख जातकों में प्राप्त होता है।[256] भवनों में विभिन्न प्रकार के शीर्षयुक्त स्तम्भों का अंकन भी किया गया है । सुधम्मा देवसभा स्तम्भों पर आधारित तोरणयुक्त एक भवन है । इस पर एक गुम्बद है जिसके शीर्ष भाग पर एक नुकीला शिखान्त है । स्तम्भों पर आधारित, तोरणयुक्त गवाक्षवाले भवनों की कई प्रकार की छतें मिलती हैं, जैसे, तिकाने छज्जे वाले भवन जिनकी छत पर दो शिखान्त हैं और बीच में तोरण है, अथवा भित्तियों पर स्थापित एक ऊपरी गोल छतवाले भवन । इन पर भी शिखान्त मिलते हैं । कुछ भवनों में एक के बजाय अनेक शिखान्त भी अंकित किए गए हैं । उक्त दो प्रकार के गोल अथवा तिकोने छज्जे वाले शिखान्त सहित भवनों के अतिरिक्त वैसे ही, किन्तु शिखान्तहीन और सादे भवन भी भरहुत में दर्शित हैं । ये भवन तलरहित हैं, जिससे अनुमान होता है कि सम्भवतः ये बाँस और छप्पर के बने सादे निवासगृह

थे जो सामान्य व्यक्तियों के लिए ही थे । ये भवन एकाकी अथवा समूहों में दर्शाये गये हैं । समूह सम्भवत· ग्रामों की ओर संकेत करते हैं । त्रिकोणक वलभीवाले भवनों की छतों को भित्तियों पर बनाया जाता था और छत डालने के लिए बॉस अथवा काष्ठ की सम आकारवाली कड़ियों का उपयोग किया जाता था । इसी प्रकार द्वारों को भी संयोजित किया जाता था । सामान्यतया शालाएं सादी हैं, यद्यपि कुछ में गवाक्ष अथवा पक्षियों का अंकन किया गया है । अधिकतर, प्रासादों के उन्हीं भागों का अंकन है जो दृश्य में वर्णित किसी कथा–प्रकरण से सम्बन्धित हैं । एक दृश्य में भवन के मुख्य भाग से संलग्न पार्श्व भाग का भी अंकन है, जो किसी वृत्ताकार प्रासाद का द्योतक है।[257]

अभिलेखों में उल्लिखित 'गंधकुटी' और 'कोसम्बकुटी' शब्द विचारणीय हैं । बुद्ध के विहारस्थित निवास–स्थान के लिये सामान्यतया 'गंधकुटी' का उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है । जातकों में इन गंधकुटियों के सुरभित होने का भी उल्लेख है । 'कोसम्बकुटी' शब्द का आशय अज्ञात है, किन्तु कौशाम्बी नगर के नाम से इसका सम्बन्ध स्पष्टत· ध्वनित होता है । सम्भवतः यह बुद्ध से सम्बन्धित कोई विशेष भवन था, किन्तु इसका कोई उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्राप्त नहीं होता।[258]

भरहुत के एक अभिलेख में 'गुह' (गुहा, गुफा) का भी उल्लेख प्राप्त होता है । 'दीघनिकाय' के 'सक्कपन्ह सुत्तन्त' में 'इंद साल गुहा' का स्पष्ट वर्णन प्राप्त है । यह गुफा राजगृह के समीप 'वेदियक कूट' पर स्थित थी । इसके अतिरिक्त अभिलेखों में चंकम (चंक्रम) का भी उनके नाम सहित उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे 'दंड निकमो चकम', 'तिकोटिक चकमो'।[259] इनसे संबंधित दृश्यों में, प्रथम में, एक अलंकृत चंक्रम का अंकन है, जिसके सम्मुख भाग में महाकाय दानवों के शिर और एक हाथ अंकित हैं । चंक्रम के पीछे चार सिंह हैं, बायीं ओर तीन मानव आकृतियां हैं और दायीं ओर मार का अंकन है।[260] ल्यूडर्स का मत है कि यह दृश्य किसी बोधिसत्व की गम्भीर तपस्या और उनके द्वारा मार–विजय की किसी अज्ञात उपलब्धि की रचना है।[261] 'त्रिकोटिक चंक्रम' का उल्लेख नागपूजा के संदर्भ में किया जा चुका है।

'चंक्रम' वास्तु से संबंधित शब्द है । साहित्यिक परम्परा में सर्वप्रथम उसका उपयोग शिलाओं या अधिष्ठानों के लिए किया गया है । ये एक प्रकार के पथ थे जिन पर बौद्ध भिक्षु चलते चलते ध्यान कर सकें । किन्तु कालान्तर में इसका अर्थ परिवर्तित हो गया और इसे भवनों के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया । चुल्लवग्ग में चंक्रम के विवरण से यह ज्ञात होता है कि यह ईटों, शिलाओं और काष्ठ से निर्मित तथा वेदिका एवं सोपान से युक्त स्थान था । बुद्ध के लिए अथवा तपस्वियों या भिक्षुओं के लिए इनका निर्माण किये जाने की परम्परा का उल्लेख बौद्ध साहित्य से प्राप्त है चीनी यात्री हुयेनत्सांग ने रिसिपत्तम में स्थित एक ऐसे चंक्रम का उल्लेख किया है जो पचास पद लम्बा था । इस पर चार पूर्व-बुद्धों के अंकन थे और तथागत की एक स्थानक मूर्ति विद्यमान थी।[262] भरहुत के दृश्यों में एक स्थान पर[263] एक स्तम्भ युक्त मंडप में निहित चार चंक्रमों का अंकन है । मंडप पर वेदिका एवं गवाक्ष सहित दो तल हैं । शीर्षस्थल स्तम्भों पर आधारित है । इस पर अनेक शीर्षान्त दिखलाये गये हैं । चंक्रम पर पंचांगुलिक एवं पुष्प दिखलाये गये हैं । ल्यूडर्स ने इसे 'चंक्रम चेतिय' माना है।[264]

पूर्व सूरियों के तत्वेक्षु-निर्गत अनुसन्धानों, अन्वेषणों एवं अन्वीक्षणों के आधार पर विवेचित उक्त विवरणों से यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि भरहुत के स्तूप, वेदिकाओं एवं तोरणों में कला एवं जीवन के विभिन्न पक्षों की जो बॉकी-झॉकी मिलती है उसमें सामान्यतया भारतीय जीवन के शाश्वत स्वरूप एवं विशेषतया शुंगकालीन जीवन की प्रतिष्ठा है । इस कथन के औचित्य के प्रति सन्देह नहीं किया जा सकता है कि भरहुत के कला दृश्यों का केन्द्र मानव है तथा कला मानव की सहचरी के रूप में प्रतिष्ठित है जिसमें सौन्दर्य की प्रतिष्ठा विभिन्न माध्यमों द्वारा की गयी है, तथा कला-शैली के विशिष्ट परीक्षण के साथ नये आयामों की भी सर्जना हुई है ।

भरहुत के शिल्पी के भावपक्ष और कलापक्ष समान रूप से प्रबल थे । मोद, उल्लास, क्रोध अथवा मोह, तप अथवा भोग – इन सभी भावों को अत्यन्त कुशलता

पूर्वक भरहुत स्तूप के दृश्यों में दिखलाया गया है । उसका स्तूप सम्बन्धी धार्मिक दृष्टिकोध एकांगी न होकर सर्वतोमुखी है, जिसमें मानव जीवन के विविध पक्षों का सहज सौन्दर्य प्रस्तुत किया गयाहै । दृश्यों के चयन के विषय में यह टिप्पणी सुसंगत है कि इनमें दार्शनिक अथवा श्रद्वा सम्मित दृश्यों का नियोजन है तो अनेक ऐसे दृश्य भी हैं जिनमें मनोरंजन, उल्लास और जीवन के हलके फुलके किन्तु आकर्षक पक्ष का भी निरूपण है । अतएव ऐसी व्याख्या में सन्देह के लिए लवलेश अवकाश नहीं रह जाता है कि भरहुत के दृश्यांकन जीवन के विराट स्वरूप के भव्य भाव पक्ष का स्पर्श करते हुए चलते हैं ।

*****

संदर्भ–निर्देश

1 मजूमदार, ए0 गाइड टू स्कल्पचर इन दि इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, पार्ट – 1, पृष्ठ 29।

2 क्रेमरिश, स्टिला, इण्डियन स्कल्पचर 1933, कलकत्ता, पृष्ठ 26

3 गांगुली, ओरिजिन ऑव बुद्ध इमेज, पृष्ठ 44

4 मिश्र, आर एन. भरहुत, भोपाल, 1971, पृष्ठ 7

5. तत्रैव, पृष्ठ 8

6 तत्रैव, पृष्ठ 8/1

कनिंघम ए0, दि स्तूप ऑव भरहुत, फलक 16

7. तत्रैव, पृष्ठ 8/2, कार्पस, अभिलेख सं0 बी–20

8 तत्रैव, पृष्ठ 8/3, कार्पस, पृष्ठ 86–87

9. तत्रैव, पृष्ठ 8/4, कनिंघम, दि स्तूप ऑव भरहुत, फलक 28

10. तत्रैव, पृष्ठ 9/1, महावस्तु, 2, 8–16 और आगे, 1, 2, 7–8 और आगे, 2, 11–19 और आगे । ललित विस्तर, 55, 3

11 तत्रैव, पृष्ठ 9, कार्पस, पृष्ठ 90–91

12 तत्रैव, पृष्ठ 9, ललित विस्तर (सं0) वैद्य, 15, 163

13. तत्रैव, पृष्ठ 9, मज्झिम निकाय, 1, 240

14 तत्रैव, पृष्ठ 9

15. तत्रैव, पृष्ठ 9/5,महानिद्देस पृष्ठ 476

16 तत्रैव, पृष्ठ 10/1, महावग्ग, 1–1–7

17. तत्रैव, पृष्ठ 10/2, कनिंघम ए0, द स्तूप ऑव भरहुत, फलक 13, 30–3, कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 95

18. तत्रैव, पृष्ठ 10/3, कनिंघम ए0, तत्रैव, फलक 31–3

19 तत्रैव, पृष्ठ 10/4, कनिंघम ए0, तत्रैव फलक, 14 बायी ओर (प्रथम दृश्य) तथा फलक 47–7

20. तत्रैव, पृष्ठ 10/5, संयुत्त निकाय 5–420

21 तत्रैव, पृष्ठ 10, कार्पस इंसक्रिप्शनम् इण्डिकारम जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 114-116, कार्पस इंसक्रिप्शनम् इंडिकारम पृष्ठ 90, 119 एवं बील जिल्द 2, पृष्ठ 2

22. तत्रैव, पृष्ठ 11, हिन्दू सभ्यता, अनु0 वासुदेव शरण अग्रवाल (बम्बई, 1955) पृष्ठ 251

23. तत्रैव, पृष्ठ 11, हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ 253-54

24. तत्रैव, पृष्ठ 11/3, कनिंघम ए0, तत्रैव, फलक 13, मध्यवर्ती दृश्य

25. मिश्र, आर0एन0 तत्रैव, पृष्ठ 11

26. तत्रैव, पृष्ठ 11/4, कार्पस, पृष्ठ 102

27. तत्रैव, पृष्ठ 11/5, कार्पस, पृष्ठ 105-6

28. तत्रैव, पृष्ठ 12/1, कार्पस पृष्ठ 106

29 तत्रैव, पृष्ठ 12

30 तत्रैव, पृष्ठ 12

31 तत्रैव, पृष्ठ 12/2, सर भमिग जातक, संख्या 483

32. तत्रैव, पृष्ठ 12

33. तत्रैव, पृष्ठ 12

34. तत्रैव, पृष्ठ 12-13

35. बूॅलर, आन द ओरिजिन ऑव द इण्डियन ब्राह्म अल्फाबेट, स्ट्रासवर्ग, 1898, पृष्ठ 16 तथा अनुगामी पृष्ठ

36. जर्नल ऑव अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी, XVIII पृष्ठ 185 तथा अनुगामी पृष्ठ

37ह Mem. Conc T' orient; भाग 3, पृष्ठ 9

38 मिश्र, आर0एन0, तत्रैव, पृष्ठ 13

39 तत्रैव, पृष्ठ 13/1, कार्पस अभिलेख सं0 ए0 56

40 तत्रैव, पृष्ठ 13/2, कार्पस अभिलेख सं0 ए0 57

41. तत्रैव, पृष्ठ 13/3, कार्पस, बी0 42

42 तत्रैव, पृष्ठ 13/4, तत्रैव पृष्ठ 66–71

43 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, पृष्ठ 144

44. फर्गूसन, हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, भाग 1, पृष्ठ 36

45 कनिंघम ए0, तत्रैव, प्लेट XXXIII

46. कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृष्ठ 13–14

47 मिश्र, आर0एन0 तत्रैव, पृष्ठ 13/5, कार्पस, पृष्ठ 120–158

48 तत्रैव, पृष्ठ 13–14

49 प्रोसिडिंग ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, 1874, पृष्ठ 111

50 तत्रैव, पृष्ठ 115

51 काला, एस0सी0, भरहुत वेदिका, पृष्ठ 32, प्लेट 7

52. एपिग्राफिआ इंडिका, XXXIII(1959–60), पृष्ठ 60, नं0 7

53. क्रेमरिश, स्टेला, द आर्ठ ऑव इण्डिया थ्रू द एजेज (1954), प्लेट 15

54. जर्नल ऑव यू0पी0 हिस्टोरिकल सोसाइटी,XIX पृष्ठ 48

55. पुरी, बी0एन0, इण्डिया इन द टाइम ऑव पतंजलि, पृष्ठ 233

56 प्रोसीडिंग ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, 1874, पृष्ठ 115

57. कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इंडिकारम्, जिल्द–2, भाग 2, पृष्ठ 123

58. प्रोसीडिंग ऑव एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, 1874, पृष्ठ 112

59. मिश्र, आर.एन., तत्रैव, पृष्ठ 22/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 27

60 तत्रैव, पृष्ठ 22/2, बरूआ, बी0एम0, भरहुत जिल्द 2, पृष्ठ 91 से आगे

61. तत्रैव, पृष्ठ 22/3, बरूआ, तत्रैव, जिल्द 3, पृष्ठ 3

62. तत्रैव, पृष्ठ 22

63. तत्रैव, पृष्ठ 21/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 45.5

64. तत्रैव, पृष्ठ 21/2, कार्पस, पृष्ठ 62

65. तत्रैव, पृष्ठ 20–21

66. तत्रैव, पृष्ठ 20

67. तत्रैव, पृष्ठ 20, कनिंघम, तत्रैव, फलक 43

68 तत्रैव, पृष्ठ 19–20

69 तत्रैव, पृष्ठ 19

70. तत्रैव, पृष्ठ 18, बरूआ, बी0एम0, तत्रैव, जिल्द 2, पृष्ठ 126

71 तत्रैव, पृष्ठ 14/1, निगिजातक (संख्या 541) में यह घटना अंशतः प्राप्त है।

72 तत्रैव, पृष्ठ 14/2, कनिंघम ए0, तत्रैव, फलक 48–2

73. तत्रैव, पृष्ठ, 16

74 तत्रैव, पृष्ठ 17/1, बरूआ, बी0एम0, तत्रैव, जिल्द – 2, पृष्ठ 114, कनिंघम, तत्रैव, फलक 27.14

75 तत्रैव, पृष्ठ 16

76. तत्रैव, पृष्ठ 16/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 46.8

77 तत्रैव, पृष्ठ 14

78. तत्रैव, पृष्ठ 16

79. तत्रैव, पृष्ठ 17/18, महावंश, 30–88 "वेस्सन्तर जातकं तु वित्थारेन अकारयि ।"

80. तत्रैव, पृष्ठ 18, काला, एस0सी0, भरहुत वेदिका, चित्र संख्या 2–6

81. तत्रैव, पृष्ठ 18

82 तत्रैव, पृष्ठ 18/4, कनिंघम, तत्रैव, फलक 43.8

83 तत्रैव, पृष्ठ 15/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक 47.3

84. तत्रैव, पृष्ठ 15/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 14, मध्य

85. तत्रैव, पृष्ठ 15

86. तत्रैव, पृष्ठ 15/2, कार्पस, पृष्ठ 148, कनिंघम तत्रैव, पृष्ठ 95, 131 भिन्न मत के लिए

87 तत्रैव, पृष्ठ 17/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 41, 1–3

88. तत्रैव, पृष्ठ 17

89 तत्रैव, पृष्ठ 22/4, जातक, कावेल, जिल्द–1, भूमिका, पृष्ठ 8

90 तत्रैव, पृष्ठ 22

91. तत्रैव, पृष्ठ 23/19, दीघनिकाय, 2, 258-4 और आगे

92 तत्रैव, पृष्ठ 23/20, कार्पस पृष्ठ 97

93. तत्रैव, पृष्ठ 24/1, कार्पस पृष्ठ 92

94 तत्रैव, पृष्ठ 24/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 14

95. तत्रैव, पृष्ठ 24/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक 15

96. तत्रैव, पृष्ठ 24/4, कार्पस, पृष्ठ 102

97. तत्रैव, पृष्ठ 24/5, दीघनिकाय, 2/207, दिव्यावदान, पृष्ठ 220

98. तत्रैव, पृष्ठ 24/6, फासबाल, 1.64

99. तत्रैव, पृष्ठ 24/7, ललित विस्तर, पृष्ठ 225, महावस्तु 2.165

100. तत्रैव, 25/1 द्रष्टव्य भिसजातक

101. तत्रैव, पृष्ठ 25

102 तत्रैव, पृष्ठ 26

103. तत्रैव, पृष्ठ 26

104. तत्रैव, पृष्ठ 26

105. तत्रैव, पृष्ठ 26

106. तत्रैव, पृष्ठ 26/1, दीघनिकाय, 3, 197 और आगे, महासमय सुत्तंत, दीघनिकाय 2.258

107. तत्रैव, पृष्ठ 27/1, बरूआ, तत्रैव, जिल्द 2, पृष्ठ 59 तथा आगे

108. तत्रैव, पृष्ठ 27/2, महाभारत, 13.2.4 से आगे

109. तत्रैव, पृष्ठ 27

110. तत्रैव, पृष्ठ 28

111 तत्रैव, पृष्ठ 28/1, कुमारस्वामी, यक्ष, जिल्द 2, पृष्ठ 13-14, 55

112. तत्रैव, पृष्ठ 28/2, काला एस0सी0, तत्रैव, फलक सं0 8, 9, 10, 11

113 तत्रैव, पृष्ठ 29/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 23

114 तत्रैव, पृष्ठ 29/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 20

115. तत्रैव, पृष्ठ 29/5, कार्पस, पृष्ठ 81, नोट 2

116 तत्रैव, पृष्ठ 29/6, कनिंघम, तत्रैव, फलक 23.1 ।

117 तत्रैव, पृष्ठ 29/7, कार्पस, पृष्ठ 78 ।

118. तत्रैव, पृष्ठ 29/8, फोगेल, इण्डियन सर्पेन्ट लोर, लाइडेन से प्रकाशित

119 तत्रैव, पृष्ठ 29/9, कनिंघम, तत्रैव, फलक 47.1 दृश्य की पहचान मणिकण्ठ जातक (संख्या 253) से की गयी है ।

120 तत्रैव, पृष्ठ 30/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 18 ।

121 तत्रैव, पृष्ठ 30/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक 14, (Inner face)

122. तत्रैव, पृष्ठ 30/4, काला एस0सी0, तत्रैव, चित्र 26 ।

123. तत्रैव, पृष्ठ 30 ।

124 तत्रैव, पृष्ठ 30/5, कनिंघम, तत्रैव, फलक 28.1 ।

125. तत्रैव, पृष्ठ 31/1, कनिंघम, तत्रैव, पृष्ठ 25–28, बरूआ – सिन्हा, भरहुत इंसक्रिप्शंस, पृष्ठ 99 ।

126. तत्रैव, पृष्ठ 31/2, कार्पस पृष्ठ 178 ।

127. तत्रैव, पृष्ठ 31/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक, 32, 6.5 ।

128. तत्रैव, पृष्ठ 31/4, कनिंघम, तत्रैव, फलक 27.12 ।

129. तत्रैव, पृष्ठ 31/5, कनिंघम, तत्रैव, फलक 15 (Side)

130. तत्रैव, पृष्ठ 31/6, भरहुत इंसक्रिप्शंस पृष्ठ 89 से आगे

131. तत्रैव, पृष्ठ 31/7, कार्पस, पृष्ठ 155 ।

132. तत्रैव, पृष्ठ 32/1, बरूआ–सिन्हा, भरहुत इंसक्रिप्शंस, पृष्ठ 89 ।

133 तत्रैव, पृष्ठ 32 ।

134. तत्रैव, पृष्ठ 32 ।

135. तत्रैव, पृष्ठ 32/2, सुन्दरकांड 9, 13, 18.8 ।

136. तत्रैव, पृष्ठ 32/3, शतपथ ब्राहमण 3.2.4.16 ।

137 तत्रैव, पृष्ठ 33/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 34.3, 36.2 ।

138. तत्रैव, पृष्ठ 33/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 36.2 ।

139. तत्रैव, पृष्ठ 33/3, भरहुत वेदिका, चित्र 28(ए) ।

140 तत्रैव, पृष्ठ 33/4, कनिंघम, तत्रैव, फलक 36, 4

141 तत्रैव, पृष्ठ 33

142 तत्रैव, पृष्ठ 33/5, कार्पस, बी0 70, 71

143 तत्रैव, पृष्ठ 33/6, कनिंघम, तत्रैव, फलक 15, 30

144. तत्रैव, पृष्ठ 33/7, कार्पस, अ0सं0 बी0 81

145. तत्रैव, पृष्ठ 33/8, कार्पस, अ0सं0 बी0 68,
बरूआ बी0एम0, तत्रैव, जिल्द 2, पृष्ठ 113 से आगे

146 तत्रैव, पृष्ठ 34/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 44.8

147 तत्रैव, पृष्ठ 34/2, कार्पस, पृष्ठ 165, नोट – 2,
बरूआ, बी0एम0, तत्रैव, जिल्द 2, पृष्ठ 113 से आगे

148 तत्रैव, पृष्ठ 34/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक 25.1, 26.7 भरहुत वेदिका चित्र 18

149. तत्रैव, पृष्ठ 34/4, संख्या जे0 1, मथुरा संग्रहालय

150. तत्रैव, पृष्ठ 34/5, रामायण 1.16.5

151. तत्रैव, पृष्ठ 34/6, कनिंघम, तत्रैव, फलक 33.5

152 तत्रैव, पृष्ठ 35/1, कनिंघम, तत्रैव, पृष्ठ 104–6

153 तत्रैव, पृष्ठ 35/2, बरूआ, ट्रैन्जैक्शन्स ऐंड प्रोसीडिंग्ज ऑव एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, नई सीरिज, जिल्द 19, पृष्ठ 348, भरहुत 2, 33

154. तत्रैव, पृष्ठ 35

155. तत्रैव, पृष्ठ 35/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 32, 6.5

156. तत्रैव 35/8, कनिंघम, तत्रैव, पृष्ठ 45

157. तत्रैव, पृष्ठ 35

158. तत्रैव, पृष्ठ 37/1, रे, निहाररंजन, मौर्य एण्ड शुंग आर्ट, पृष्ठ 62, 64

159. तत्रैव, पृष्ठ 37/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 14 (Inner face)

160. तत्रैव, पृष्ठ 37

161. तत्रैव, पृष्ठ 37

162 तत्रैव, पृष्ठ 38

163 तत्रैव, पृष्ठ 38

164 तत्रैव, पृष्ठ 38

165. तत्रैव, पृष्ठ 39

166 तत्रैव, पृष्ठ 40

167 तत्रैव, पृष्ठ 40/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 48.6 तथा कनिंघम, तत्रैव, फलक 30.2, 46 6

168 तत्रैव, पृष्ठ 40/2, बरूआ-सिन्हा, तत्रैव, पृष्ठ 90 से आगे

169. तत्रैव, पृष्ठ 40/3, कार्पस, पृष्ठ 165-66

170 तत्रैव, पृष्ठ 41/7, हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृष्ठ 47, उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, स्टडीज इन जैन आर्ट पृष्ठ 42 से आगे

171. तत्रैव, पृष्ठ 42/1, वापट, पी.बी., बौद्ध धर्म के 2, 500 वर्ष, दिल्ली, 1956, पृष्ठ 83

172. तत्रैव, पृष्ठ 42/2, कार्पस, पृष्ठ 82

173 तत्रैव, पृष्ठ 42/3, कार्पस, पृष्ठ 83

174. तत्रैव, पृष्ठ 42/4, कनिंघम, तत्रैव, फलक 29, 30

175. तत्रैव, पृष्ठ 43/7, दि बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 159

176 तत्रैव, पृष्ठ 44/1, कनिंघम, तत्रैव, पृष्ठ 93 और आगे

177. तत्रैव, पृष्ठ 44/2, बरूआ, बी.एम. तत्रैव जिल्द 2, पृष्ठ 99 और आगे जिल्द 3, फलक 75, 98, 98ए

178. तत्रैव, पृष्ठ 44/3, कार्पस, अभिलेख सं0 बी065

179. तत्रैव, पृष्ठ 44/4, विनय पिटक, पालिटेक्स्ट सोसाइटी, 1.71

180. तत्रैव, पृष्ठ 46

181. तत्रैव, पृष्ठ 46

182 तत्रैव, पृष्ठ 47/1, कार्पस, अभिलेख संख्या ए0 1

183 तत्रैव, पृष्ठ 47/2, कार्पस अभिलेख सं0 ए0 4

184 तत्रैव, पृष्ठ 47/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक 13 (Inner face)

185 तत्रैव, पृष्ठ 47/4, कनिंघम, तत्रैव, पृष्ठ 90, 119

186 तत्रैव, पृष्ठ 47/5, बरूआ, बी.एम , तत्रैव, जिल्द 2, पृष्ठ 48

187 तत्रैव, पृष्ठ 47/6, कार्पस, पृष्ठ 117-18

188 तत्रैव, पृष्ठ 47/7, कार्पस, पृष्ठ 118-119

189 तत्रैव, पृष्ठ 48

190. तत्रैव, पृष्ठ 48/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 14, 25-4, 44.5, 48.2

191 तत्रैव, पृष्ठ 48

192 तत्रैव, पृष्ठ 48/2, जातक, संख्या 454, जिल्द 6, पृष्ठ 137

193 तत्रैव, पृष्ठ 49/1

194 तत्रैव, पृष्ठ 49

195 तत्रैव, पृष्ठ 49

196. तत्रैव, पृष्ठ 50

197. तत्रैव, पृष्ठ 50/1, जातक, 431

198. तत्रैव, पृष्ठ 50/2, भिक्खुनी पाति मोक्ख, 4, 40-96

199. तत्रैव, पृष्ठ 50/3, मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 37

200 तत्रैव, पृष्ठ 50

201. तत्रैव, पृष्ठ 50/4, जातक, कावेल, जिल्द 4, पृष्ठ 195

202. तत्रैव, पृष्ठ 51/1, जातक, कावेल, जिल्द 5, पृष्ठ 130

203 तत्रैव, पृष्ठ 51/2, ऐतरेय ब्राहमण 5.30.10 तथा आगे

204 तत्रैव, पृष्ठ 51/3, महाभारत 13 9.3.1 तथा आगे, कार्पस, पृष्ठ 150

205 तत्रैव, पृष्ठ 51/4, कनिंघम, तत्रैव, फलक 42.1, 43.8, 26.7

206. तत्रैव, पृष्ठ 51/5, कनिंघम, तत्रैव, फलक 26.7

207 तत्रैव, पृष्ठ 51/6, कनिंघम, तत्रैव, फलक 41.1 3

208 तत्रैव, पृष्ठ 51/7, कार्पस, अभिलेख सं0 बी.66

209 तत्रैव, पृष्ठ 51/8, बरूआ-सिन्हा, तत्रैव, पृष्ठ 56, बरूआ, बी.एम., तत्रैव जिल्द 2, पृष्ठ 23

210 तत्रैव, पृष्ठ 51/9, कार्पस, पृष्ठ 161, भूमिका, पृष्ठ 11

211 तत्रैव, पृष्ठ 51

212 तत्रैव, पृष्ठ 52/1, जातक, फासबाल, 1, 92

213. तत्रैव, पृष्ठ 52/2, जातक, कावेल, जिल्द 4, पृष्ठ 161

214. तत्रैव, पृष्ठ 52/3, कार्पस, अभिलेख सं0 ए.17

215 तत्रैव, पृष्ठ 52/4, कार्पस, अ0सं0 ए.21

216 तत्रैव, पृष्ठ 53/1, कार्पस अ0सं0 ए.55, ए 22, बी.72–73

217. तत्रैव, पृष्ठ 53/2, कार्पस, अ0सं0 बी 56

218 तत्रैव, पृष्ठ 53/3, कनिंघम, तत्रैव, फलक 47.2

219. तत्रैव, पृष्ठ 53/6, जातक, जिल्द 1, पृष्ठ 39–41

220 तत्रैव, पृष्ठ 54/1, जातक, जिल्द 1, पृष्ठ 40, जिल्द 2, पृष्ठ 87 जिल्द 3, पृष्ठ 26

221. तत्रैव, पृष्ठ 55/1, जातक, 6, 36

222 तत्रैव, पृष्ठ 55

223. तत्रैव, पृष्ठ 55/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 47.9

224 तत्रैव, पृष्ठ 56/1, जातक, 6, 13–14

225 तत्रैव, पृष्ठ 56/2, छम्मसाटक जातक सं0 324

226 तत्रैव, पृष्ठ 56/3, जातक, 5, 13

227. तत्रैव, पृष्ठ 56/4, जातक, 4, 194.195

228. तत्रैव, पृष्ठ 56/5, काला, एस.सी., भरहुत वेदिका–फलक 5–6

229. तत्रैव, पृष्ठ 57/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 26.7, 42.1, 43.8, 46.4, 48.7

230. तत्रैव, पृष्ठ 57/2, कनिंघम, फलक 48.4

231. तत्रैव, पृष्ठ 57/3, कनिंघम, फलक 47.3

232 तत्रैव, पृष्ठ 57/4, कार्पस, पृष्ठ 169–170

233. तत्रैव, पृष्ठ 57/5, कनिंघम, तत्रैव, फलक सं0 26.7, 44.4, 46.4

234 तत्रैव, पृष्ठ 58/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक सं0 27.14, 41.1.3

235 तत्रैव, पृष्ठ 58/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 46.8

236 तत्रैव, पृष्ठ 58/3, मनु, 2.219, 193, 182

237. तत्रैव, पृष्ठ 58/4, कार्पस, पृष्ठ 124–5

238 तत्रैव, पृष्ठ 58/5, कनिंघम, तत्रैव, फलक 34.3

239 तत्रैव, पृष्ठ 59/1, बरूआ, बी एम., तत्रैव जिल्द 2, फलक 20

240. तत्रैव, पृष्ठ 59/2, बरूआ, जिल्द 2, फलक 62, 71, कनिंघम, तत्रैव, फलक 32.1

241. तत्रैव, पृष्ठ 59/3, जितेन्द्र नाथ बनर्जी, डेवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 68

242. तत्रैव, पृष्ठ 59/4, मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 52, 53

243 तत्रैव, पृष्ठ 61

244 तत्रैव, पृष्ठ 61/1, कार्पस, अभिलेख सं0 ए.44

245 तत्रैव, पृष्ठ 61/2, काला, एस.सी., भरहुत वेदिका, पृष्ठ 31

246. तत्रैव, पृष्ठ 62/1, भरहुत इंसक्रिप्शंस, पृष्ठ 99, सं0 225

247 तत्रैव, पृष्ठ 62/2, बरूआ, बी एम., तत्रैव, जिल्द 2, पृष्ठ 171

248. तत्रैव, पृष्ठ 62/3, दीघनिकाय, 2, पृष्ठ 147

249. तत्रैव, पृष्ठ 62/4, कार्पस, पृष्ठ 101

250. तत्रैव, पृष्ठ 62

251 तत्रैव, पृष्ठ 63

252. तत्रैव, पृष्ठ 63/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 44.2, 45.2, 42.9, 48.7

253. तत्रैव, पृष्ठ 63

254. तत्रैव, पृष्ठ 64

255. तत्रैव, पृष्ठ 64/1, कनिंघम, तत्रैव, फलक 32, 5, 6

256 तत्रैव, पृष्ठ 64/2, जातक, कावेल, जिल्द 1, पृष्ठ 153

257. तत्रैव, पृष्ठ 65

258 तत्रैव, पृष्ठ 65

259. तत्रैव, पृष्ठ 65/1, कार्पस, अभिलेख सं0 बी.77, 78

260. तत्रैव, पृष्ठ 65/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक, 47.7

261. तत्रैव, पृष्ठ 65/3, कार्पस, पृष्ठ 174, 177

262 तत्रैव, पृष्ठ 66/1, कार्पस, पृष्ठ 176

263. तत्रैव, पृष्ठ 66/2, कनिंघम, तत्रैव, फलक 31.4

264. तत्रैव, पृष्ठ 66/3, कार्पस, पृष्ठ 177

*****

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

परिशिष्ट

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

लूडर्स ने भरहुत के दो ऐसे अभिलेखों की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिनमें (गृहस्थ) दानकर्त्ता के व्यवसाय को सन्दर्भित किया गया है। एक में सुलध नामक व्यक्ति को "असवारिक" अर्थात् अश्वारोही कहा गया है[1]। दूसरे में बुधरखित (बुद्धरक्षित) को रूपदर्शक अर्थात् मूर्त्तिकार कहा गया है।[2] उल्लेखनीय है कि ऐसे प्रसंग प्रायः समकालीन साँची के अभिलेखों में बहुशः प्राप्त होते हैं। "सेठि" (महाजन), "वणिज" (व्यापारी), "आवेसनि" (शिल्पियों का मुखिया), "राजलिपिकर" (राजकीय लेखक), "राजुक" (उच्चस्तरीय ज़िलाधिकारी), "वढकि" (बढ़ई), "पावारिक" (चादर–विक्रयी), "सोतिक" (बुनकर), तथा "कमिक" (कार्मिक अथवा कारीगर) इसके कुछ एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

लूडर्स ने भरहुत के ऐसे अभिलेखों को भी रेखांकित किया है, जिनमें विभिन्न प्रकार की धार्मिक उपाधियों का उल्लेख हुआ है।[3] इनमें "अय" (आर्य), "भदत" (भदन्त), "भानक" (भाणक), "अय भदंत", "अय भानक", "भानक भदत", "सुतंतित " (अर्थात् सूत्रान्तो का कुशल छात्र), "सुट्ठुपदान भदत" (अर्थात् "सृष्टोपादान", अर्थात् जो आसक्ति–रहित है), 'नवकमिक" (अर्थात् "नवकार्मिक", कर्मकारों का अधीक्षक), "पंच–नेकायिक" (अर्थात् "पञ्चनैयायिक", जो पाँच निकायों का जानकार है), "भिखुनी", "भिछुनी" (अर्थात् भिक्षुणी) विशेषतया उल्लेखनीय है।

लूडर्स के इस मत से सहमत होने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है कि भरहुत के अभिलेखों में प्रयुक्त व्यक्ति वाचक नामों से व्यक्त हो जाता है कि इनकी रचना–काल में वैदिक देवताओं की उपासना प्रचलित थी, गृह्यसूत्रों के प्रावधान तिरोहित नहीं हुए थे, जिनके अनुसार लोगों के नाम नक्षत्रों के नामों के आधार पर रखे जाते थे; यक्ष, भूत, नाग आदि की उपासना प्रचलन में थी। वैष्णव

एवं शैव नामों से प्रतीत होता है कि ये धर्म प्रचलन में थे। आश्चर्य है कि इन अभिलेखों के प्रायशः बौद्ध होने के बावजूद इनमें बौद्ध धर्म के संकेतक नामों की संख्या कम है।[4]

बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पुरूष–वाचक नामों में निम्नोक्त उल्लेखनीय हैं: "थुपदास" (स्तूपदास), "धमगुत" (धर्मगुप्त), "धमरखित" (धर्मरक्षित), "बुधरखित" (बुद्धरक्षित), "बोधिगुत" (बोधिगुप्त), "सघमित" (संघमित्र), "सघरखित" (संघरक्षित), "सघिल" (संघिल)।

स्त्री–वाचक नामों में निम्नोक्त का उल्लेख किया जा सकता है: धमरखिता (धर्मरक्षिता), बुधरखिता (बुद्धरक्षिता), समना (श्रमणा)।

नक्षत्र–आधारित पुरूष–वाचक नामों में निम्नोक्त उल्लेखनीय हैं: उतरगिधिक (उत्तरगृध्यक), जेठभद्र (ज्येष्ठभद्र), पुनवसु (पुनर्वसु), पुस (पुष्य), पुसक (पुष्यक), फगुदेव (फल्गुदेव), भरनिदेव (भरणीदेव), रेवतिमित (रेवतीमित्र), सतिक (स्वातिक)।

नक्षत्र–आधारित स्त्री–वाचक निम्नोक्त नामों का उल्लेख किया जा सकता है: अनुराधा, पुसदता (पुष्यदत्ता), पुसदेवा (पुष्यदेवा), फगुदेवा (फल्गुदेवा), सकटदेवा (सकट [रोहिणी] देवा), सोना (श्रवणा), तिसा (तिष्या)।

राशि–आधारित पुरूष–वाचक निम्नोक्त नाम मिलता है: सिह (सिंह), ऐसी सम्भावना भी की जा सकती है कि यह नाम पशु–आधारित है (सिंहघोष)।

राशि–आधारित स्त्री–वाचक निम्नोक्त नाम मिलता है: चापदेवा (यहाँ चाप धनु राशि का द्योतक है)।

ग्रह–आधारित निम्नोक्त नाम मिलता है: आगरजु (अंगारद्युत : अंगार मंगलग्रह का द्योतक है)। वेद आधारित पुरूष–वाचक निम्नोक्त नाम मिलते हैं: महिदसेन (महेन्द्रसेन : महेन्द्र शब्द इन्द्र का द्योतक है); मित (मित्र), वैदिक ग्रन्थों में मित्र एवं वरूण का संयुक्त वर्णन मिलता है,[5] महर (अवेस्ता–कालीन मिहिर नामक देवता, जो वैदिक सूर्य का ही पर्यायवाची है), विसदेव (विश्वदेव)।

वेद -आधारित स्त्री–वाचक निम्नोक्त नाम मिलते हैं: अयमा (अर्यमा), इददेवा (इन्द्रदे ।।), मितदेवा (मित्रदेवा), सोमा।

पुराण–आधारित देवरखित (देवरक्षित), देवसेन जैसे नाम मिलते हैं।

भूत–प्रेत एवं पशु–देवता के द्योतक पुरूष–वाचक भुतक (भूतक), भूतारखित (भूतरक्षित), यखिल (यक्षिल), गोरखित (गोरक्षित), नागदेव जैसे नाम मिलते है।

ऋषि उपासना के संकेतक पुरूष–वाचक इसदत (ऋषिदत्त), इसिदिन (ऋषिदत्त), इसिपालित (ऋषिपालित) जैसे नाम मिलते हैं।

गौण देवताओं की उपासना को द्योतित करने वाले पुरूष–वाचक सिरिम (श्रीमत् [सिरिमस दानं]), महिल (महीपालित) जैसे नाम मिलते हैं।

शैव धर्म के प्रचलन को द्योतित करने वाले पुरूष–वाचक निम्नोक्त नाम मिलते हैं, ईशान, वाधपाल (व्याधपाल; लूडर्स की समीक्षा के अनुसार "वाध" शब्द संस्कृत शब्द "व्याध" का प्राकृत रूपान्तर माना जा सकता है, पौराणिक परम्परा में रूद्र–शिव को व्याध अर्थात् आखेटकों का रक्षक माना गया है।[6]

वैष्णव धर्म के प्रचलन को द्योतित करने वाले निम्नोक्त नाम मिलते है: कनक (कृष्णक), कन्हिल (कृष्णल), वलक (बलक), वलमित (बलमित्र)।

भूत–प्रेत एवं पशु–देवता के द्योतक स्त्री–वाचक निम्नोक्त नाम मिलते हैं: भूता (भूता), यखी (यक्षी), गोरखिता (गोरक्षिता), दिग्नागा (दिन्नागा), नागदेवा, नागरखिता (नागरक्षिता), नागसेना, नागा, नागिला, सपगुता (सर्पगुप्ता)।

ऋषि–उपासना का संकेतक इसिरखिता (ऋषिरक्षिता) नाम मिलता है।

गौण देवताओं के उपासना को द्योतित करने वाले स्त्री–वाचक निम्नोक्त नाम मिलते हैं: सिरिमा (श्रीमती), सेरि (श्री), चंदा (चन्द्रा)।

शैव धर्म के प्रचलन का संकेतक स्त्री–वाचक सामिदता (स्वामिदत्ता) नाम मिलता है ।

लौकिक नाम निम्नोक्त व्यवस्था के अनुसार मिलते हैं: रूप–रंग, वस्त्र, स्वर, शरीरांग के द्योतक नाम :

पुरूष–वाचक : सामक (श्यामक), छुल (क्षुद्र), महमुखि (महामुखिन), मुड (मुण्ड), घाटिल (घाट)

स्त्री–वाचक : सामा (श्यामा), गोला, घोसा (घोषा), कचुल (कञ्चुला)

मानसिकता एवं स्वभाव के द्योतक नाम :

पुरूष–वाचक : आनंद (आनन्द), अविसन (अविषण्ण), नंद (नन्द), नदगिरि (नन्दगिरि), धुत (धूर्त्त)

स्त्री–वाचक : उझिका (उज्झिका), नदुतरा (नन्दोत्तरा), बधिका (बद्धिका)

समृद्धि, प्रसिद्धि एवं जन्म के द्योतक नाम :

पुरूष–वाचक : धनभूति, वसुक, सेटक (श्रेष्ठक), जातमित (जातमित्र), अपिकिनक (अपगीर्णक अथवा अपकीर्णक), गोसाल (गोशाल), जात, पंथक (पन्थक), सुलध (सुलब्ध)।

स्त्री–वाचक : अवासिका (आवासिका)।

वनस्पति एवं पशु को द्योतित करने वाले नाम :

पुरूष–वाचक : अतिमुत (अतिमुक्त), सुग, सग (शुंग)।

स्त्री–वाचक : वलमिता (वेल्लिमित्रा), कुजरा (कुञ्जरा)।

स्थान–वाचक नाम एवं उनकी संरचना–विधान

कट शब्दान्त नाम: करहकट, परकट, बीबिकादिकट, बेनाकट, भोजकट। लूडर्स की व्याख्या के अनुसार कट शब्द संस्कृत शब्द कटक का प्राकृत रूपान्तर है।[7] इस सन्दर्भ में लूडर्स ने साँची के प्राकृत अभिलेखों की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिनमें कट शब्द का प्रयोग प्राय: शिविर के लिए हुआ है, जैसे भदनक़ट, मडलाच्छिकट, मोरजाभिकट, वराहकट।

गाम शब्दान्त नाम:–इसका प्रयोग केवल एक अभिलेख में हुआ है :
"कोसबेयकय भिखुनिय वेनुपगिमीयाय धमारखिता या दानं"

अर्थात् कौशाम्बी के वेणुकग्राम की रहने वाली भिक्षुणी धर्मरक्षिता का दान।

साँची के प्राकृत अभिलेखों में अपेक्षाकृत इसके अधिक उदाहरण मिलते हैं, जैसे कंदडिगाम, सामिकगाम, नवगाम।

कूट अथवा गिरि शब्दान्त नाम का प्रयोग : जैसे

थेराकूट : लूडर्स ने इसे संस्कृत स्थविरकूट का प्राकृत रूपान्तर माना है।[8]

मोरगिरि : लूडर्स ने इसे संस्कृत मयूरगिरि का प्राकृत रूपान्तर माना है।[9] उक्त विद्वान् ने समानार्थक शब्दों को साँची के अभिलेखों में भी निरूपित किया है, जैसे छुदमेरूगिरि (क्षुद्रमेरूगिरि), महामेरूगिरि, बोटश्रीपर्वत।[10]

नगर शब्दान्त नाम एक अभिलेख में प्रसंगित हुआ है: नंदिनगर (नंदिनगरिकाय इददेवाय दानं)। लूडर्स ने समस्तरीय नदिनगर और नंदिनगर जैसे नाम साँची के अभिलेखों में भी निरूपित किया है।[11]

आलोचित अभिलेखों में पद शब्दान्त नाम भी मिलते हैं। लूडर्स ने भरहुत के एक अभिलेख में सिरिसपद नाम निरूपित किया है (सिरिसपद इसिरखिताय दानं)।[12] वस्तुतः पद शब्द संस्कृत शब्द पद्र का प्राकृत रूपान्तर है। पद्र, पद्रक, पाद्रियक शब्द अन्य अभिलेखों में प्रायः मिलते हैं।[13] लूडर्स ने साँची के अभिलेखों में कुथु-पद, ताकार-पद, तिरिड-पद, फुजक-पद, रोहणि-पद जैसे नामों को निरूपित किया है।[14] पद्र और ग्राम प्रायः समानार्थक थे।

नगर का ही द्योतक पुर शब्दान्त नाम भरहुत के एक अभिलेख में मिलता है:-सेलपुर (इसे संस्कृत शैलपुर का प्राकृत रूपान्तर माना जा सकता है।[15]

भरहुत के अभिलेखों में प्रयुक्त स्थान वाचक नामों का अभिज्ञान-विषयक प्रयास किया गया है। कुछ एक की निश्चित पहचान की जा चुकी है; कुछ एक की अनुमान परक पहचान की गई है; किन्तु बहुत से नगरों एवं ग्रामों की पहचान नहीं की जा सकी है। ऐसे स्थान वाचक नाम जिनकी निश्चित पहचान की जा चुकी है, उनमें से कुछ का वर्णन निम्नवत हैं :

1. **करहकट** : सम्भवतः कर्हाड, जो सतारा ज़िले में कोल्हापुर से लगभग पैंतालिस किलोमीटर उत्तर में स्थित है। इसे कराड भी कहते थे, जो शीलहार वंश की एक शाखा की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित था।[16]

2 **कोसंबी** (संस्कृत कौशाम्बी) : इसकी पहचान आधुनिक कोसम नामक गांव से की जाती है, इलाहाबाद से दक्षिण-पश्चिम यमुना नदी के तट पर स्थित है। महापरिनिब्बानसुत्त से ज्ञात होता है कि बुद्ध के काल में यह उत्तर भारत

का एक प्रसिद्ध नगर था। यहाँ वत्स वंशीय शासकों की राजधानी प्रतिष्ठित थी।[17]

3. **नासिक** : इसकी पहचान गोदावरी के तट पर स्थित आधुनिक नासिक से की जाती है।[18] यह स्थान मुंबई से लगभग 121 किलोमीटर उत्तर–पूर्व की ओर स्थित है। इसकी प्रसिद्धि तीर्थ–स्थान के रूप में है। पुरातत्व की दृष्टि से भी इसे प्रसिद्ध माना जाता हैं। यहां अनेक अभिलेखांकित गुहा–मन्दिर हैं।

4 **पाटलिपुत्र** (संस्कृत पाटलिपुत्र) : इसकी पहचान आधुनिक पटना से की जाती है। मौर्य–साम्राज्य एवं गुप्त–साम्राज्य की राजधानी होने का भी इसे सुयोग मिला था। इसकी स्थापना मगधराज अजातशत्रु ने लगभग 483 ईसा पूर्व में किया था। इसका विशद विवरण यूनानी यात्री मेगस्थनीज़ ने दिया है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य (चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व) के शासन काल में आया था। यहाँ उत्खनन कार्य कई बार सम्पन्न हुआ है। महापरिनिब्बानसुत्त से ज्ञात होता है कि यह स्थान पहले एक गाँव (पाटलिगाम) के रूप में विद्यमान था। उक्त बौद्ध ग्रन्थ में इसे नगर का रूप देने का श्रेय मगधराज अजातशत्रु के सुनीध और वर्णकार नामक महामात्रों को दिया गया है। कहा गया है कि उक्त ग्राम का "नगरमापन" वज्जियों की आक्रामक गति–विधि को रोकने के लिए किया गया था।

5. **पुरिका** : हरिवंश (विष्णुपर्वन् XXXVIII 20–22) के अनुसार यह नगर विन्ध्य पर्वत की दो पहाड़ियों के बीच स्थित था। पुराणों के भुवनकोश खण्ड में पुरिका निवासियों को पौरिक अथवा पौलिक की संज्ञा दी गई है। इन्हें दाक्षिणात्य बताया गया है, तथा इनका प्रसंग दण्डकों के बाद तथा मौलिकों एवं अश्मकों के पहले दिया गया है।[19]

6. **भोजकटक** : इसका तादात्म्य प्रायः भोपाल में स्थित भोजपुर से किया जाता है,[20] जो भिल्सा से लगभग 8 किलोमीटर पूर्व दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित

है। कनिंघम भोजपुर के स्तूपों का ("भिल्सा–टोप्स" शीर्षक के अन्तर्गत) दिया है।यहाँ बहुत से अभिलेखांकित अस्थि–कलश प्राप्त हुए हैं।

7 **वेदिस** (संस्कृत विदिशा) : इसकी पहचान आधुनिक बेसनगर से की जाती है। यह स्थान मध्य प्रदेश के ग्वालियर ज़िले में स्थित भिल्सा से लगभग 5 किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित है। यहीं से सुप्रसिद्ध हेलियोडोरस को प्रसंगित करने वाला स्तम्भ अभिलेख मिला था। हेलियोडोरस यूनानी राजदूत था, जिसे अभिलेख में "भागवत" शब्द से विशेषित किया गया है।[21] पुराणों के भुवनकोश विवरण में विदिशा (व्यास) को परियात्र पर्वत से नदियों की तालिका में प्रसंगित किया गया है।[22]

निम्नोक्त स्थानों की पहचान अनुमान परक स्तर पर किया गया है:

1. **असितमसा** : कनिंघम के अनुसार यह स्थान मध्य प्रदेश में रीवां के समीप बहने वाली तमसा (टोंस) के तट पर स्थित प्रतीत होता है।[23]

2. **काकंदी** : इसकी निश्चित स्थिति का अभिज्ञान नहीं हो सका है, किन्तु व्याकरण परम्परा, बौद्ध और जैन स्रोतों में इसका सन्दर्भ अवश्य प्राप्त होता है। अष्टाध्यायी IV.2.123 की काशिका में काकन्दक को काकन्दी का निवासी कहा गया है। परमत्थजोतिका (पृ0 300)में सावत्थि (श्रावस्ती) को ऋषि सवत्थ (श्रावस्त) का आवास स्थान बताते हुए साथ–साथ यह भी कहा गया है कि ऐसे ही कोसंबि (कौशाम्बी) कुसुम्ब का और काकंदी काकंद का आवास स्थान या ("यथा कुसुबस्स निवासो कोसंबी काकंदस्स काकंदी")। हुल्श ने काकंदी का प्रसंग जैन साहित्य में निरूपित करने का प्रयास किया है।[24]

3. **नंदिनगर** : इसकी पहचान आधुनिक फैज़ाबाद ज़िले से लगभग 12 किलोमीटर दक्षिण की ओर स्थित नंदिग्राम (नंदगाँव) से की जाती है।[25] यहाँ उल्लेखनीय है

कि विजयनगर के राजाओं के दानपत्रों में प्रयुक्त नागरी लिपि को "नन्दिनागरी" की संज्ञा दी जाती है, तथा दक्षिण की संस्कृत पुस्तकों को लिखने में इसी का प्रयोग किया जाता है।[26]

4. **भोगवढ़न** (संस्कृत भोगवर्द्धन) : इसकी वास्तविक पहचान नहीं हो सकी है। पौराणिक साक्ष्य के आधार पर किरफेल महोदय इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसे अश्मक एवं कोंकण के मध्यवर्ती भूक्षेत्र में कहीं अवस्थित किया जा सकता है।[27] इस स्थान बोधक शब्द का प्रसंग सांची के अभिलेखों में भी आता है, जिससे सम्बन्धित अपनी टिप्पणी में एन.जी. मजुमदार ने भी किरफेल की ही भांति पौराणिक साक्ष्य की ही सहायता लिया है, किन्तु इसकी अवस्थिति अश्मक एवं मूलक के बीच अर्थात् गोदावरी की घाटी में स्वीकार किया है।[28]

5. **मोरगिरि** (संस्कृत मयूरगिरि) : लूडर्स के अनुसार इसे साँची के अभिलेखों में प्रसंगित चुडमोरगिरि तथा महामोरगिरि के सन्निकर्ष में रखा जा सकता है।[29] इस सन्दर्भ में हुल्श ने व्याख्यायित किया है कि मोरगिरि की समस्तरीयता मयूरपर्वत के साथ मानी जा सकती है, जिसका उद्धरण चरणव्यूह भाष्य में मिलता है।[30]

6. **वेनुवगाम** (संस्कृत वेणुकग्राम) : इसे धमरखिता (धर्मरक्षिता) का निवास स्थान बताया गया है, तथा कथित भिक्षुणी की देशीयता को कौशाम्बी से सम्बन्धित किया गया है। तीन पंक्तियों में अंकित यह अभिलेख अपने मूल रूप में इस प्रकार है :

1. कोसबेयेकय भिखुनिय
2. वेनुवगिमियाय धमारखिता
3. या दानं

कनिंघम ने इसकी पहचान कोसम के उत्तर पूर्व में स्थित आधुनिक वेनपुरवा नामक गांव से किया है।[31] इसके विपरीत लूडर्स ने इसे आधुनिक बेलुवगाम

से समीकृत करने का प्रयास किया है, जो वैशाली के समीप स्थित है।[32] महापरिनिब्बानसुत्त के अनुसार भगवान् बुद्ध ने अन्तिम वर्षा सत्र यहीं बिताया था।[33]

7. **सिरिसपद** : इसकी पहचान निश्चित नहीं हो सकी है। इस प्रसंग में हुल्श ने शिरीषपद्रक को सन्दर्भित किया है, जिसका उल्लेख गुर्जर राजवंश के दो अभिलेखों में मिलता है।[34]

सन्दर्भ निर्देश

1 कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम जिल्द–2, भाग–2, पृष्ठ 22
2 तत्रैव, पृष्ठ 36
3. तत्रैव, पृष्ठ 3
4 तत्रैव, पृष्ठ 4
5. मैकडानेल, वैदिक माइथालजी, पृष्ठ 29
6. कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम, जिल्द 2, भाग 2, पृष्ठ 5 टिप्पणी सं0 16
7. तत्रैव, पृष्ठ 7
8. तत्रैव, पृष्ठ 29
9. तत्रैव, पृष्ठ 23, 25
10. तत्रैव, पृष्ठ 7
11. तत्रैव, पृष्ठ 7
12. तत्रैव, पृष्ठ 34
13. एपिग्रैफिक ग्लासरी, 225–26
14. कार्पस, तत्रैव, पृष्ठ 7
15. तत्रैव, पृष्ठ 7
16. नन्दलाल डे, दि ज्योग्रैफिकल डिक्शनरी ऑव एंशेंट ऐंड मेडिवल इंडिया, पृष्ठ 92
17. मललसेकर, डिक्शनरी ऑव पालि प्रापर नेम्स भाग 1, पृष्ठ 662

18 बी सी लाहा, ज्योग्रैफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ 57, नन्दलाल डे, दि ज्योग्रैफिकल डिक्शनरी ऑव ऐशेंट ऐंड मेडिवल इंडिया, पृष्ठ 147

19 किरफेल, दास पुराण पंचलक्षण, पृष्ठ 75, बी.सी. लाहा, तत्रैव, पृष्ठ 65, नन्दलाल डे, तत्रैव, पृष्ठ 139

20 हुल्श, इंडियन ऐंटीक्वैरी, xx पृष्ठ 390

21 हेमचन्द्र राय चौधरी, अर्ली हिस्ट्री ऑव वैष्णव सेक्ट, पृष्ठ 99

22 किरफेल, तत्रैव, पृष्ठ 74

23 नन्दलाल डे, तत्रैव, पृष्ठ 202

24 इंडियन ऐंटिक्वेरी xI, पृष्ठ 247

25 नन्दलाल डे, तत्रैव, पृष्ठ 131

26. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ 68

27. कार्पस, तत्रैव, 75

28. द मानुमेण्ट्स ऑव सांची, जिल्द 1, पृष्ठ 300

29. कार्पस, तत्रैव, पृष्ठ 10

30 इंडियन ऐंटिक्वैरी XXI, 1892 पृष्ठ 234, टिप्पणी 54

31. बरूआ एण्ड सिन्हा, भरहुत इन्सक्रिप्शंस, पृष्ठ 127

32. कार्पस, तत्रैव, पृष्ठ 10

33 मलल सेकर, तत्रैव, भाग II, पृष्ठ 313

34. इंडियन ऐंटिक्वैरी, XXI (1892), पृष्ठ 237, टिप्पणी 66

*****

द्वितीय खण्ड

अध्याय - 4

भरहुत लिपि : पृष्ठभूमि एवं पुरोगामिता

जिन विद्वानों ने भरहुत अभिलेख में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि की सामान्य अथवा विशेष समीक्षा की है, उनमें कनिंघम (The Stūpa of Bharhut),आर0एल0 मित्र (Proceedings of Asiatic Society of Bengal,1880), हुल्श (Indian Antiquary, XIV, Z.D.M.G. XL, Indian Antiquary XXI),

बरूआ एवं सिन्हा (Bharhut Inscriptions),मेहन्डले (Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. II, pt.2), बूलर (Indian Palaeography), ए एच. दानी (Indian Palaeography), इत्यादि को सन्दर्भित किया जा सकता है ।

उक्त विद्वानों के निष्कर्षो में यद्यपि अनेक भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं, तथापि इनमें एक सामान्य सहमति अवश्य दिखाई देती है कि ब्राह्मी का वह प्रारूप जो मौर्यकाल में अर्थात् लगभग तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में प्रतिष्ठित हुआ था, उसमें लिपि-विषयक एकता लाने का प्रयास किया गया है । उस लिपि को सम्भवत: राजकीय लिपिकरों की कृति मानने में कोई हानि नहीं दिखाई देती है । इसके विपरीत वह लिपि जो मौर्योत्तर काल में आविर्भूत हुई थी, वह एक ओर यदि राजकीय है तो दूसरी ओर इसे लौकिक एवं व्यक्तिगत भी माना जा सकता है । इसके निदर्शन लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के मध्यवर्ती चरण से प्राप्त होने लगते हैं । इसी स्तर पर अन्य अनेक क्षेत्रों से प्राप्त अभिलेखों के साथ भरहुत के अभिलेखों को भी रखा जा सकता है ।

ध्यातव्य है कि भरहुत के अभिलेखों की लिपि में Archaism अथवा आर्षत्व अथवा पुरातनता की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है, जिसके फलस्वरूप प्रथम दृष्ट्या ये अभिलेख मौर्यकालीन प्रतीत होने लगते है तथा ऐसी स्थिति में इन्हें भ्रमवश मौर्यकाल में रखने का प्रयास भी किया गया है, किन्तु ऐसा सुझाव भरहुत स्तूप के पूर्वी तोरणद्वार पर स्थापित स्तम्भ अभिलेख में उस सुविदित वाक्यांश के विरोध में जाता है, जिसके अनुसार सम्बन्धित तोरण द्वार का निर्माण शुंगों के राज्यकाल में हुआ था (सुगनं रजे ...

कारितं तोरनां; अर्थात् शुंगानां राज्ये .. कारितं तोरणम्) । अतएव, इन अभिलेखों को द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के मध्यवर्ती चरण में रखा जाना उचित समझा गया ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि मौर्यकालीन ब्राह्मी में लिपि–विषयक एकता लाने में प्रियदर्शी को सफलता अवश्य मिली है । जैसा कि बूलर ने दर्शाया है कि अशोक के अभिलेखों की मूल प्रति पाटलिपुत्र के सचिवालय में तैयार की जाती थी, तदनन्तर उन मूल प्रतियों को आवश्यक कार्यान्वयन के लिए साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में भेज दिया जाता था । उन प्रान्तों में ये प्रतियाँ राजुक नामक अधिकारियों की देख–रेख में लिपिकारों एवं प्रास्तरिक कारीगारों द्वारा पाषाण उपकरणों पर उकेरी जाती थीं । इनसे यही आशा की जाती थी, कि वे मूल प्रतियों के अक्षर–आकारों को बिना किसी परिवर्द्धन के पाषाणांकित करें । ऐसी स्थिति में इन अभिलेखों की लिपि में क्षेत्रीय आकारों के समावेश की गुंजाइश नहीं रह जाती थी । इतनी सावधानी एवं सर्तकता के बावजूद वास्तविक स्थिति यह है कि इन अभिलेखों में क्षेत्रीय आकारों को निरूपित किया जा सकता है । बूलर ने उत्तरी एवं दक्षिणी दो प्रधान शाखाओं के अतिरिक्त कालसी – अभिलेख के आधार पर उत्तर – पश्चिमी उपशाखा की परिकल्पना किया था[3] ।

यद्यपि आपाततः बूलर के इस सुझाव को यथास्थिति का द्योतक मानने में कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है, तथापि वास्तविकता का मूल्यांकन प्रकारान्तर से भी किया जा सकता है । अनन्त सदाशिव अलटेकर ने एक दूसरे प्रकरण में ऐसी टिप्पणी किया है कि बहुधा उत्तर कालीन अभिलेखों में पुरातन आकारों के अवशेष दिखाई देते हैं, तथा सामयिक एवं समकालीन अभिलेखों में उत्तरवर्ती आकारों की पूर्व प्रतिष्ठा दिखाई देती है[4] । अतएव ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि अशोक के अभिलेखों में ऐसे आकार, जो सामयिक आकारों से भिन्न हैं, वे वस्तुतः उन आकारों के पुरोगामी हैं, जिनकी प्रतिष्ठा द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अभिलेखों

में दिखाई देती है, विशेषतया उन अभिलेखों में जो भरहुत से प्राप्त हुए हैं । विवेच्य विषय की अनुकूलता की दृष्टि से ऐसे मौर्यकालीन अपसामान्य आकारों में निम्नोक्त का उल्लेख इस दृष्टि से उचित लगता है कि इनकी प्रयोग-परम्परा के निदर्शन भरहुत के अभिलेखों में निरूपित किये जा सकते हैं । ऐसे निदर्शन निम्नोक्त हैं :-

मौर्यकालीन मानक आकार	अपसामान्य आकार
"अ"	
"आ"	
"इ"	
"उ"	
"ए"	
"क"	
"ख"	
"ग"	
"च"	
"छ"	
"ज"	
"ड"	
"त"	
"द"	
"ध"	

उक्त अपसामान्य आकारों में कुछ एक विवादास्पद भी हैं । इनमें सबसे पहले "छ" की चर्चा की जा सकती है । निदर्शित आकार कालसी के अभिलेख के "से दुकटं कछति" वाक्यांश में मिलता है, जिसका प्रयोग आदेश-पत्र 5 में किया गया है । इसका समान्तर आकार भरहुत के अभिलेखों में निरूपित किया जा सकता है । गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा[5], बूलर[6] तथा उपासक[6अ],ने इसे अपनी-अपनी युक्ति के अनुसार समीक्षित किया है । जब कि ओझा और बूलर ने अभीष्ट आकार माना है, उपासक ने इसे आलेख्य शिलास्तर में मौलिक दोष के कारण अनभिष्ट माना है। किन्तु वस्तुनिष्ठता की दृष्टि से देखा जाय तो इसे मौर्यकालीन अल्प प्रचलित आकार मानने में कोई हानि नहीं दिखाई देती है । कारण यह कि यही आकार भरहुत के अभिलेखों के अतिरिक्त उत्तरवर्ती अनेक अभिलेखों में प्राप्त होता है । अपसामान्य

आकारों में 'ध' की भी चर्चा की जा सकती है । इसमें अर्द्धवृत्त को उदग्र रेखिका के बाईं ओर संयुक्त किया गया है, जबकि आदर्श आकार में इसे उदग्र रेखिकाके दाहिनी ओर संयुक्त किया गया है । ऐसी स्थिति का क्या कारण हो सकता है ? क्या यह मान लिया जाय, जैसा कि बूलर आदि कुछ एक विद्वानों ने माना भी है, कि यह आकृति ब्राह्मी के उस स्तर को द्योतित करती है, जब कि अभी यह अपरिपक्व अवस्था में थी अथवा जब कि यह "ब्रास्ट्रोफेडन" शैली के अनुसार बाएं से दाहिने के अतिरिक्त दाहिने से बाएं भी चलती थी । किन्तु इस प्रकार की सम्भावना में कोई औचित्य नहीं दिखाई देता । वस्तुतः इसके प्रयोग की परम्परा पहले से चली आ रही थी, जिसके उदाहरण पिपरहवा[7] एवं भट्टिप्रोलु[8] के अभिलेखों में प्राप्त होती हैं । अक्षर "भ" का अप सामान्य आकार इसके आदर्श आकार से इस दृष्टि से भिन्न है कि इसमें अधोमुखी रेखिका को क्षैतिज रेखा के अन्त में लगाया गया है, जबकि आदर्श आकार में इसे क्षैतिज रेखा के अन्त में नहीं अपितु उसके अनतिदूर लगाया जाता था । इसका कारण उपासक ने मूल प्रति में इस आकार का सदोष अंकन माना है[9] किन्तु इस सुझाव से सहमत होने में कठिनाई दिखाई देती है । कारण यह है कि इसके निदर्शन अशोक के अभिलेखों में अनेकत्र प्राप्त होते हैं, यहां तक बड़ली के अभिलेख में यही आकृति प्राप्त होती है । यदि ओझा के मत को मान्यता दी जाय तो बड़ली का अभिलेख प्राड्. मौर्यकालीन है[10] । अशोक के जिन अभिलेखों में यह आकार प्रयुक्त हुआ है, वे निम्नोक्त हैं :-

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र 1-12, IV-10, VI-2, VIII-5, XII-9, XIII-7

लौरिया-नन्दन गढ़ का स्तम्भ - अभिलेख : आदेश-पत्र 1-3

रूपनाथ का लघु शिलालेख : -5

बराबर के गुहालेख : 1-2, II-2

सॉंची का लघु स्तम्भ-अभिलेख : 3

अक्षर "क" का अपसामान्य आकार आदर्श आकार से इस माने में भिन्न है, क्योंकि आदर्श आकार में इसे पूर्ण धन चिह्न के द्वारा प्रदर्शित किया जाता था । इस सन्दर्भ में तांत्रिक ग्रंथ त्रिपुरातापिनी उपनिषद का एक प्रसंगानुकूल उद्धरण दिया जा सकता है, जिसकी विशद समीक्षा शम शास्त्री ने किया है[11] । अपने मूल रूप में सम्बन्धित उद्धरण निम्नोक्त है :

"तस्मादीश्वरः कामोऽभिधीयते तत्परिभाषया कामः
ककार· व्याप्नोति काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते" ।

इस प्रकार अक्षर "क" का एकीकरण ईश्वर के किया गया है, तथा इसके निदर्शनार्थ पूर्ण धन चिह्न को प्रसंगित किया गया है ।

यह स्मरणीय है कि वैदिक ग्रन्थों में "क" को प्रजापति का द्योतक माना गया है । ऋग्वेद (x·121·1) के सुप्रसिद्ध वाक्य "कस्मै देवा हविषा विधेम" की व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राहमण (7, 4, 1, 19) में कहा गया है कि "प्रजापतिर्वा कः तस्मै हविषा विधेम" । यही व्याख्या सायण ने भी की है; "अत्र किं शब्दोऽ निर्ज्ञातस्वरूपत्वात्प्रजापतौ वर्त्तते" । इन सभी प्रसंगों के आधार पर शम शास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि "क" के लिए निर्मित पूर्ण धन का चिह्न प्रजापति का द्योतक है । अतएव यह स्पष्ट है कि "क" का वास्तविक पुरातन चिह्न भी यही है । ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि "क" का अपसामान्य आकार किस कारण प्रकाश में आया, जिसके निदर्शन भरहुत के अभिलेखों में भी प्राप्त होते है । उपासक का कथन है कि ऐसा लिपिकर की तक्षण विषयक अकुशलता के कारण हुआ है[12]।

उपासक के उच्च सुझाव को स्वीकार करने में कठिनाई दिखाई देती है । वस्तुतः मौर्यकाल का यह एक ऐसा अल्प प्रचलित आकार था, जिसे द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के ब्राह्मी अभिलेखों में, विशेषतया भरहुत के अभिलेखों में समावेशित करने का प्रयास किया गया । सम्भवतः निम्नोक्त निदर्शनों से उक्त सम्भावना की सार्थकता स्पष्ट हो जाती है :-

गिरिनार का शिलालेख : आदेश पत्र VI-6 (दापकं में)

धौली का शिलालेख : आदेश पत्र X-2 (पलकमति में)

जौगढ़ का शिलालेख · आदेश पत्र VI-5 (कमतल में)

–टोपरा का स्तम्भ अभिलेख : आदेश पत्र III-21(कालनेन में)

रम्पुरवा का स्तम्भ अभिलेख · आदेश पत्र IV-6 (कमाति में)

अक्षर "उ" का अपसामान्य आकार आदर्श आकार से इस माने में भिन्न है, क्योकि आदर्श आकार में उदग्र एवं क्षैतिज रेखाएं एक दूसरे मिलकर समकोण की आकृति बनाती हैं; क्योकि अपसामान्य आकार में क्षैतिज रेखा ऊर्ध्वगामी बन जाती है । उपासक के अनुसार अपसामान्य आकृति का कारण लिपिकर की तक्षण–विषयक असावधानी माना जा सकता है[12अ] । किन्तु ऐसे सुझाव को वस्तुस्थिति का याथातथ्य आकलन नहीं माना जा सकता है । ब्राह्मी लिपि के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से देखा जाय तो इस अपसामान्य आकार में पुरातन की प्रतिष्ठा है । इस सन्दर्भ में सोहगौरा के ताम्रपत्र अभिलेख का विशेष उल्लेख किया जा सकता है । इस अभिलेख की तिथि के विषय में मतैक्य नहीं है । बी.एम बरूआ ने इसे प्राड्.मौर्यकालीन माना है[12ब] यही मत राजबली पाण्डेय का है।[13] जायसवाल ने इसे चन्द्रगुप्त मौर्य के काल से सम्बन्धित किया है।[14] अक्षर आकारों के आधार पर बूलर ने इसे मौर्यकालीन माना है।[15] सरकार इसे तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग रखा है[16]। उपासक का भी यही मत है।[17] दानी इसे प्रथम शताब्दी ईस्वी में रखते है।[18] एस एन. राय ऐसी स्थापना करते है कि प्रस्तुत अभिलेख ब्राह्मी के विकास के उस स्तर का द्योतक है, जो मौर्यकाल का स्पर्श तो करता है, किन्तु वस्तुतः ब्राह्मी लिपि अभी मौर्यकालीन परिवेश में प्रतिष्ठित नहीं हो सकी थी।[19] आलोचित अक्षर आकार को फ्लीट एवं बरूआ ने "ए" का द्योतक माना था । बूलर ने इसे "व" पढ़ा है, तथा अनुवर्ती "स", – "ग" एवं "म" से संयुक्त कर शब्द को वसगमे (वंशग्रामे) अर्थात् आधुनिक बॉसगांव.का द्योतक माना है । इस मत की ग्राह्यता संदिग्ध है, क्योकि आधुनिक बॉसगॉव अभिलेख

के प्राप्ति स्थान सोहगौरा से काफी दूर है । अतएव जायसवाल का मत कि यह अक्षर "उ" का द्योतक है, सही लगता है । क्योंकि कुछ-एक मौर्यकालीन अभिलेखों में भी 'उ' के लिए इसी प्रकार की आकृति प्रयुक्त की गई है । ये अभिलेख निम्नोक्त है:

सहसराम का लघु शिलालेख : - 4
सिद्धपुर का लघु शिलालेख : - 6
लौरिया-आरराज का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश पत्र IV-3
इलाहाबाद-कौशाम्बी का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश पत्र IV-3

अक्षर "म" के दो अपसामान्य आकार निरूपित किये जा सकते हैं, इन दोनों का प्रत्यंकन भरहुत के अभिलेखों में प्राप्त होता है । पहले अपसामान्य आकार को कोणोन्मुख बनाया गया है, तथा दूसरे में निचले वृत्त एवं ऊपरी अर्द्धवृत्त के बीच रिक्तिका रखी गई है; जबकि आदर्श आकार में दोनों परस्पर संयुक्त हैं । पहला अपसामान्य अर्थात् कोणोन्मुख आकार कालसी के शिलालेख में मिलता है (आदेश पत्र 1-3 तथा VI -17)। सम्भवतः इस आकार तथा इसी की भाँति कुछ एक अन्य आकारों के आलोक में बूलर ने मौर्यकालीन ब्राह्मी की उत्तर-पश्चिमी उपशाखा की परिकल्पना की थी । किन्तु विवेच्य विषय के आलोक में केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह मौर्यकालीन अल्प प्रचलित आकार था, जिसे सुप्रचलन का सुयोग मौर्योत्तर काल की ब्राहमी में प्राप्त हुआ, जिसके निदर्शन कुषाण ब्राहमी, यहां तक कि कभी-कभी गुप्तकालीन ब्राहमी में (विशेषतया गुप्तकालीन मुद्राओं पर, तथा चन्द्रगुप्त के मथुरा स्तम्भ अभिलेख में) बहुशः प्राप्त होते हैं । विवेचन की दृष्टि से दूसरा अपसामान्य आकार अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है । अशोक के अभिलेखों में इसके निदर्शन जिन अभिलेखों में मिलते हैं, वे निम्नोक्त हैं :-

ब्रह्मगिरि का लघु शिलालेख : - 3
धौली का पृथक शिलालेख : - 1-16
गुजर्रा का लघु शिलालेख : - 3

प्रस्तुत आकृति की पुरातनता के सन्दर्भ में सोहगौरा का ताम्रपत्र अभिलेख का विशेषतया उल्लेख किया जा सकता है । ध्यातव्य है कि ताम्रपत्र के ऊपरी भाग पर "म" से ही मिलता जुलता आकार मिलता है, ४ । उपासक के आकलन के अनुसार इसे मंगल शब्द के प्रथम अक्षर के द्योतनार्थ अंकित किया गया है।[20] इसके काफी पहले जायसवाल ने इसे "म" अथवा "मो" से समीकृत कर "मोरिय" शब्द का द्योतक माना था।[21] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह आकार मंगल चिह्न ही है, क्योंकि समान आकार का अंकन शिलालेख जौगढ़ के ऊपरी भाग में मिलता है । जहां तक आलोचित अपसामान्य आकृति का प्रश्न है, इसे अभीष्ट एवं साभिप्राय मानने में कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है । यदि अन्य अनेक विद्वानों के मत को मान्यता प्रदान किया जाय, तथा यह मान लिया जाय कि सोहगौरा का अभिलेख प्राड्मौर्यकालीन है, तो इसके साथ-साथ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह एक पुरातन आकार है, जो अंशतः अथवा अल्पांशतः मौर्यकालीन ब्राह्मी में चलता रहा, तथा इसी के आधार पर प्रयास-लाघव की प्रेरणा में मौर्यकालीन ब्राह्मी का आदर्श आकार विकसित हुआ । इसी अवधारणा को ध्यान में रखते हुए बी.एम बरूआ ने इसे मौर्यकालीन आकार का उद्गम प्रकार (पेरेन्ट टाइप) माना था।[22]

अक्षर "च" का अपसामान्य आकार, आदर्श एवं सामान्य आकार से भिन्न है । आदर्श एवं सामान्य आकार में उदग्र रेखा के निचले हिस्से पर बाईं ओर अर्द्धवृत्त लगाया जाता था । यह आकार सुप्रचलित था । यद्यपि सोहगौरा के अभिलेख में सम्भवतः इसका एक पुरातन आकार भी प्राप्त होता है, तथापि इसकी निश्चित पहचान नहीं हो पाई है । फ्लीट[23] एवं बूलर[24] ने "चु" पढ़ा है जबकि बरूआ[25] इसे "छ" पढ़ते हैं इस सन्दर्भ में एस.एन राय[26] का कथन है कि आलोचित आकार में आर्षत्व एवं पुरातनता की प्रवृत्ति इतनी अधिक है, तथा ऐसा आकार अशोक के अभिलेखों अथवा परवर्ती अभिलेखों में दुर्लभ है, कि फलतः इसके अभिज्ञान के विषय में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता है । हो सकता

है कि यह कोई क्षेत्रीय आकृति अथवा लिपिकर के नये प्रयोग की प्रसूति रही हो, जो निर्गोपन - निगमक संकरता अथवा दुष्करता के कारण ब्राह्मी लिपि की अक्षर-सारिणी में समावेशित नहीं हो सकी थी । अपसामान्य आकार के विषय में उपासक[27] की अवधारणा रही है कि इसका कारण लिपिकर की शैली-विषयक वैयक्तिता माना जा सकता है । यह कोई अल्प प्रचलित आकृति थी, जिसके बहुशः प्रयोग-निदर्शन तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के श्रीलंका के ब्राह्मी अभिलेखों में प्राप्त होते हैं।[28] स्वयं अशोक के अभिलेखों में इसके अनेक निदर्शन मिलते हैं जिनके समस्तरीय आकार भरहुत की लिपि में निरूपित किये जा सकते हैं । अशोक के जिन अभिलेखों में इसके निदर्शन मिलते हैं, वे निम्नोक्त हैं :-

गिरिनार का शिलालेख : आदेश पत्र IX-3, XII-9

कालसी का शिलालेख : आदेश पत्र XI-30, XIV-21

धौली का शिलालेख : आदेश पत्र VII-1, VIII-2

जौगढ़ का शिलालेख : आदेश पत्र I-4, 9

रम्पुरवा का स्तम्भ अभिलेख : आदेश पत्र III-2

बैराट का लघु शिलालेख : - 3

अक्षर "ख" की आदर्श एवं अपसामान्य आकृतियों में स्पष्ट भिन्नता दृष्टिगोचर होती है । आदर्श आकार खनित्री जैसी आकृति द्वारा प्रदर्शित किया जाता था, जिसके नीचे प्रायः बिन्दु रखते थे, अथवा कभी-कभी बिन्दु नहीं भी रहता था । अपसामान्य आकृति में खनित्री आकार के नीचे त्रिभुजाकार रखते थे । उपासक ने ऐसे आकार का कारण लिपिकर की असावधानी माना है।[29] इस मत की ग्राह्यता वक्ष्य माण कारणों से संदिग्ध बन बैठती है:

1 श्रीलंका के तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के अभिलेखों में प्रायः यही आकार मिलता है (द्रष्टव्य इंसक्रिप्शंस आफ सीलोन, एस. परनवितान, फलत सं0 XIV.)

2. इसी आकृति के आधार पर प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व एवं तदनुवर्ती अभिलेखों में "ख" की आकृतियाँ निर्मापित हुई थीं: इत्यादि ।

3. इसके निदर्शन भरहुत की लिपि में निरूपित किये जा सकते हैं ।

4 अशोक के कालसी शिलालेख में, कम से कम दो जगहों पर यही आकार निर्मापित हुआ है, आदेश पत्र x–28 तथा आदेश पत्र XIV–23 । सम्बन्धित आकार अनभीष्ट नहीं माना जा सकता है । इसे तत्कालीन अल्प प्रचलित आकारों की कोटि में रख सकते हैं, जो ब्राह्मी के उत्तरवर्ती स्तरों सुप्रचलित बन सका था । यदि इसे क्षेत्रीय आकार माना जाय तो इससे बूलर की सम्भावना सार्थक हो जाती है, जिसके अनुसार कालसी की लिपि के आलोक में मौर्यकालीन ब्राहमी की उत्तर–पश्चिमी उपशाखा की परिकल्पना की जा सकती है ।

उक्त अक्षर तालिका में अक्षर "ग" की एक आदर्श आकृति तथा दो अपसामान्य आकृतियों को निदर्शित किया गया है । इनमें सुस्पष्ट भिन्नता निरूपित की जा सकती है । आदर्श आकृति पूर्णतः कोणोन्मुख है ∧ , जिसे कनिंघम ने संस्कृत की **गम्** धातु से सम्बन्धित कर इसे मनुष्य के जाने की क्रिया का द्योतक माना है।[30] इसे ब्राह्मी के चित्रात्मक स्तर को सम्भावना की जा सकती, तथा इसके आधार पर ब्राह्मी की स्वदेशी उत्पत्ति के मत को बल भी मिलता है । दूसरी ओर स्थिति यह है कि बूलर ने ब्राह्मी के "ग" की निष्पत्ति फोनीशियन लिपि के "गिमेल" ∧ , से माना है।[31] किन्तु जैसा कि एस.एन. राय[31अ] ने समीक्षित करने का प्रयास किया है, बूलर का सुझाव निम्नोक्त कारणों से सन्दिग्ध बन बैठता है:

1 अशोक के अभिलेखों में "ग" का सुप्रचलित आकार उस आकार से भिन्न है जिसे बूलर ने "ग" का स्रोत माना है । तथाकथित स्रोत–भूत "गिमेल" की दोनों सिराएं बराबर नहीं है ∧ , जबकि मौर्यकालीन ब्राहमी में "ग" की

दोनों सिराऐं बराबर हैं ⋀ , जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है ।

2 यह निश्चित करना सुकर नहीं है कि ब्राह्मी के "ग" का कोणाकार ⋀ अधिक पुराना है अथवा पुरातनता का अधिकारी इसका वर्त्तुलाकार ∩ है । अधिक सम्भावना इसी बात की लगती है कि प्रस्तुत अक्षर की वर्त्तुल आकृति ही अपेक्षाकृत अधिक पुरानी है । इसके दो कारण दिये जा सकते हैं । एक तो यह कि भट्टिप्रोलु के अभिलेख में, जिसे अधिकांश विद्वान् प्राङ् मौर्यकालीन मानते हैं, इसी आकार का अंकन हुआ है । दूसरे यह कि, यदि ब्राह्मी के गठन और विकास का आधार प्राचीन व्याकरण की आवश्यकताओं को मान लिया जाय जैसा कि कुछ-एक विद्वानों ने माना भी है; तथा ऐसी स्थिति में यह भी स्वीकार कर लिया जाय ब्राह्मी के "ग" के आधार पर इस लिपि के "घ" का विकास हुआ तो भी "ग" की वर्त्तुल आकृति ही पुरानी ठहरती है । प्राचीन ब्राह्मी के अभिलेखों में "घ" का वर्त्तुल आकार ही प्रयुक्त हुआ है ⊔ । अतएव "ग" के सन्दर्भ में अन्तिम निष्कर्ष यही निकाल सकते हैं कि "ग" का वह आकार जो "गिमेल" से मिलता जुलता है, जिसमें दोनों सिरे बराबर नहीं है, मौर्यकालीन ब्राह्मी के लिए अविदित नहीं है । इसका कारण लिपिकर की असावधानी नहीं माना जा सकता है, जैसा कि भ्रम-वश उपासक[32] ने माना भी है । मौर्यकालीन अनेक अभिलेखों में इस आकार का निदर्शित होना ही, उक्त अवधारणा को सम्पुष्ट कर देता है । ऐसे अभिलेखों में कुछ एक निम्नोक्त हैं :-

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र II-9, VI-3
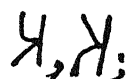
कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र VII-21

देहली-टोपरा का स्तम्भ - अभिलेखः आदेश पत्र VII-23 इत्यादि । इसी प्रकार "ग" के वर्त्तुल आकार को भी अनभीष्ट अथवा लिपिकर की प्रमाद-प्रसूति नहीं मान सकते है ।

एरागुडी के लघु शिलालेख (–5) में यह स्पष्टतया निदर्शित हुआ है । उत्तरवर्ती स्तर पर द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अभिलेखों में, जिनमें भरहुत की लिपि सम्मिलित है, ये दोनों ही आकार निदर्शित हुए हैं ।

वैदुष्य–परिशीलन के अनुसार अशोक के उपलब्ध अभिलेखों अक्षर "अ" के कम से कम उन्नीस आकार मिलते हैं । इन्हें तीन वर्गो में समायोजित किया जा सकता है । ये तीन इस प्रकार हैं :– कोणाकार , वर्त्तुल आकार एवं मिश्रित आकार ; बूलर ने इस अक्षर की निष्पत्ति फोनीशियन लिपि के "अलेफ" से माना था, तथा ऐसी भी स्थापना करने का प्रयास किया था कि कोणाकार उस आकार की अपेक्षा प्राचीनतर है जो वर्त्तुल आकार में प्राप्त होता है । किन्तु ऐसा सुझाव इसलिए संदिग्ध बन जाता है कि महास्थान एवं सोहगौरा जैसे प्राड्.मौर्यकालीन अभिलेखों में सम्बन्धित अक्षर का वर्त्तुल आकार प्राप्त होता है।[33] इस सन्दर्भ में उपासक का सुझाव है कि वर्त्तुलाकार अशोक के स्तम्भ अभिलेखों में ही मिलता है, जबकि शिलालेखों में केवल कोणाकार मिलता है।[34] किन्तु उपलब्ध प्रमाण इस सुझाव के विरोध में जाता है । ऐसे शिलालेखों में, जिनमें "अ" का वर्त्तुल आकार मिलता है, निम्नोक्त हैं :

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र 1-10, III-2, IV-1

धौली का शिलालेख : आदेश-पत्र 1-4, III-3, V-3
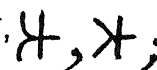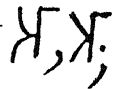
धौली का पृथक शिलालेख : आदेश-पत्र 1-4,15,16,20,23

जौगढ़ का शिलालेख : आदेश-पत्र III-1, 3

जौगढ़ का पृथक शिलालेख : आदेश-पत्र 1-4, 6, 10, 11

कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र II-5, IV-9, 10

जहाँ तक द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अभिलेखोंका सम्बन्ध है, जिनमें भरहुत की लिपि भी सम्मिलित की जा सकती है, न्यूनाधिक रूप में वर्त्तुल एवं कोणाकार, "अ" के, दोनों आकारों को निरूपित किया जा सकता है ।

मोर्यकालीन ब्राह्मी में "आ" के प्रधानतः दो आकार निदर्शित हुए हैं । एक तो वह कि जिसमें "आ" की मात्रा के प्रदर्शनार्थ क्षैतिज रेखिका को उदग्र रेखा के मध्य दाहिनी ओर लगाया गया है, [illegible] यही सुप्रचलित आकार था । अल्पप्रचलित आकार में क्षैतिज रेखिका को उदग्र रेखा के ऊपर दाहिनी ओर लगाया गया है [illegible] इसके निदर्शन कम मिलते हैं ।

ये दोनों ही आकार भरहुत के अभिलेखों में तो मिलते ही हैं । इसके अतिरिक्त इनके प्रयोग की प्रवृत्ति तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के श्रीलंका के अभिलेखों में भी दिखाई देती है ।

अक्षर "इ" के सन्दर्भ में उक्त तालिका में यह निदर्शित किया जा चुका है कि आदर्श अथवा मानक आकृति में इसे दो बिन्दुओं को ऊपर और नीचे बनाकर तीसरी बिन्दु को दाहिनी ओर रखा जाता था [illegible] किन्तु अपसामान्य अथवा अल्पप्रचलित आकार में इसका प्रदर्शन शीर्णस्थ बिन्दु के ठीक नीचे दो बिन्दुओं को रखकर किया जाता था [illegible] । दूसरी आकृति का निदर्शन अशोक के गिरिनार के शिलालेख, देहली–टोपरा के स्तम्भ–अभिलेख, लौरिया–आरराज के स्तम्भ–अभिलेख, लौरिया–नन्दनगढ़ के स्तम्भ–अभिलेख, रम्पुरवा के स्तम्भ–अभिलेख, एरागुडी के लघु शिलालेख में प्राप्त होता है । इतने अधिक अभिलेखों में इसकी उपलब्धि के कारण इसे अनभिष्ट मानने में कठिनाई प्रतीत होती है, तथा उपासक[35] का यह सुझाव भी अमान्य हो जाता है कि इसका कारण लिपिकर की लापरवाही है । इसके अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है, मानक आकार के अतिरिक्त इस अपसामान्य अथवा अल्पप्रचलित आकार को भरहुत की लिपि में भी प्रयुक्त

किया गया है । अतएव, ऐसी स्थिति में इसे अभीष्ट आकार मानने में कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है ।

उक्त तालिका में अक्षर "ए" के दो आकार निदर्शित किये गये हैं । मानक आकार में लंबवत रेखा के दाहिने त्रिभुजाकार संयुक्त किया गया है, ▷ । अल्पप्रचलित आकार में त्रिभुजाकार को लंबवत रेखाके बाएं संयुक्त किया गया है, ◁ । ऐसी जिज्ञासा की जा सकती है कि प्रस्तुत अक्षर की ऐसी व्यवस्था ब्राह्मी की प्रारम्भिक स्तरों पर प्रचलित लेखन दिशा पर प्रकाश डाल सकती है । उपासक की अवधारणा के अनुसार मानक आकार की निर्मापन-व्यवस्था से ऐसा प्रतिध्वनित होता है कि लिपिकर ने पहले लंबवत रेखा को बनाया, तदुपरान्त त्रिभुजाकार को इसके संयुक्त किया – अर्थात् ब्राह्मी की मूल लेखन दिशा बाऐं से दाहिने ही थी।[36] ठोस प्रमाणों को अनुपलब्धि के कारण इस मत की ग्राह्यता सर्वथा संशय-विहीन नहीं लगती है । ये दोनों ही आकार भरहुत की लिपि में प्राप्त होते हैं ।

जहाँ तक "ओ" का प्रश्न है, इसके दो आकारों का उल्लेख किया जा सकता है । एक तो वह आकार जिसमें उदग्र रेखा के ऊपरी सिरे पर बाईं ओर क्षैतिज रेखा संयुक्त की गई है, तथा निचले सिरे पर दाहिनी ओर क्षैतिज रेखिका का संयोजन किया गया है । इस प्रकार प्रस्तुत अक्षर को "उ" के आकार का "गुणित" ("आद्गुणः" के अनुसार) मानने में, तथा कनिंघम और उपासक के एतद् विषयक सुझाव में किसी प्रकार की विसंगति नहीं दिखाई देती है । जैसा कि उक्त अक्षर–तालिका में रेखांकित किया गया है, "ओ" के इस मानक आकार के अलावे दो अपसामान्य अथवा अल्पप्रचलित आकार मिलते हैं, जिन्हें समीक्षा का विषय बनाया जा सकता है। इनमें पहली आकृति के निर्माण में उदग्र रेखा के निचले सिरे पर दाहिनी ओर ऊर्ध्वमुखी कोणाकार लगाया गया है, तथा ऊपरी सिरे पर बाईं ओर सीधी क्षैतिज रेखा संयुक्त की गई है, । यह आकृति कालसी के शिलालेख (आदेश पत्र VI-18) में मिलती

है । उपासक ने इसे लिपिकर की असावधानी की प्रसूति माना है,[37] जब कि राय[38] ने इसे अभीष्ट आकार माना है । अपने सुझाव के समर्थन में राय ने सोहगौरा के अभिलेख में मिलने वाले उस आकार को प्रसंगित किया है, जिसे कुछ एक विद्वानों ने "उ" , पढ़ा है । राय के अनुसार "उ" की इसी आकृति का "गुणित" प्रतिरूप विवेचित आकार को माना जा सकता है । यह ध्यातव्य है कि भरहुत की लिपि में यत्र-तत्र इस आकृति का निदर्शन निरूपित किया जा सकता है, यद्यपि सामान्यतया इसमें मानक आकृति ही मिलती है । दूसरी अपसामान्य आकृति विवेचन की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण मानी जा सकती है । इसमें उदग्र रेखा के ऊपरी सिरे पर क्षैतिज रेखिका को दाहिनी ओर संयुक्त किया गया है, तथा निचले सिरे पर क्षैतिज रेखिका को बाईं ओर संयुक्त किया गया है, । जिन अभिलेखों में इस आकृति को प्रदर्शित किया गया है । वे निम्नोक्त हैं :-

धौली का पृथक शिलालेख : आदेश-पत्र II-3, V-6, VI-2

जौगढ़ का पृथक शिलालेख : आदेश-पत्र II-3, VI-2

बूलर ने इस आकृति को अतीव गम्भीरता से लेते हुए, ऐसी स्थापना की थी, कि इस आकृति की बनावट से प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मी के उस पुरातन प्रारूप की द्योतक है, जब कि यह लिपि "बास्ट्रोफेडन" के अनुसार चलती थी । ऐसी स्थिति में उक्त विद्वान् ने ब्राह्मी को फोनीशियन लिपि से प्रभावित माना था । इस मत की ग्राह्यता को संदिग्ध सिद्ध करते हुए, राय ने प्रतिपादित किया है कि यदि ऐसी बात रहती तो एरागुडी के अभिलेख में, जिसकी कुछ एक पंक्तियाँ दाहिने बाएँ भी उत्कीर्ण है ऐसी आकृति मिल सकती थी । किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उक्त अभिलेख में प्रस्तुत आकृति के साथ-साथ अन्य अनेक अक्षरों को भी विपरीत आकार नहीं दिया गया है, यहाँ तक कि उन पंक्तियों में भी जो दाहिने से बाएँ उत्कीर्ण हुई हैं । वस्तुतः विवेचन-परकता की सही दिशा में आकलन किया जाय तो इस आकार को मौर्यकालीन ब्राह्मी की दक्षिण-पूर्वी शाखा की संज्ञापक स्वीकार किया जा सकता है ।

उक्त अक्षर–तालिका में "ह" के मानक आकार को वर्त्तुल दिखाया गया है, जो सुप्रचलित आकार था, जिसके निदर्शन मौर्यकालीन ब्राहमी में अनेकशः प्राप्त होते हैं । अपसामान्य अथवा अल्पप्रचलित आकार चपटा है, जिसके निदर्शन निम्नोक्त अभिलेखों में निरूपित किये जा सकते हैं :

लौरिया–आरराज का स्तम्भ–अभिलेख : आदेश पत्र VI-2

रम्पुरवा का स्तम्भ–अभिलेख : आदेश पत्र IV-3, VI-2,3

यह ध्यातव्य है कि उत्तरवर्ती द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अभिलेखों में प्रायः यही आकृति प्रयुक्त हुई है, यद्यपि भरहुत की लिपि में दोनों ही आकृतियों के निदर्शन प्राप्त होते हैं ।

जहाँ तक अक्षर "श" का प्रश्न है, इसके मानक आकार को शर (तीर) के रूप में निदर्शित किया गया है । किन्तु अपसामान्य अथवा अल्पप्रचलित आकार नितान्त भिन्न है, , जिसका किसी प्रकार का भी आकार विषयक सम्बन्ध मानक आकार से नहीं माना जा सकता । इसे कालसी के शिलालेख (आदेश-पत्र XII-3) में निरूपित किया जा सकता है । भरहुत लिपि में थोड़े बहुत हेर–फेर के साथ इसी आकार को प्रयुक्त किया गया है ।

जैसा कि उक्त तालिका में निदर्शित किया गया है, "व" के मानक आकार में उदग्र रेखा के नीचे वृत्त संयुक्त किया गया है, जबकि अपसामान्य आकार वृत्ताकार को त्रिभुजाकार में परिवर्द्धित किया गया है, जिसका निदर्शन कालसी के शिलालेख (आदेश-पत्र XII-3) में मिलता है । भरहुत की लिपि में यही आकृति निदर्शित हुई है ।

जहाँ तक "भ" का प्रश्न है, इसका मानक आकार दक्षिणाभिमुख पशु (वृषभ) के समान मिलता है, । अपसामान्य आकार इससे कुछ भिन्न है, अधोवर्ती रेखिका को क्षैतिज रेखा के अन्तिम सिरे पर न लगाकर, उसके समीप रखा गया है भरहुत की लिपि में इसी आकार का प्रयोग हुआ है ।

अक्षर "प" अपने मानक आकार में वर्त्तुल है, तथा अपसामान्य आकार में इसे चपटा बनाया गया है, वर्त्तुल आकार की ही भाँति चपटे आकार का प्रयोग भी अशोक के अनेक अभिलेखों में हुआ है । भरहुत की लिपि में दोनों ही आकार निदर्शित हुए है ।

अक्षर "न" के मानक आकार को आधारभूत क्षैतिज रेखा के मध्य बिन्दु को काटती हुई उदग्र रेखा द्वारा प्रदर्शित किया जाता था । अपसामान्य आकार में आधारभूत रेखा को घुमावदार बनाया जाता था , भरहुत की लिपि में इसी आकार का प्रयोग हुआ है ।

अक्षर "द" के प्रदर्शनार्थ बाईं ओर खुली हुई अर्द्धवृत्त की आकृति के दोनों सिरे पर ऊपर और नीचे उदग्र रेखिकाओं को प्रयोग में लाया जाता था , जबकि अपसामान्य आकार अर्द्धवृत्त को चपटा बनाते थे , जिसके निदर्शन गिरिनार, धौली (पृथक) तथा जौगढ़ (पृथक) के अभिलेखों में प्राप्त होते हैं । दूसरे आकार के आधार पर राय ने ऐसा सुझाव रखा है कि इससे बूलर की विवादास्पद सम्भावना सत्यापित हो जाती है कि मौर्यकालीन ब्राह्मी में समरूपता की अनुकूल परिस्थितियों की प्रकर्षता के बावजूद शाखाओं का अस्तित्व अवश्य था।[40]

अक्षर "त" के मानक आकार में उदग्र रेखा के निचले बिन्दु से खींची हुई तथा निम्नाभिमुख कोणाकार को प्रयोग में लाते थे, । अपसामान्य आकार का निदर्शन

कालसी के शिलालेख में मिलता है, जिसमें निचले कोणाकार को वर्तुल बनाया गया है। भरहुत की लिपि में इसी आकृति को प्रयोग में लाया गया है ।

अक्षर "ड" के प्रदर्शनार्थ क्षैतिज रेखा के दोनों सिरों से ऊपर और नीचे उदग्र रेखाएं निकाली गई हैं । क्षैतिज रेखा मानक आकार में कुछ दीर्घ है, किन्तु अपसामान्य आकार में यह लघ्वाकार हो गई है ; जिसके निदर्शन भरहुत की लिपि में निरूपित किये जा सकते हैं ।

अपने मानक आकार में "ज" वर्तुलाकार है , किन्तु अपसामान्य आकार में चपटा बनाया गया है, ; जिसके निदर्शन गिरिनार के शिलालेख (आदेश-पत्र IX-11) तथा कालसी के शिलालेख (आदेश-पत्र IV-11) में प्राप्त होते हैं । भरहुत की लिपि में इन दोनों आकृतियों के निदर्शन मिलते हैं ।

मौर्यकालीन ब्राहमी में "य" का आकार अनेकशः तथा फलतः अनेकधा उपलब्ध होता है । प्रधानतः इसके दो आकार मिलते हैं । एक तो वह कि जिसमें अर्द्धवृत्त को एक उदग्र रेखा काटती है, ; तथा दूसरी वह कि जिसमें अर्द्धवृत्त को दो घुमावदार भागों में निरूपित किया गया है, । उपासक ने दूसरे आकार को मानक आकार के रूप में ग्रहण किया है,[41] जब कि इस आशय के समर्थनार्थ कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त होता है । राय के अनुसार ये दोनों ही आकार समान रूप से मिलते हैं,[42] अतएव दोनों को ही मानक आकारों के रूप में ग्रहण करने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है । इतना अवश्य है कि यदि इन दोनों को ही मानक आकारों के रूप में ग्रहण कर लिया जाय तो उस विशेष आकृति को ढूंढ़ना पड़ेगा, जिसे अपसामान्य किन्तु अभीष्ट आकृति की संज्ञा दी जा सके । अशोक के अभिलेखों में "य" की ऐसी अनेक अपसामान्य आकृतियां प्राप्त होती हैं, किन्तु उन्हें अभीष्ट आकृति की संज्ञा देना उचित नहीं लगता । अपसामान्य और अभीष्ट आकृति वही हो सकती है, जिसे तत्कालीन

अभिलेखों में कम प्रयुक्त किया गया हो, किन्तु उसे अवान्तरकालीन आकृति की पुरोगामिता के स्तर पर रखा जा सके । इस कोटि की वह विशेष आकृति है, जिसमें निचला भाग कोणाकार बनाया गया है, ↓ । यही आकृति उस विशेष आकृति की पुरोगामी प्रतीत होती है, जिसके प्रयोग के निदर्शन भरहुत की लिपि में बहुशः प्राप्त होते हैं। अशोक के जिन अभिलेखों में यह आकृति निरूपित की जा सकती है, वे निम्नोक्त हैं:

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र VIII-3

कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र 1-2

धौली का पृथक शिलालेख : आदेश-पत्र II-4

रूपनाथ का लघु शिलालेख : - 4

सहसराम का लघु शिलालेख : - 3, 4

सिद्धपुर का लघु शिलालेख :-17

प्रसंगतः यह उल्लेखनीय है कि उक्त अनुच्छेद में "य" के जिन दो मानक आकारों की चर्चा की गई है, वे समान रूप से प्राचीन माने जा सकते हैं; तथा इस आशय के सत्यापनार्थ प्राड् मौर्यकालीन दो अभिलेखों को प्रसंगित किया जा सकता है । पहले क्रम पर भट्टिप्रोलु का अभिलेख उल्लेखनीय है । इसमें निचले वर्त्तुल आकार वाले आकार का प्रयोग कम से कम तीन बार हुआ है।[43] दूसरे क्रम पर महास्थान के अभिलेख को रखा जा सकता है । इसमें निचले घुमावदार भाग वाले आकार का प्रयोग "सवगियानं" तथा "तियायिके" शब्दों में हुआ है।[44] उक्त दोनों आकरों के सन्दर्भ में बूलर ने निचले घुमावदार वाले आकार को अधिक प्राचीन मानते हुए, इसे अन्य दोनों, ↓ ↓ आकारों का स्रोत भूत माना है । किन्तु इसके साथ ही, प्रस्तुत विद्वान ने ब्राह्मी के "य" की निष्पत्ति प्राचीन सेमिटिक लिपि के "योद" ⋀ से माना है । किन्तु ऐसी अवधारणा अनैतिहासिक प्रयास ही लगती है ।

सम्भवतः उद्भव, विकास एवं प्रभाव की दृष्टि से मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में सबसे अधिक महत्वपूर्ण किन्तु विवादास्पद अक्षर "र" का आकार है । इस सन्दर्भ में राय[45] ने हमारा ध्यान बूॅलर के विश्लेषण की ओर आकर्षित किया है । यह सुविदित है कि अशोक के अभिलेखों में "र" के दो आकार मिलते हैं । एक तो वह कि जिसे वक्र आकार की संज्ञा दे सकते हैं । दूसरा वह आकार जो ऋजु है । बूॅलर के अतिरिक्त टेलर एवं वेबर जैसे पाश्चात्य पुराविदों ने भी ब्राहमी क "र" की निष्पत्ति सेमिटिक "रेश" से माना है । किन्तु जब कि टेलर एवं वेबर ने "र" के ऋजु आकार को पुराना माना है, बूॅलर की अवधारणा के अनुसार अधिक पुराना वक्र आकार है । अपने मत के समर्थन में बूॅलर ने निम्नोक्त तथ्यों को प्रस्तावित किया है :

1 अशोक के अभिलेखों में वक्र आकार का प्रयोग अधिक हुआ है । ऋजु आकार का प्रयोग केवल रूपनाथ के लघु शिलालेख में हुआ है ।

<u>आपत्ति</u> : यह सुझाव उपलब्ध साक्ष्यों से मेल नहीं खाता । बूॅलर का यह कथन सही है कि ऋजु आकार का प्रयोग रूपनाथ के लघु शिलालेख में हुआ है । किन्तु यह कथन संगत नहीं है कि अशोक के अन्य अभिलेखों में ऋजु आकार प्रयुक्त नहीं हुआ है । वस्तुतः इसके निदर्शन अशोक निम्नोक्त अभिलेखों में भी मिलते हैं:

गिरिनार का शिलालेख :(आदेश-पत्र 1-8,11, II-7, IV-5,8,9
साँची का लघु स्तम्भ-अभिलेख पंक्ति 4
मास्की का लघु शिलालेख : पंक्ति 2, 3
एरागुडी का लघु शिलालेख : पंक्ति 3, 8, 11, 17, 18, 21, 24, 25
राजुलमंडगिरि का लघु शिलालेख : पंक्ति 2, 6, 8

2. यदि "र" की आकृतियों की भरमार किसी अभिलेख में दिखाई देती है, तो वह है गिरिनार का शिलालेख; जिसमें "र" की वक्र आकृतियों का प्रयोग निरन्तर एवं निरपवाद रूप में हुआ है ।

<u>आपत्ति</u> : उक्त सुझाव साक्ष्यों के विरोध में जाता है । जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, गिरिनार के शिलालेख में "र" की ऋजु आकृति निरूपित की जा सकती है । वस्तुतः गिरिनार के शिलालेख में वक्र और ऋजु इन दोनों ही आकृतियों का प्रयोग हुआ है ।

3 गिरिनार के शिलालेख में "र" की तीन वक्र आकृतियां प्रदर्शित हुई हैं:- (1) वक्र रेखा को बाईं ओर फूला हुआ दिखाया गया है, (2) इसके निदर्शनार्थ दाहिनी ओर खुले हुए दो कोण प्रदर्शित किये हैं, (3) यत्र-तत्र इस अभिलेख में "र" के निरूपाणार्थ दाहिनी ओर खुला हुआ केवल एक कोण दिखाया गया है । बूलर के अनुसार तीसरा आकार प्राचीन माना जा सकता है, जिसकी निष्पत्ति सेमिटिक "रेश" से मानी जा सकती है । बूलर की पूर्वाग्रह से ग्रस्त धारणा के अनुसार, भारतीय लिपिकर अक्षर के शिरोभाग को बोझिल बनाने के पक्ष में नहीं था, अतएव पहले स्तर पर उसने "रेश" के त्रिभुजाकार को खोलकर कोणाकार बनाया , तथा आगे चलकर ब्राह्मी की निश्चित दिशा बाएं से दाहिने होने पर शिरोभाग के कोण को दाहिनी ओर खोला गया

<u>आपत्ति</u> : बूलर का यह कथन साक्ष्य-परकता से पृथक बन बैठता है कि "र" की वक्राकृति ऋजु आकृति की अपेक्षा अधिक प्राचीन है । बूलर द्वारा गिरिनार अभिलेख को बार-बार दुहराया जाना खटकने लगता है । अच्छा होता कि बूलर ने भट्टिप्रोलु का उदाहरण दिया होता । इस अभिलेख की लिपि की तिथि को राजबली पाण्डेय ने अशोक के अभिलेखों को पूर्ववत्ती माना है।[46] इस मत में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है । आलोचित अभिलेख में "र" के ऋजु आकार का प्रयोग कम से कम छः बार हुआ है, "थोरसिसि" "कुरो", "कुभेरको", "भरदो", "उत्तरो" और "कारह" जैसे शब्दों में।[47] इसी प्रकार बड़ली के अभिलेख में, जिसे गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा[48] और राजबली पाण्डेय[49] ने अशोक के पहले का माना है, "र" की ऋजु आकृति को "राय" और "चतुरसिति" शब्दों में निरूपित किया जा सकता है । बूलर

के इस कथन में औचित्य नहीं दिखाई देता कि भारतीय लिपिकर अक्षर के शिरोभाग को बोझिल बनाने के पक्ष में नहीं था । यदि शिरोभाग का त्रिभुजाकार उसके लिए बोझिल था, तो ऐसी स्थिति में क्या कोणाकार शिरोभाग को बोझिल नहीं माना जा सकता है ।

ऐसी स्थिति में राय ने ऐसी स्थापना करने की चेष्टा किया है[49ब] कि ब्राहमी लिपि में "र" के ऋजु आकार के प्रयोग की परम्परा पहले से चली आ रही थी; प्रयोग की परिस्थिति-विशेषता के कारण इसके प्रदर्शनार्थ वक्र आकार को अधिमान्यता दी गई थी । इनकी अवधारणा के अनुसार अशोक के उपलब्ध अभिलेख इस तथ्य को संशय-रहित कर देते हैं, कि इनमें "देवानंप्रियो", "प्रियदसी" अथवा "देवानंर्पियो", "र्पियदसि" जैसे शब्दों का नैरन्तरिक प्रयोग हुआ है । लिपिकर के सामने "र" का ऋजु आकार था, जिसे उसने अपेक्षित संयुक्ताकार में प्रयुक्त भी किया है । किन्तु इससे मन्तव्य का सुस्पष्टीकरण नहीं हो सकता था । इसीलिए सम्भवत: "र" के प्रदर्शनार्थ वक्र रेखा का आविष्कार किया गया, तथा एक बार मानकरूपेण प्रतिष्ठित हो जाने के कारण वक्र आकार के प्रयोग की परम्परा उत्तरवर्ती स्तरों पर निरन्तर चलती रही। ध्यातव्य है कि भरहुत लिपि में "र" के वक्र आकार के प्रयोग को वरीयता प्रदान की गई है । प्रस्तुत मन्तव्य के निदर्शनार्थ राय ने निम्नोक्त तालिका को रेखांकित किया है :-

– प

– र्प ("र" की ऋजु आकृति के जुड़ने पर), इससे "प" और "र्प" में विभेद करना कठिन था ।

– र्प ("र" की वक्र आकृति के जुड़ने पर) इससे "प" और "र्प" में स्पष्ट विभेद स्थापित किया जाता था ।

– प्र ("र" की ऋजु आकृति के जुड़ने पर) इससे "पु" की भ्रान्ति हो सकती थी ।

– प्र ("र" की वक्र आकृति के जुड़ने पर) इससे "प्र" का अभिज्ञान सुस्पष्ट हो जाता था ।

अक्षर "स" के निदर्शनार्थ तीन आकार प्रयुक्त हुए हैं । पहले आकार के लिए, उदग्र ऋजु रेखा के निचले सिरे से दाहिनी ओर ऊर्ध्वमुखी, तथा मध्य बिन्दु से बाईं ओर अधोमुखी फन्दानुमा आकार बनाया गया है । इस आकार पर अपनी समीक्षा प्रस्तुत करते हुए, उपासक ने इतना तो अवश्य कहा है कि अशोक के अभिलेखों में यह आकार बार–बार प्रयुक्त हुआ है,[50] किन्तु क्या इसे मानक आकार की कोटि में रख सकते हैं, अथवा नहीं इस सन्दर्भ में उपासक मौन हैं । "स" का दूसरा विशेष वह आकार है, जिसमें बाएं फन्दे को तिर्यक रेखिका का रूप प्रदान किया गया है, । इसे मानक आकार भले ही न माना जाय, किन्तु इसे प्राचीनतर मानने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है । इसके लिए पहला साक्ष्य एरण के उस विवाद–ग्रस्त मुद्रांकित लेख का दिया जा सकता है, जिसमें (मुद्रा–निर्माण में मौलिक सदोषता के कारण) अक्षरों की दिशा दाहिने से बाएं है । सामान्यतया इस मुद्रा को प्राड्.मौर्यकालीन मानते हैं, यद्यपि इस मत की अधिमान्यता के विषय में विद्वानों ने सन्देह व्यक्ति किया है । उदाहरणार्थ राय ने स्थापित करने का प्रयास किया है कि विवेचित मुद्रा के लेखाक्षरों में पुरातनता का पुट अवश्य है, पर इसके आधार पर मुद्रा की प्राचीनता सिद्ध नहीं हो पाती; क्योंकि मुद्राक्षरों में अभिलेखाक्षरों की भाँति नवीनता उतनी शीघ्रता के साथ नहीं आ पाती है।[51] स्थिति की वास्तविकता जो कुछ हो, इतना तो स्पष्ट है कि मुद्राक्षरों आर्षत्व की प्रवृत्ति अधिक है, तथा ऐसी स्थिति में इसमें उपलब्ध "स" के आकार को विपरीतांकन के बावजूद , प्राचीन मान सकते हैं। "स" के इस आकार की प्राचीनता के प्रमाणार्थ भट्टिप्रोलु के अभिलेख को भी प्रसंगित किया जा सकता है, जिसमें "स" के इसी आकार , को प्रयोग में लाया गया है[50] ("समणो", "सतुद्यो",,

"सुतो", "थोरसुतो" तथा "तिसो" में) । अशोक के जिन अभिलेखों में यह आकृति प्रयुक्त हुई है, वे निम्नोक्त हैं :

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र II-5, 7, 8

कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र XIII-12, 14, 15

ब्रह्मगिरि का लघु शिलालेख : पंक्ति 9, 12

सिद्धपुर का लघु शिलालेख : पंक्ति 1, 2, 4, 5, 6, 18

जतिंग रामेश्वर का लघु शिलालेख : पंक्ति 2

एरागुडी का शिलालेख : आदेश-पत्र IV-2, 3, V-5

अतएव, यह स्पष्ट हो जाता है कि इस आकार की मानकता भले ही न मानी जाय, किन्तु इसकी अतिप्रचलनशीलता संशय-रहित है ।

"स" का तीसरा अपसामान्य वह आकार है, जिसमें निचले भाग के दाहिने ओर ऊर्ध्वमुखी वर्त्तुल आकृति है, किन्तु बाईं ओर अधोमुखी कोणाकृति है, ᒥᒍ । अशोक के जिन अभिलेखों में यह आकृति प्रयुक्त हुई है, वे निम्नोक्त हैं :-

लौरिया-आरराज का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र II-4
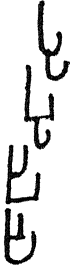
इलाहाबाद-कौशाम्बी का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र IV-2

बैराट का लघु शिलालेख : पंक्ति 2

एरागुडी का लघु शिलालेख : पंक्ति 3, 5, 11, 18, 23, 25

ध्यातव्य है कि तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में श्रीलंका के अभिलेखों में दूसरी अपसामान्य आकृति, ᒍ ; तथा भरहुत की लिपि में दूसरी ओर तीसरी ᒥᒍ अपसामान्य आकृतियाँ प्रचुरता के साथ प्रयुक्त हुई है ।

अक्षर "ष" का मानक आकार उदग्र ऋजु रेखा द्वारा निदर्शित किया गया है; जिसके निचले सिरे से दाहिनी ओर ऊर्ध्वमुखी तथा मध्य बिन्दु से उसी दिशा में ऊर्ध्वमुखी, दो फन्दानुमा रेखाएं प्रयोग में लाई गई हैं, । अशोक के उपलब्ध अभिलेखों में इस मानक आकार के अतिरिक्त कई एक अपसामान्य एवं अल्पप्रचलित आकार भी निरूपित किये जा सकते हैं, जिनका विवरण निम्नोक्त है :

: कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र XI-29

: कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र X-28

: कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र XII-31

: कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र XI-29

जहाँ तक उत्तरवर्ती स्तरों पर प्रचलन का प्रश्न है, विशेषतया भरहुत की लिपि में, मानक आकार को प्रयोग में कम लाया गया है; अधिकांशतः अपसामान्य चौथी आकृति प्रयुक्त हुई है । विकास की दृष्टि से भी यही आकृति महत्वपूर्ण प्रतीत होती है, जिसके निदर्शनार्थ निम्नोक्त तालिका प्रस्तुत की जा सकती है :
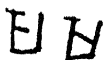
: कालसी का अपसामान्य आकार, इसे यत्र–तत्र भरहुत की लिपि में प्रयोग में लाया गया है ।

: भरहुत के अतिरिक्त, इसे मथुरा, कौशाम्बी, श्रावस्ती आदि स्थानों से उपलब्ध द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अभिलेखों में प्रयुक्त किया गया है।

: प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की उत्तर क्षत्रपीय ब्राहमी में इसके निदर्शन निरूपित किये जा सकते हैं ।

: दोनों आकृतियों का प्रयोग कुषाणकालीन ब्राहमी में किया गया है ।

: गुप्तकालीन लिपि की पश्चिमी शाखा में इस आकार का प्रयोग किया है। गुप्तकालीन मुद्रांकित लेखाक्षरों में भी इसी आकार का प्रयोग किया गया है । किन्तु गुप्तकालीन लिपि की पूर्वी शाखा में इसका आकार एकाएक बदल जाता है,

अब प्रश्न उठता है कि क्या इस अक्षर का कोई प्राङ्.मौर्यकालीन आकार भी था ? इसका उत्तर भट्टिप्रोलु की लिपि में ढूँढ़ा जा सकता है, जिसमें इस अक्षर के नितान्त अपसामान्य आकार को प्रयोग में लाया गया है, ; जो येन केन प्रकारेण मौर्यकालीन आकृति का समस्तरीय माना जा सकता है । वस्तुतः इसके अवान्तरकालीन प्रयोग के प्रमाण नहीं मिलते हैं । सम्भवतः यह तथाकथित दामिली लिपि का आकार था, जिसका प्रयोग दक्षिण भारत में ही सीमित था । मौर्यकालीन ब्राहमी में समरूपता लाने के प्रयास में इसका स्वरूप परिवर्द्धित हो गया ।

अक्षर "ल" के प्रदर्शनार्थ उदग्र ऋजु रेखा के निचले भाग को बाईं ओर ऊर्ध्वमुखी घुमावदार रूप देकर सिरे पर बाईं ओर ही एक क्षैतिज रेखा संयुक्त की जाती थी । इसे सम्बन्धित अक्षर के मानक आकार के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, यह आकृति अशोक के तमाम अभिलेखों में प्रयुक्त हुई है, जिनमें कुछ एक निम्नोक्त हैं :-

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र I-2, 10

कालसी का शिलालेख : ओदश-पत्र I-1, 2, 3

धौली का शिलालेख : आदेश-पत्र I-1, 3, 4

देहली-टोपरा का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र I-1, 2, 3

लौरिया आरराज का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र I-1, 2, 4, 5

लौरिया नन्दनगढ़ का स्तम्भ अभिलेख : आदेश-पत्र I-1, 2, 4, 5, 6

अपसामान्य एवं अल्पप्रचलित आकारों में दो का प्रसंग दिया जा सकता है । पहले में आकार को चपटा बनाया गया है, ᒣ ; तथा दूसरे में इसे कोणाकार रूप दिया गया है, ᒣ । पहला आकार जिन अभिलेखों में मिलता है, उनमें कुछ-एक निम्नोक्त हैं :-

कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र I-2, II-6

धौली का शिलालेख : आदेश-पत्र VI-2

जौगढ़ का शिलालेख : आदेश-पत्र VI-6

लौरिया-आरराज का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र I-1, 5

लौरिया-नन्दनगढ़ का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र I-3, IV-1

दूसरे अपसामान्य एवं अल्पप्रचलित आकार के निरूपण में निम्नोक्त का उल्लेख विशेषतया किया जा सकता है:-

गिरिनार का शिलालेख : आदेश-पत्र XIV-6

कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र VI-20

जौगढ़ का शिलालेख : आदेश-पत्र V-1

लौरिया-आरराज का स्तम्भ-अभिलेख : आदेश-पत्र I-1

प्राचीनता की दृष्टि से वर्त्तुल आकृति को ही वरीयता प्रदान की जा सकती है । मानक आकार का तत्सम महास्थान के अभिलेख में निरूपणीय है, ᒣ ("पुडनगलते" शब्द में) । लगभग तत्सम आकार भट्टिप्रोलु के अभिलेख में मिलता है, ᒣ ("पिगलको", "ओडालो", "गिलाणो", "गोसालकानं" शब्दों में) ।

प्रभाव की दृष्टि से विचार किया जाय तो द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अन्य अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि के साथ-साथ दूसरी और तीसरी आकृतियां भरहुत की लिपि में भी उपलब्ध होती है ।

प्रभावक एवं प्रभावित, अनुकृत एवं अनुकारी, सम्प्रेरक एवं सम्प्रेरित, पुरोगामी एवं अनुगामी के अर्न्तवहन की दृष्टि से भरहुत के अभिलेखों की लिपि के विवेचनार्थ अशोक के अभिलेखों के अतिरिक्त; वे अभिलेख भी समीक्षा के विषय बनाये जा सकते हैं, जिनमें प्रयुक्त लिपि की पुरातनता संशय -विहीन हैं; जिनमें किसी शासक का सन्दर्भ नहीं मिलता, अतएव इन्हें किस कालावधि में रखा जाय यह निश्चित नहीं हो पाता; किन्तु इनमें अक्षरों का प्रारूप कुछ ऐसा बन पड़ा है कि यदि इन्हें मौर्यकालीन ब्राहमी का अन्तरंग सहचर न भी माना जाय, तो भी इन्हें मौर्यकालीन ब्राहमी का वरिष्ठ पुरश्चर मानने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है । इस कोटि के अभिलेखों और उनकी लिपि की टिप्पणी वक्ष्यमाण अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा सकता है:

सोहगौरा का ताम्रपत्र अभिलेख : प्रस्तुत अभिलेख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के बॉसगॉव, तहसील के सोहगौरा नामक गॉव से 1893 ईस्वी में प्राप्त हुआ था । जैसा कि राय का कथन है, इसकी उपलब्धि "एक सांयोगिक संवृत्ति थी।"[53] अभिलेख की प्राचीनता के कारण इसके प्राप्ति-स्थान की प्राचीनता का अनुमान लगाया गया, तथा परिणामतः पुरातत्व-शास्त्रियों ने कई बार इसे अपने उत्खनन-शोध का विषय भी बनाया, जिनमें गोरखपुर विश्वविद्यालय का अविस्मरणीय योगदान था । जिन विद्वानों ने आलोचित अभिलेखों के ऐतिहासिक महत्व एवं पुरालिपि-विषयक विशेषताओं की समीक्षा किया है, उनमें निम्नोक्त उल्लेखनीय हैं :

स्मिथ एवं होर्नले : Journal of Proceedings of Asiatic Society of Bengal; 1894

जार्ज बूलर : Indian Antiquary, 1896

फ्लीट : Journal of Royal Asiatic Society, 1907

बी0एम0 बरूआ : Annals of Bhandarkar Oriental Institute, XI

के0पी0 जायसवाल : Epigraphia Indica XXII

एस0एन0 चक्रवर्ती : Journal of Royal Asiatic Society of Bengal Letters, VII

डी0सी0 सरकार : Journal of Royal Asiatic Society of Bengal Letters XVIII

राजबली पाण्डेय : Indian Palaeography, Vol. I

अहमद हसन दानी : Indian Palaeography

एस0एन0 राय : भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

सी0एस0 उपासक : History And Palaeography of Mauryam Brahmi Script.

इस अभिलेख की तिथि के सन्दर्भ में मतैक्य नहीं है । जायसवाल ने इसे चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में रखा है । फ्लीट ने इसे 320-180 ईसा पूर्व के बीच कहीं रखना उचित समझा है । अक्षर-आकारों के आधार पर बूलर इसे मौर्यकालीन मानते हैं । सरकार के अनुसार इसे तृतीय शातब्दी ईसा पूर्व के पहले नहीं रखा जा सकता । दानी इसे प्रथम शताब्दी ईस्वी से सम्बन्धित करते हैं। बी0एम0 बरूआ इसे प्राङ् मौर्यकालीन मानते हैं । राजबली पाण्डेय एवं एस0एन0 राय का भी यही मत है । उपासक ने सरकार के मत्त को अधिमान्यता प्रदान किया है ।

प्रस्तुत अभिलेख के प्रतीकांकन एवं कुछ एक अक्षर आकारों का विवेचन पिछले अनुच्छेदों में किया जा चुका है । प्रकरण-परकता के महत्व को दृष्टि से उन्हें पुनर्विवेचन का विषय बनाना सम्भवतः अप्रासंगिक नहीं माना जायेगा । ऐसे प्रतीकांकन एवं अक्षर-चिन्ह निम्नोक्त हैं :

𐀀 : इसे मंगल चिन्ह मानते हुए, राय ने इसका समीकरण जौगढ़ की शिला पर अंकित चिन्ह के साथ किया है।[53] उपासक के अनुसार इसे "मंगल" शब्द के प्रथम अक्षर के द्योतनार्थ अंकित किया गया है।[54] जायसवाल की अवधारणा के अनुसार यह प्रतीक चिन्ह "मौर्य" के प्रजनक "मोरिय" शब्द का द्योतक है।[55]

𐀀 : राय के अनुसार इसका समीकरण आहत मुद्राओं पर मिलने वाले प्रतीक चिन्ह के साथ स्थापित किया जा सकता है, जिसे "क्रेसेन्ट अबव् हिल" अथवा " "अर्द्धचन्द्र–युक्त सुमेरू" की संज्ञा प्रदान की जाती है।[56] जायवाल की अवधारणा के अनुसार यह प्रतीक चिन्ह तीन चिन्हों, U ∩ m का समवाय है, जिसे चन्द्रगुप्त (अर्थात् चन्द्रगुप्त मौर्य) का द्योतक माना जा सकता है, अर्थात् इस अभिलेख में मौर्य वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य सन्दर्भित हुआ है । इस मत का प्राय: खण्डन करते हुए, राय ने सुझाव रखा है कि जायसवाल का मत रोचक अवश्य लगता है, किन्तु इसकी अधिमान्यता सन्दिग्ध है । अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इस प्रतीक चिन्ह से अभिलेख का प्रशासनिक महत्व अभिव्यक्त होता है।[57]

अक्षर आकारों में निम्नोक्त उल्लेखनीय हैं :

+ : अक्षर "क" पूर्ण धनाकृति में अंकित है, तथा मौर्यकालीन "क" की आकृति के समान है ।

Λ : अक्षर "ग" पूर्ण कोणाकृति में अंकित है, तथा मौर्यकालीन "ग" के आकार के नितान्त समान है ।

⅄ : अक्षर "त" के लिए उदग्र ऋजु रेखा के नीचे कोणाकार लगाया गया है, जो मौर्यकालीन "त" के आकार के नितान्त समान है ।

राय की अवधारणा के अनुसार उक्त तीनों आकृतियों के आलोक में प्रस्तुत अभिलेख को मौर्यकाल से सम्बन्धित किया जा सकता है।[58]

निम्नोक्त दो ऐसी अक्षर आकृतियां हैं, जिनमें पुरातनता का पुट इतना अधिक है, कि आलोचित अभिलेख को मौर्यकाल का समान्तर स्वीकार करने में कठिनाई प्रतीत होती है :

: "भ" का आकार वृषभ के आकार का द्योतक चित्रात्मक लिपि के अक्षर चिन्ह का द्योतक प्रतीत होने लगता है । उल्लेखनीय है कि "भ" वृषभाकार कहीं-कहीं किंचित भिन्नता के साथ , मौर्यकालीन अभिलेखों में भी निरूपित किया जा सकता है ।

: अक्षर "म" के प्रदर्शनार्थ अर्द्धवृत्त (ऊपरी भाग) और पूर्णवृत्त (निचला भाग) को परस्पर उदग्र रेखिका द्वारा संयुक्त किया है । लगभग समान आकृति कहीं-कहीं मौर्यकालीन अभिलेखों में भी निरूपित हुई है, जिसमें मध्यवर्ती उदग्र रेखिका को नहीं दिखाया गया है । बी एम. बरूआ के इस मत में किसी प्रकार की भी विसंगति नहीं दिखाई देती है कि यह आकार मौर्यकालीन "म" का उद्गम प्रकार ("पेरेन्ट टाइप") है ।

उक्त अक्षर आकारों के अतिरिक्त आलोचित अभिलेख में दो ऐसी अक्षर आकृतियां भी प्रदर्शित हुई हैं, जिनके अभिज्ञान के विषय में मतैक्य नहीं है। ये दोनों निम्नोक्त हैं :

: फ्लीट[59] एवं ब्रॅूलर[60] ने इसे "चु" पढ़ा है । बरूआ ने इसे "छ" का द्योतक माना है । ऐसी आकृति अथवा एतत् समान आकृति न तो मौर्यकालीन अभिलेखों में और न मौर्योत्तर अभिलेखों में निरूपित हुई है । अतएव इसकी सही पहचान सुकर नहीं है ।

: ब्रॅूलर ने इसे "व" पढ़ा है, जो मान्य नहीं लगता । अनुवर्ती अक्षर "स", "ग" और "म" से संयुक्त कर इन्होंने "वसगम" (संस्कृत "वंशग्राम") अर्थात् आधुनिक

बॉसगॉव का द्योतक माना है । किन्तु यह स्थान अभिलेख के प्राप्ति स्थान से काफी दूर है । ऐसी स्थिति में जायसवाल द्वारा प्रस्तावित पाठ "उ" अधिक उचित लगता है । विगत अनुच्छेदों में यह दिखाया जा चुका है कि "उ" के लिए ऐसा आकार कहीं–कहीं अशोक के अभिलेखों में भी मिलता है । इसके अतिरिक्त अभिलेख के वर्णन से भी इसका तालमेल बैठता है, जिसके अनुसार आत्यायिक काल के लिए राज्य की ओर सेअन्न–संचित दो कोष्ठागारों की व्यवस्था की गई थी । अतएव "उसगमे" अर्थात् "ऊष्मागमे" (दुर्भिक्षि के आने पर) पाठ वस्तुस्थिति का द्योतक लगता है ।

महास्थान का प्रस्तर फलक–अभिलेख : प्रस्तुत अभिलेख आधुनिक बॉग्लादेश के बोगरा जनपद में स्थित महास्थान नामक गॉव से प्राप्त हुआ था । इसे एक ऊँचे टीले के निकट स्थित एक सरोवर से निकाला गया था । भण्डाकर की सम्भावना के अनुसार सम्बन्धित टीला अपने मूल रूप में कोई स्तूप रहा होगा।[62] प्रस्तर खण्ड का ऊपरी भाग भग्न हो चुका है । अतएव यह कहना कठिन है कि इसके ऊपरी भाग का प्रारूप क्या था ? जिन विद्वानों ने इस अभिलेख की ऐतिहासिक अथवा पुरालिपि विषयक समीक्षा किया है, वे निम्नोक्त हैं :–

डी आर. भण्डारकर : Epigraphia Indica, Vol. XXI

बी एम बरूआ : Indian Historical Quarterly, 1934

डी.सी. सरकार : Select Inscriptions, VOl. 1

राजबली पाण्डेय : Indian Palaeography, Vol.1

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा : भारतीय प्राचीन लिपि माला

अहमद हसन दानी : Indian Palaeography

सी0एस0 उपासक : History and Palaeography of Maurgam Brāhmī Script

एस एन. राय : भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

सरकार ने अभिलेखांकित ब्राह्मी को लगभग तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व का माना है।[63] उपासक का भी यही निष्कर्ष है।[64] समान निष्कर्ष राय का है।[65] पाण्डेय[66] एवं बरूआ[67] ने इसे अशोक के पहले रखा है । दानी[68] ने इसे प्रथम शताब्दी ईस्वी में रखने का प्रयास किया है ।

जहाँ तक अक्षर–आकारों की निर्मापन–व्यवस्था का सम्बन्ध है, राय[69] के अनुसार, इनकी उदग्र रेखाओं की दीर्घता मौर्यकालीन प्रवृत्ति की ओर इंगित करती है। इस सुझाव के समर्थनार्थ राय ने निम्नोक्त अक्षरों को सन्दर्भित किया है :

⅄ : अक्षर "त" की मौर्यकालीन उदग्र रेखा की दीर्घता प्रवृत्ति के अनुरूप है, जब कि मौर्योत्तर काल में उदग्र रेखा अपेक्षाकृत लध्वाकार हो जाती थी, तथा निचला भाग वर्त्तुल हो जाता था, ; भरहुत की लिपि में अधिकांशतः यही आकार प्रयुक्त हुआ है ।

: अक्षर "प" की उदग्र रेखा दीर्घ है, निचला भाग वर्त्तुल है; जबकि मौर्योत्तर काल में उदग्र रेखा अपेक्षाकृत लध्वाकार हो गई है, तथा निचला चपटा हुआ है ; भरहुत की लिपि में प्रायः इसी आकार को प्रयोग में लाया गया है ।

: अक्षर "ह" की उदग्र रेखा दीर्घ है; मौर्योततर काल में इसे अपेक्षाकृत लघु बनाया गया है, तथा निचले भाग को चपटा आकार प्रदान किया गया है ; भरहुत की लिपि में प्रायः यही आकार प्रयोग में लाया गया है ।

: अक्षर "व" की उदग्र रेखा दीर्घ है; मौर्योत्तर काल में इसे अपेक्षाकृत लघु बनाया गया है, तथा निचले वृत्ताकार को कोणाकार प्रदान किया गया है, ; भरहुत की लिपि में प्रायः यही आकृति प्रयोग में लाई गई है ।

आलोचित अभिलेख की लिपि की विशिष्टता है, कि इसमें एक ऐसी आकृति प्राप्त होती है, जिसे "स" और "ष" दोनों ही पाठ प्रस्तावित किये गये हैं। इसका आकार निम्नोक्त प्रकार है :

कुछ एक विद्वानों ने इसे "षु" पढ़ा है, तथा कुछ एक ने इसे "सु" माना है । किन्तु "षु" इसे उसी स्थिति में जाना जा सकता था, जबकि "उ" के लिए रेखिका को निचले भाग में लगाया जाता, । ऐसी स्थिति में इसे "सु" ही माना जा सकता है, जिसे इस अभिलेख में नितान्त वर्त्तुल आकार प्रदान किया गया है । यह स्मरणीय कि "स" का यह नितान्त वर्त्तुल आकार अशोक के उपलब्ध अभिलेखों यदा-कदा प्रयुक्त हुआ है, तथा इसे भरहुत के अभिलेखों में यत्र-तत्र निरूपित किया जा सकता है ।

अशोक के जिन अभिलेखों में "स" का यह नितान्त वर्त्तुल आकार प्रयुक्त हुआ है वे निम्नोक्त हैं :-

कालसी का शिलालेख : आदेश-पत्र XI-29
सारनाथ का लघु स्तम्भ-अभिलेख : पंक्ति 5, 7, 8, 9

प्रस्तुत अभिलेख की समीक्षा करते हुए, राय[70] ने ऐसा भी रेखांकित किया है कि इसमें विराम और विराम चिन्ह की व्यवस्था भी अपनाई गई है । विराम के द्योतनार्थ दण्डाकार "।" को प्रयोग में लाया गया है । राय के बहुत पहले दानी ने ऐसा विमर्शित किया था कि अशोक के अभिलेखों विराम-विधान नियम के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सका था । किन्तु अपवाद के रूप में इसे प्रयोग में अवश्य लाया गया है।[71] यह स्मरणीय है कि अशोक के अभिलेखों में विराम के द्योतनार्थ, दण्डाकार लगाने के अलावे अन्य विधियाँ भी अपनाई गई है । इस सन्दर्भ में राय[72] ने उपासक के मत को सन्दर्भित करते हुए, निम्नोक्त विवरण प्रस्तुत किया है:

1. अशोक के कितने ही इस कोटि के अभिलेख उपलब्ध हुए है; जिनमें शब्द से शब्द की अथवा शब्द-समूह से शब्द-समूह की अथवा एक आदेश-लेख की दूसरे आदेश-लेख से पृथकता द्योतित करने के लिए अन्तरक रिक्तिता की व्यवस्था की गई है ।

2 अशोक के ऐसे भी अभिलेख मिले हैं, जिनमें व्यक्ति-वाचक नामों, पशुओं के नामों, समय-बोधक शब्दों तथा अन्य महत्वपूर्ण शब्दों के उपरान्त लघु अन्तरक की व्यवस्था की गई है ।

3 सम्राट अशोक के नाम के द्योतनार्थ शब्दों के अंकन में विराम व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया है । कतिपय अभिलेखों में देवानंपियस पियदसि जैसे शब्दों को एक ही वाक्यांश में व्यवस्थित कर, आगे की ओर रिक्तिका निदर्शित की गई है । ऐसे भी अभिलेख हैं जिनमें उक्त शब्दों को पृथक-पृथक अंकित कर इनमें लघु अन्तरक की व्यवस्था की गई है ।

4. कालसी के शिलालेख (आदेश पत्र II-2) में चोडा, पाडिया, केतलपुतो, सतियपुतो जैसे व्यक्ति वाचक नामों के अन्तराल में लघु रिक्तिता का निरूपण मिलता है ।

5. लौरिया-आरराज, लोरिया-नन्दनगढ़ एवं रम्पुरवा के स्तम्भ-अभिलेखों (आदेश-पत्र V) पक्षियों, पशुओं तथा दिनों के नामार्थ शब्दों के अन्तराल में भी लघु रिक्तिता की व्यवस्था मिलती है ।

6. भाब्रू के प्रस्तर अभिलेख में बौद्ध विषयावतरणों को रिक्तिता निर्देशित कर परस्पर पृथक उट्टंकित किया गया है ।

7. ऐसे वाक्यांशों के अन्त में भी रिक्तिता की व्यवस्था मिलती है, जिनके अन्त में "ति" (अर्थात इति) का अंकन मिलता है ।

8 गिरिनार एवं एरागुडी के शिलालेखों में एक आदेश पत्र के अन्त एवं अनुवर्ती आदेश पत्र के पूर्व में एक की दूसरे से पृथक्कता दिखाने के लिए रिक्तिता की व्यवस्था की गई है ।

9 अशोक के कुछ ऐसे भी अभिलेख है, जिनमें आदेश पत्र के प्रारम्भ को क्षैतिज रेखिका, –, के द्वारा निर्देशित किया गयाहै । उपासक[73] ने ऐसी व्यवस्था को धौली एवं जौगढ़ के शिलालेखों में निरूपित किया है । पर इसके विशद विश्लेषण की आवश्यकता प्रतीत होती है । वस्तुतः इसे मांगलिक चिन्ह मानने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है । इस सन्दर्भ में द्वितीय शताब्दी ईस्वी के मघ शासक भद्रमघ के वर्ष 83 (+78 = 161 ईस्वी) के तीन अभिलेखों को सन्दर्भित किये जा सकते हैं, जो निम्नोक्त हैं :

1 जी.आर शर्मा म्युजियम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सुरक्षित भद्रमघ का वर्ष 83 का अभिलेख;[74] इसमें अभिलेख का प्रारम्भ एक क्षैतिज रेखिका के साथ होता है ।

2 इलाहाबाद म्युजियम में सुरक्षित भद्रमघ का वर्ष 83 का अभिलेख (अभिलेख सं0 ए[75]) : इसमें भी अभिलेख का प्रारम्भ एक क्षैतिज रेखिका के साथ होता है ।

3. इलाहाबाद म्युजियम में सुरक्षित भद्रमघ का वर्ष 83 का अभिलेख (अभिलेख सं0 बी)[76]। प्रस्तुत अभिलेख, अभिलेख सं0 ए की पूर्णतया अनुलिपि है । इसमें अभिलेख का प्रारम्भ क्षैतिज रेखिका से न कर "सिद्धम" शब्द से कियां गया है । ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि धार्मिक अभिलेखों में जहां कहीं क्षैतिज रेखिका प्रयुक्त हुई है, वह मांगलिक चिन्ह के रूप में ग्रहण की जा सकती है ।

मात्रा लगाने की शैली हू–बहू वही है, जो अशोक के अभिलेखों में अपनाई गई है, इसके निम्नोक्त निदर्शन प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

: "या" (सवगियानं शब्द में)
: "हि" (निवहिपयिसति शब्द में)
: "पु" (पुडनगलते शब्द में)
: "ते" (पुडनगलते शब्द में)
: "को" (कोठागाले शब्द में)

ऐसी जिज्ञासा की जा सकती है कि वह विशेष आधार कौन सा है, जिसके आलोक में इस अभिलेख को मौर्यकालीन अथवा प्राङ्मौर्यकालीन माना जाय; क्यों नहीं मौर्योत्तर काल का माना जाय जैसा कि दानी ने माना है । इस सन्दर्भ में राय[77] ने निम्नोक्त तथ्यों पर बल दिया है :

1. अभिलेख में आर्ष प्राकृत भाषा का व्यवहार हुआ है, तथा इसकी शब्द योजना सोहगौरा के अभिलेख की नितान्त समस्तरीय है, जिसके लिए राय ने तीन शब्दों को प्रसंगित किया है, ये हैं; कोठागाले, पुडनगलते, सुअतियायिक। सोहगौरा के अभिलेख में इन तीनों शब्दों का क्रमशः कोठगलनि, सिलिमते तथा अतियायिकय रूपान्तरण प्राप्त होता है ।

2. भण्डारकर[78] के मत का औचित्य साक्ष्यसंगत हो जाता है कि सोहगौरा के अभिलेख की भाँति इस अभिलेख में भी यह प्रसंगित है, कि राज्य की ओर से दुर्भिक्षकालीन विभीषिका से सुरक्षा के लिए कोष्ठागार में अन्न–संचय किया जाय । ऐसी व्यवस्था का प्रसंग कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्राप्त होता है, जिसके आलोक में प्रस्तुत अभिलेख की प्राचीनता का आकलन किया जा सकता है ।

पिपरहवा का बौद्ध भाण्ड–अभिलेख : प्रस्तुत अभिलेख उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में स्थित पिपरहा नामक स्थान से 1897 ई0 में प्राप्त हुआ था । अभिलेख में प्रसंगित है कि अभिलेखांकित भाण्ड में कपिलवस्तु के शाक्यों ने बुद्ध के शरीरावशेषों को सुरक्षित किया था । यही वर्णन दीघनिकाय के महापरिनिब्बान-सुत्त में प्राप्त होता है, जिससे अभिलेख की प्राचीनता आकलित की जा सकती है । निम्नोक्त विद्वानों ने अपेक्षित टिप्पणियों के साथ इस अभिलेख की सामान्य अथवा विशेष समीक्षा की है:

बूलर : Journal of Royal Asiatic Society, 1808

फ्लीट :Journal of Royal Asiatic Society, 1906

ए बार्थ : Indian Antiquary, 1907

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा : भारतीय प्राचीन लिपिमाला

सी.एस. उपासक : History and Palaeography of Mauryan Brahmi Script

राजबली पाण्डेय : Indian Palaeography, Vol.1

डी सी सरकार : Select Inscriptions, Vol. 1

एस एन राय : भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

जहाँ तक अभिलेख की तिथि का प्रश्न है, उक्त सभी विद्वानों ने इस अभिलेख की प्राचीनता को स्वीकार करते हुए, इसे चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व अथवा तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व का मानते है, केवल दानी[79] ने इसे मौर्योत्तर काल का माना है, तथा इसकी लिपि को द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के प्रथम चरण में रखने का प्रयास किया है । बार्थ, बूलर, ओझा के मत की अधिमान्यता को स्वीकार करते हुए राय ने अभिलेख की तिथि के सन्दर्भ में यह मध्यमार्गी सुझाव रखा है कि इसे चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व एवं तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के बीच कहीं रखा जा सकता है।[80]

आलोचित अभिलेख प्रायः सभी अक्षर आकार मौर्यकालीन ब्राह्मी के अक्षर-आकारों के समस्तरीय हैं, जैसे "ग" , "द" , "ध" , "न" , "प" "भ" , "य" , "ल" , "व" , "स" । किन्तु "क" के आकार में उदग्र रेखा अपेक्षाकृत दीर्घ है, , जब कि इसे अशोक के अभिलेखों में इसे पूर्ण धनाकृति द्वारा निदर्शित किया गया है, इसी प्रकार "त" के प्रदर्शनार्थ तिर्यक रेखा बनाकर उसके मध्य बिन्दु से दाहिनी ओर कोण बनाती हुई रेखा को प्रयोग में लाया गया है , जबकि अशोक के अभिलेखों में ऋजु उदग्र रेखा के नीचे कोणाकृति निदर्शित की गई है । दानी ने इन दोनों को "क्रूड फार्म" (अपरिष्कृत आकृति) की संज्ञा दी है, तथा ऐसा भी कहा है कि इस अभिलेख में लिपिकर के हस्त-कौशल की वह छवि नहीं मिलती जो अशोक के अभिलेखों में निदर्शित हुई है।[81] इस सुझाव की अग्राह्यता पर बल देते हुए, राय ने स्थापना किया है कि वस्तुतः इन आकरों का भी निदर्शन अशोक के अभिलेखों में निरूपित किया जा सकता है।[82]

मात्रा-शैली के निदर्शनार्थ "कि" , "ति" , "बु" , "ते" को प्रसंगित किया जा सकता है, जो मौर्यकालीन ब्राहमी की मात्रा-शैली के नितान्त अनुरूप हैं ।

इसके अतिरिक्त, आर्ष प्राकृत भाषा का प्रयोग, संयुक्ताक्षरों का अभाव, "आ", "ई" तथा "ऊ" जैसी दीर्घ मात्राओं के प्रयोग का अभाव भी आलोचित अभिलेख की पुरातनता को ही इंगित करता है ।

भट्टिप्रोलु का भाण्ड-अभिलेख : प्रस्तुत अभिलेख आंध्र प्रदेश के कृष्णा जनपद में स्थित भट्टिप्रोलु के स्तूप से प्राप्त हुआ था । इसे "अभिलेख" न कहकर "अभिलेखों" की संज्ञा प्रदान किया जाय तो अधिक उचित होगा । क्योंकि गिनने पर इनकी संख्या दस ठहरती है, जिनमें नौ अभिलेखों को भाण्ड पर तथा दसवें को स्फटिक पर अंकित किया गया है । इसमें किसी कुबेरक अथवा कुबेरिक अथवा कुभेरक नामक

शासक (?) को प्रसंगित किया गया है, जिसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है । जिन विद्वानों ने अभिलेख को अपनी समीक्षा का विषय बनाया है, उनमें कतिपय निम्नोक्त हैं :

बूलर : Epigraphia Indica, Vol. II

ए.री : South Indian Buddhist Antiquities, Journal of Royal Asiatic Society, 1908

सी शिवराममूर्ति : Indian Epigraphy and South Indian Scripts (Bulletin of Madras Govt. Museum, Vol. III, No. 4)

अहमद हसन दानी : Indian Palaeography

राजबली पाण्डेय : Indian Palaeography, Vol. I

डी.सी सरकार : Select Inscriptions, Vol. 1

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा : भारतीय प्राचीन लिपि माला

एस एन राय : भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

भट्टिप्रोलु की लिपि की पुरातनता को मानने वाले विद्वानों में बूलर को विशेषतया प्रसंगित किया जा सकता है । इनकी समीक्षा के अनुसार इस अभिलेख के अक्षर–आकारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में दक्षिण भारतीय ब्राह्मी की अनेक सुस्पष्ट शाखाएं विद्यमान थीं । भट्टिप्रोलु के अभिलेखों की लिपि आपाततः मौर्यकालीन ब्राहमी के समान होते हुए भी, अभिव्यक्ततः कई दृष्टियों से भिन्न भी है । इससे यह सम्भावना सबल बन बैठती है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण के कई शताब्दी पूर्व भारत में लेखन–कला प्रचलित थी । बूलर ने बिना किसी संकोच के यह स्थापित करने का प्रयास कियाहै कि इन अभिलेखों की लिपि को किसी भी माने में 200 ईसा पूर्व के बाद का नहीं माना जा सकता है; तथा यह भी सम्भावित है कि इसे अपेक्षाकृत अधिक पुराने स्तर से सम्बन्धित किया जा सके।[83]

प्रस्तुत प्रकरण में बूलर ने एक अन्य याथातथ्य -परक सुझाव प्रस्तुत किया है, कि भट्टिप्रोलु की लिपि में उन अक्षर-आकरों के निदर्शन निरूपित किये जा सकते हैं, जिनका व्यवहार लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से सम्बन्धित भरहुत, नानाघाट एवं हाथीगुम्फा के अभिलेखों में मिलते हैं । बूलर इस वैदुष्य-सम्मित सुझाव में केवल इतना आंशिक संशोधन किया जा सकता है कि भट्टिप्रोलु की लिपि में उक्त अभिलेखों की लिपि की पुरोगामिता के तत्व सन्निहित हैं ।

जहाँ तक अक्षर-आकरों को सम्बन्ध है, राय[84] ने इन्हें निम्नांकिरा दो वर्गों में रखा है :

<u>प्रथम वर्ग</u> : भाण्ड पर अंकित अक्षर-आकार

"अ" :

"आ" :

"उ" :

"ओ" :

"क" :

"ख" :

"ग" :

"च" :

"छ" :

"ण" :

"त" :

"द" :

"ध" :

"न" :

"प" :

"भ" :

"म" :

"य" :

"र" :

"ल" :

"ष" :

"स" :

"ह" :

उक्त अक्षर–आकरों के आधार पर राय[85] ने निम्नोक्त टिप्पणियाँ प्रस्तुत किया है :

1 कुछ एक अक्षर जिनके एक से अधिक आकारों को निदर्शित किया गया है, इस बात के संकेतक बन सकते हैं कि भट्टिप्रोलु की लिपि ब्राह्मी के उस पुराने स्तर को द्योतित करती है, जबकि इसमें अभी एक–रूपता का पद–विन्यास नहीं हुआ था ।

2. कुछ एक अक्षर–आकार जैसे "आ", "त" (उक्त तालिका में तीसरे क्रम पर निदर्शित), "भ" (किन्तु उलटे आकार में), "म" (किन्तु उलटे आकार में), "स" (उक्त तालिका में पहले क्रम पर अंकित) तथा "र" गिरिनार की आकृतियों के नितान्त समान है ।

3. "ध" की आकृति, जिसमें उदग्र रेखिका को अर्द्धवृत्त के दाहिने ओर रखा गया है, धौली और जौगढ़ के अभिलेखों में उपलब्ध आकृति के नितान्त समान है ।

<u>दूसरा वर्ग</u> : स्फटिक पर अंकित अक्षर–आकार

"अ" :

"क" : +

"ग" : ^

"ण" : I

"प" :

"म" :

"य" :

"र" : |

"ल" :

"व" :

"श" :

"स" :

प्रभाव एवं पुरोगामिता की दृष्टि से उक्त तालिका में निदर्शित तीन अक्षर–आकार महत्वपूर्ण हैं । ये तीनों हैं, "म" (उक्त तालिका में दूसरे क्रम पर निर्देशित), "व" एवं "श" – जिनका निरूपण भरहुत की लिपि में अनेकशः प्राप्त होता है ।

<u>मात्रा–विधान एवं मात्रा–शैली</u> : इस सन्दर्भ में राय ने निम्नोक्त तालिका प्रस्तुत किया है :

"या" :

"हि" :

"दे" :

"गो" :

"नो" :

"टो" :

उक्त तालिका में निदर्शित मात्रा—युक्त अक्षर–आकारों से यह अभिव्यक्त हो जाता है कि इनका समानीकरण मौर्यकालीन ब्राह्मी के साथ करने में किसी प्रकार की भी विसंगति नहीं है; तथापि पुरोगामिता की दृष्टि से "ग" में ओ की मात्रा लगाने की शैली को महत्वपूर्ण माना जा सकता है । सामान्यतया इसे ऊपर और नीचे लगाया जाता था जैसा कि मौर्यकालीन ब्राह्मी में इसे प्रायः निदर्शित किया गया है ⋀˺ । किन्तु आलोचित आकृति में इसे एक सीधी रेखा में लगाया गया है, जिसके प्रयोग की प्रवृत्ति भरहुत की लिपि में अनेकधा दृष्टिगोचर होती है ।

इस सन्दर्भ में राय[86] ने भट्टिप्रोलु की लिपि में उपलब्ध उन आकृतियों को भी प्रसंगित किया है, जिनमें आर्षत्व की प्रवृत्ति अत्यधिक है, जो मौर्यकालीन अथवा उत्तरवर्ती अभिलेखों में नहीं मिलते, तथा इस प्रकार ये आकार भट्टिप्रोलु के अभिलेखों को प्राङ्मौर्यकालीन सिद्ध करने सहायक बन सकते हैं । ऐसे अक्षर–आकार निम्नोक्त हैं :

1 : इसे "घ" पढ़ा गया है ।

2 : इसे "ज" पढ़ा गया है ।

3 : इसे "ल" पढ़ा गया हे, जिसे इन अभिलेखों के "पिगलकों", "ओडलो", "गिलाणो" जैसे शब्दों में निरूपित किया जा सकता है ।

4 : इसे "ष" पढ़ा गया है ।

5. : इसे "ळ" पढ़ा गया है । इसका रूपान्तर आकार दक्षिण भारतीय अभिलेखों में सीमित था, यद्यपि कभी–कभी विशेष राजनीतिक सम्पर्कों के कारण यह आकार उत्तर भारतीय अभिलेखों में भी आयातित हुआ था ।

बड़ली प्रस्तर–खण्ड अभिलेख : राजस्थान के अजमेर जिले में स्थित बड़ली गांव से प्रस्तुत अभिलेख 1911 ईस्वी में स्वर्गीय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा को प्राप्त हुआ था । ओझा ने ऐसा अनुमान लगाया है कि यह अभिलेखांकित प्रस्तर–खण्ड अपने मूल रूप में किसी स्तम्भ का भाग था । यद्यपि इसके कुछ एक अक्षर भग्न हो चुके हैं, तथापि समान्यतया यह सन्तोषजनक रूप में सुरक्षित है । जिन विद्वानों ने इस अभिलेख को अपनी समीक्षा का विषय बनाया है, उनमें निम्नोक्त उल्लेखनीय हैं :

के.पी जायसवाल : Journal of Bihar Orissa Research Society, Vol. XVI

डी सी सरकार : Journal of Bihar Research Society, Vol. XXXVII, Parts 1-2; Vol.XL,Part1

अहमद हसन दानी : Indian Palaeography

राजबली पाण्डेय : Indian Palaeography, Vol. 1

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा : भारतीय प्राचीन लिपि माला

सी एस. उपासक : History And Palaeography of Mauryan Brāhmī Script

एस एन राय : भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख

आलोचित अभिलेख में सबसे उलझा हुआ पाठ उस विशेष आकार है, जो निम्नोक्त रूप में अंकित हुआ है :

अभिलेख के प्रथम अन्वेषक ओझा ने इसे "वी" पढ़ा है, तथा ऐसी स्थापना किया है कि अशोक के पहले दीर्घ "ई" का यही मात्रा–विधान था, जो बाद में मिटकर जैसे आकार के द्वारा प्रदर्शित हुआ।[87] सरकार की अवधारणा के अनुसार यह आकार "द्ध" पढ़ा जा सकता है, जो (मांगलिक शब्द) "सिद्ध" का संक्षिप्तीकरण है।[88] सरकार ने यह भी प्रस्तावित किया है कि अभिलेख में सन्दर्भित "राय भगवते" किसी

भागवत नामक राजा का द्योतक है । किन्तु यह सुझाव इसलिए संदिग्ध है कि ऐसे किसी राजा के अस्तित्व के विषय में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं मिलता । जायसवाल ने इसे "वी" पढ़ा है, तथा ऐसा सुझाव दिया है कि अनुवर्ती अक्षरों के संयोग से बने हुए "वीराय भगवते" से जैन धर्म के संस्थापक महावीर भगवान् का संकेत है । इनकी अवधारणा के अनुसार यहाँ किसी काल्पनिक सम्वत् का प्रसंग है, जिसका प्रारम्भ 374 अथवा 373 ईसा पूर्व में हुआ था।[89] उपासक ने सुझाव रखा है कि सम्बन्धित अक्षर "व" का ही द्योतक है, तथा लिपिकर ने यहाँ ह्रस्व 'इ' की मात्रा गलत ढंग से लगा दिया है।[90] राय के अनुसार आलोचित आकार को मांगलिक चिन्ह माना जा सकता है, जो अपने मूल रूप में निम्नोक्त प्रकार का रहा होगा ; जिससे मिलता-जुलता आकार सोहगौरा के ताम्रपत्र पर प्राप्त होता है; जिसका प्रसंग दिया जा चुका है।[91] इस सन्दर्भ में राय ने निम्नोक्त अक्षर तालिका रेखांकित किया है :

बड़ली का अभिलेख	अशोक के अभिलेख	द्वितीय शताब्दी ई0पू0	प्रथम शताब्दी ई0पू0
"क"			
"ग"			
"त"			
"स"			
"म"			
"व"			
"भ"			

उक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि बड़ली के अभिलेख की अक्षर आकृतियाँ अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त अक्षर-आकृतियों के अधिक सन्निकर्ष में हैं; जबकि द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व तथा अनुवर्ती स्तरों पर ये परिवर्द्धित हो चुकी है; अतएव ऐसी स्थिति में आलोचित अभिलेख की ब्राह्मी को सरकार,[92] उपासक[93] तथा दानी[94]

के द्वारा प्रस्तावित तिथि द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व, प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व अथवा प्रथम शताब्दी ईस्वी को प्रमाण–सम्मित नहीं माना जा सकता है ।

उक्त अनेक तथ्यों, निदर्शनों तथा वैदुष्य–परक सुझावों के आधार पर निम्नांकित बिन्दु स्पष्ट हो जाते हैं :

1. भरहुत के अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि को नामकरण की सुविधा के लिए, तथा समीक्षा- विषयक वसतुनिष्ठता की दृष्टि से "भरहुत–लिपि" संज्ञा प्रदान करने में कोई असंगति नहीं दिखाई देती है ।

2 इसकी शिल्प–विधि के विन्यास को ऐकान्तिक प्रक्रिया अथवा अतीतकालीन आकारों से असम्पृक्त मानने में संकोच होता है ।

3 इसकी पुरोगामिता उस लिपि में प्रतिष्ठित थी, जिसे सामान्यता मौर्यकालीन ब्राह्मी अथवा अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त ब्राह्मी का अभिधान दिया जाता है। जैसा कि पिछले अनुच्छेदों में यह दिखाया जा चुका है, अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि के द्वारा न केवल इसे गति–निर्देश मिला, अपितु सर्वांशतः अथवा अल्पांशतः कभी तो अपसामान्य अक्षर–आकारों को, तथा कभी मानक आकारों को उसी रूप में, अथवा कुछ हेर–फेर के साथ अपना भी लिया गया ।

4. भरहुत - लिपि की तद्रूपता मौर्यकालीन अक्षर–आकारों से कभी–कभी इतनी अधिक दिखाई देती है, कि इसे अवान्तरकालीन मानना भी अनैतिहासिक प्रयास-सा प्रतीत होने लगता है ।

5. कभी–कभी तो वे अक्षर–आकार जिनका प्रयोग तथाकथित प्राङ्.मौर्यकालीन अभिलेखों में हुए हैं, जिनका अन्तरण मौर्यकालीन ब्राह्मी में सिद्ध हो चुका है, भरहुत की लिपि की पुरोगामिता के स्तर रखे जाने के योग्य प्रतीत होते है।

संक्षेप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मौर्यकालीन ब्राह्मी में भरहुत की लिपि की पुरा–प्रतिष्ठा केन्द्रित है ।

सन्दर्भ निर्देश

1. कनिंघम, स्तूप आफ़ भरहुत, पृ0 127

2. बूलर, इंडियन पैलियोग्रैफी, पृ0 58
   डी.सी सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस, भाग 1, पृ0 87
   एस0एन0 राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, पृ0 176–177

3 बूलर, तत्रैव, पृ0 53–54

4. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 19, पृ0 19

5 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, भारतीय प्राचीन लिपि-माला, फलक 2

6 बूलर, तत्रैव, पृ0 53, एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 2, पृ0 448

6अ सी एस. उपासक, हिस्ट्री ऐंड पैलियोग्रैफी आफ़ मौर्यन ब्राह्मी स्क्रिप्ट, पृ0 65

7 ए0 बार्थ, इंडियन ऐन्टीक्वेरी, भाग 26, पृ0 117

8 बूलर, एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 2, पृ0 328

9 उपासक, तत्रैव, पृ0 89

10 ओझा, तत्रैव, पृ0 2–3

11 इंडियन ऐंटीक्वेरी, भाग 35, पृ0 282

12 उपासक, तत्रैव पृ0 55

12अ उपासक, तत्रैव, पृ0 48–49

12ब एनाल्स आफ भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीच्युट, भाग 11, पृ0 32
   इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 10, पृ0 54

13. राजबली पाण्डेय, इंडियन पैलियोग्रैफी, भाग 1, पृ0 54

14 एपिग्रैफिआ इण्डिका, भाग 22, पृ0 3

15 इंडियन ऐंटीक्वेरी, भाग 25, पृ0 266

16. सरकार, तत्रैव, पृ0 58, टिप्पणी सं0 1

17 उपासक, तत्रैव, पृ0 181

18 दानी, तत्रैव, पृ0 56

19 एस एन राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, पृ0 141

20 उपासक, तत्रैव, पृ0 179

21. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 22, पृ0 32-33

22 एनाल्स आफ भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीच्यूट, भाग 11, पृ0 32

23 जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1907, पृ0 510

24 इंडियन ऐन्टीक्वेरी, 1896, पृ0 26

25 एनाल्स आफ भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीच्यूट, भाग 11, पृ0 32

26 एस एन राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, पृ0 141

27 उपासक, तत्रैव, पृ0 63

28 एस परनवितान्, इंसक्रिप्शंस आफ सीलोन भाग 1, फलक सं0 II, VII, XII, पृ0 XVI के सामने

29 उपासक, तत्रैव, पृ0 58

30. कनिंघम, इंसक्रिप्शंस आफ अशोक, पृ0 54

31 बूलर, आन दि ओरिजिन आफ ब्राह्म अल्फाबेट, पृ0 26

31अ एस एन राय, तत्रैव, पृ0 36-37

32 उपासक तत्रैव, पृ0 61

33. राय, तत्रैव, पृ0 98

34. उपासक, तत्रैव, पृ0 41

35 उपासक, तत्रैव, पृ0 48

36. उपासक, तत्रैव, पृ0 49

37 उपासक, तत्रैव, पृ0 52

38 राय, तत्रैव, पृ0 99

39 राय, तत्रैव, पृ0 100

40 राय, तत्रैव, पृ0 103

41. उपासक, तत्रैव, पृ0 92

42. राय, तत्रैव, पृ0 105

43. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 2, पृ0 323

44. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 21, पृ0 85

45. राय, तत्रैव, पृ0 48–50

46. राजबली पाण्डेय, इंडियन पैलियोग्रैफी, भाग 1, पृ0 18

47. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 2, पृ0 327–28

48. ओझा, तत्रैव, पृ0 2

49. राजबली पाण्डेय, तत्रैव, पृ0 18

49.अ राय, तत्रैव, पृ0 49–50

50. उपासक, तत्रैव, पृ0 102

51. राय, तत्रैव, पृ0 63

52. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 2, पृ0 323–328

53. राय, तत्रैव, पृ0 140

53अ. राय, तत्रैव, पृ0 140

54. उपासक, तत्रैव, पृ0 179

55. एपिग्रैफिआ इंडिका, भागXXII,पृ0 32–33

56. राय, तत्रैव, पृ0 140

57. राय, तत्रैव, पृ0 140

58. राय, तत्रैव, पृ0 141

59. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1907, पृ0 510

60. इंडियन ऐन्टीक्वेरी, 1896, पृ0 201

61. एनाल्स आफ भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीच्यूट, भाग 11, पृ0 32

62. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 21, पृ0 683

63. सरकार, तत्रैव, पृ0 80

64. उपासक, तत्रैव, पृ0 182

65 राय, तत्रैव, पृ0 143

66 राजबली पाण्डेय, तत्रैव, पृ0 54

67 एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 21, पृ0 89

68 दानी, तत्रैव, पृ0 56

69 राय, तत्रैव, पृ0 142

70. राय, तत्रैव, पृ0 142

71 दानी, तत्रैव, पृ0 47

72 राय, तत्रैव, पृ0 42

73 उपासक, तत्रैव, पृ0 127

74 जे एस नेगी, सम इंडोलाजिकल स्टडीज, भाग 1, पृ0 64-65

75 झा कमेमोरेशन वाल्युम, 1937, पृ0 101

76. तत्रैव

77 राय, तत्रैव, पृ0 142-143

78. एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग XXI, पृ0 85

79. दानी, तत्रैव, पृ0 56

80 राय, तत्रैव, पृ0 145

81 दानी, तत्रैव, पृ0 56

82 राय, तत्रैव, पृ0 144

83 एपिग्रैफिआ इंडिका, भाग 2, पृ0 385

84 राय, तत्रैव, पृ0 146-147

85. राय, तत्रैव, पृ0 146

86. राय, तत्रैव, पृ0 148

87 ओझा, तत्रैव, पृ0 2-3

88 सरकार, तत्रैव, पृ0 90, टिप्पणी सं0 2

89 जर्नल आफ बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग 16, पृ0 67-68

90. उपासक, तत्रैव, पृ0 186

91 राय, तत्रैव, पृ0 143

92. सरकार, तत्रैव, पृ0 90

93 उपासक, तत्रैव, पृ0 186–187

94. दानी, तत्रैव, पृ0 62–63

*****

अक्षर – आकारों

की

निदर्शिका

						फलक 3	सोहगौरा	के ताम्रपत्र	अभिलेख	के प्रतीक	चिन्ह एवं	अक्षर –	आकार		
प्रतीक	चिह्न	Ȣ	Ѫ	क	+	ग	Λ	त	⅄	भ	╓	म	Ȣ	चु?	द्द?
द	उ	L													
						फलक 4	महास्थान	प्रस्तर	अभिलेख	के अक्षर–	आकार				
त	⅄	प	ᒐ	ह	ᒐ	व	ዐ	सु	ᒐ	या	ᒐ	हि	ᒐ	पु	ᒐ
ते	⅄	को	‡												
						फलक 5	पिपरहवा	बौद्ध	भाण्ड	अभिलेख	के अक्षर–	आकार			
क	+		ट	⅄											
ग	Λ	द	ᑲ	ध	D	न	⊥	प	ᒐ	भ	Π	य	⫛	ω	
ल	ᒍ	व	ᑕ	स	ᒐ										
कि	╪	नि	⊥	बु	╤	ते	⅄								

						फलक 6	भट्टिप्रोलु	भाण्ड	अभिलेख	के अक्षर–आकार					
प्रथम	वर्ग :	भाण्ड पर	अंकित	अक्षर –	आकार										
अ		आ		उ		ओ		क		ख		ग			
च					ण		त					द		ध	
न		प		भ		म		य		र		ल		ष	
स			ह												
द्वितीय	वर्ग :	स्फटिक	पर	अंकित	अक्षर–	आकार									
अ		क		ग		ण		प		म			य		
र		ल		व		श		स							
मात्रा –	विधान	एवं मात्रा–	शैली												
या		हि		दे		गो		नो		टो					
आर्ष	एवं	अपसामान्य	अक्षर –	आकार											
घ		ज		ल		ष									
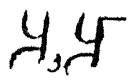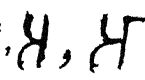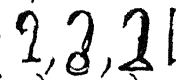
अध्याय - 5
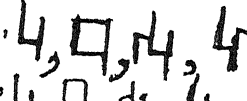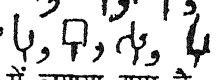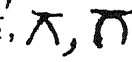
भरहुत लिपि : अक्षरांकनों की समीक्षा

विगत अध्याय में यह प्रसंगित किया जा चुका है कि भरहुत-लिपि के अक्षर-आकारों की पुरोगामिता एवं पृष्ठभूमि अधिकांशतः मौर्यकालीन एवं अंशतः प्राङ्.मौर्यकालीन ब्राह्मी में प्रतिष्ठित है । प्रस्तुत अध्याय के विवेच्य विषय के सन्दर्भ में अहमद हसन दानी की कुछ-एक महत्वपूर्ण टिप्पणियों का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा । दानी ने भरहुत के अभिलेखों को दो वर्गों में रखा है, जिन्हें इन्होंने भरहुत प्रथम एवं भरहुत द्वितीय की संज्ञा प्रदान किया है । भरहुत प्रथम से सम्बन्धित वे अभिलेख हैं, जो वेदिकाओं पर अंकित है; तथा भरहुत द्वितीय से सम्बन्धित वह विशेष अभिलेख है, जो भरहुत स्तूप के तोरण पर अंकित है, एवं शुंगों को सन्दर्भित करता है । बोधगया, हाथीगुम्फा, पभोसा एवं अयोध्या के अभिलेखों की लिपि से भरहुत-लिपि को समीकृत करते हुए दानी महोदय ऐसा सुझाव भी रखते हैं कि इनमें समंतर तत्व प्राप्त होते हैं, तथा जो कुछ भिन्नताएं थोड़ी बहुत मिलती हैं, वे या तो भिन्न-भिन्न लिपिकरों द्वारा अंकित किए जाने के कारण है अथवा लेखन-विषयक नयी तकनीक की जानकारी की भिन्नता के कारण हैं । इन सभी अभिलेखों में प्रायः "अ" और "आ" के वाम-वर्ती घुमावदार रेखाएं सामान्यतया उदग्र रेखा के मध्य स्थिरता देकर मिलती हैं, किन्तु अपवादतः भरहुत प्रथम, पभोसा एवं अयोध्या के अभिलेखों में एक बिन्दु पर मिलती हैं, । इन सब में "क" की उदग्र रेखा लम्बी बनाई गई है, । "ख" की उदग्र रेखा के नीचे बिन्दु, वृत्त अथवा त्रिभुज बनाया गया है, "ग" की आकृति वर्त्तुल है, ; केवल अपवादतः भरहुत प्रथम एवं बोधगया के अभिलेखों में इसे कोणाकार बनाया गया है, । "घ" के विषय में प्रस्तावित है कि यह अक्षर पूर्णतया कोणाकार बनाया गया है, । अक्षर "च" का निचला भाग जो पहले अर्द्धवृत्त बनता था, चौकोर बनाया गया है, । "छ" का अंकन उदग्र रेखा के निचले भाग में दो अर्द्धवृत्तों के द्वारा किया गया है , यद्यपि भरहुत प्रथम में अपवादतः अर्द्धवृत्तों के स्थान पर अंडाकार बनाया गया है । "ज" के अंकन में अधिकांशतः त्रिहस्त आकार को प्रयोग में लाया गया है, , यद्यपि भरहुत प्रथम में वर्त्तुल आकृति, प्रयुक्त हुई है । "ड" को ऊपरी उदग्र रेखा को लघ्वाकार बनाया गया है, जब

कि इसकी निचली उदग्र रेखा को दीर्घाकार दिया गया है, । "ण" के निर्मापन में इसकी आधारभूत रेखा को झुकावदार रूप दिया गया है, । "त" का आकार बहुधा वर्त्तुल मिलता है , यद्यपि भरहुत प्रथम और बोधगया के अभिलेखों में कोणाकार का भी प्रयोग हुआ है, । "द" का आकार अधिकांशतः वर्त्तुल है, तथा बाईं ओर ही खुला है , किन्तु यदा-कदा कोणाकार का भी प्रयोग हुआ है, । "ध" की आकृति रोमन अक्षर "D" (किन्तु विपरीत आकार में) से मिलती जुलती है, "" । अक्षर "प", "स" एवं "ह" के निचले वर्त्तुलाकार को कोणाकार निदर्शित किया गयाहै, , , । "ल" के एक विशिष्ट वर्त्तुल आकार को निदर्शित किया गया है , जबकि हाथीगुंफा, पभोसा एवं अयोध्या के अभिलेखों में नवीन कोणाकार निदर्शित हुआ है, , जिसके समन्तर निदर्शन केवल मथुरा के शक-क्षत्रप अभिलेखों में उपलब्ध होते हैं । "भ" के निदर्शन में ऋजु उदग्र रेखा को प्रयोग में लाया गया है, जिसके अतिरिक्त कँटियादार आकार थोड़ा सा चौड़ा बनाया गया है, । "म" के निचले हिस्से को विषम आकार वाले त्रिभुज का रूप दिया गया है, ; किन्तु भरहुत प्रथम एवं बोधगया के अभिलेखों में वृत्ताकार को ही अपनाया गया है, । "य" के निदर्शनार्थ निचले भाग में अर्द्धचन्द्राकार अथवा दो घुमावदार भागों को ही प्रायः प्रयोग में लाया गया है, , ; यद्यपि कभी-कभी कोणाकार भी बनाया गया है, । "र" के ऋजु एवं वक्र दोनों ही आकार मिलते हैं, , । "व" के निचले भाग को त्रिभुजाकार बनाया गया है, , जो बहुधा विषम रूप में मिलता है ।

मात्राओं के प्रदर्शन के सन्दर्भ में दानी की निम्नोक्त टिप्पणी है :- कुछ एक परिवर्तन के द्योतक तत्व अवश्य दिखाई देते हैं । भरहुत प्रथम में अपवादतः "जा" में "आ" की मात्रा अक्षर के शिरोभाग में अलग से लगाया गया है, भरहुत प्रथम को छोड़कर पभोसा एवं अयोध्या के अभिलेखों "इ" की मात्रा सुदर्शन एवं घुमावदार रेखा के रूप में निदर्शित हुई है, जिसे शक-क्षत्रप लेखन-शैली का प्रभाव माना जा सकता है । "पु", "बु", "सु" तथा "हु" में "उ" की मात्रा दाहिनी

उदग्र रेखा की सीध में नीचे की ओर लगाई गई है, [illegible] किन्तु भरहुत प्रथम में पुरानी शैली ही निदर्शित मिलती है, [illegible] "ओ" की मात्रा को अक्षर के शिरोभाग पर सीधी क्षैतिज रेखा के रूप में लगाया गया है, [illegible]

दानी ने इस बात पर भी बल दिया है कि प्रायः आर्ष आकार नवीन आकारों के साथ प्रयुक्त होते हैं, तथा इस बात को भारतीय पुरालिपि वेत्ता भूल जाते है । इसके अतिरिक्त दानी भरहुत प्रथम के अभिलेखों को प्रथम शताब्दी ईस्वी के द्वितीय चरण में रखने के पक्ष में हैं, क्योंकि इनकी लिपि पभोसा और अयोध्या के अभिलेखों की समस्तरीय है।[1]

उल्लेखनीय है कि दानी की समीक्षा का बाह्य पक्ष – कम से कम भरहुत की लिपि के सन्दर्भ में – पांडित्य-पूर्ण एवं आकर्षक अवश्य है, किन्तु आन्तरिक पक्ष साक्ष्य-सम्मित नहीं माना जा सकता है । इस सन्दर्भ में निम्नोक्त तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है :-

1. दानी यह मानकर चलते है कि भरहुत को वेदिकाओं के अभिलेखों की लिपि (जिसे प्रस्तुत विद्वान ने भरहुत प्रथम की संज्ञा दी है) तोरण अभिलेख (भरहुत द्वितीय) की लिपि से पहले की प्रतीत होती है । किन्तु इन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि तोरण अभिलेख की लिपि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के द्वितीय चरण के बाद की नहीं मानी जा सकती है । अभिलेख के वर्णन के अनुसार सम्बन्धित तोरण का निर्माण शुंगों के राज्य में हुआ था (सुगनं रजे) । इस बात का उत्तर अपेक्षित है कि इसमें किसी शुंग-वंश के शासक का उल्लेख क्यों नहीं हुआ है । डी.सी. सरकार के इस सुझाव में काफी बल दिखाई देता है कि अभिलेखांकन के समय शुंगों की सत्ता का ह्रास हो रहा था[2] । अतएव ऐसी स्थिति में तोरण अभिलेख की उक्त तिथि को मान्यता दी जा सकती है, तथा वेदिकांकित अभिलेखों को इससे भी पहले रखा जा सकता है ।

2 जहां तक लिपि का प्रश्न है, भरहुत–लिपि को बोधगया, पभोसा और हाथीगुंफा के अभिलेखों की लिपि से समीकृत करने में कठिनाई प्रतीत होती है । निम्नोक्त अक्षरों के आकार पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है: "क", भरहुत–लिपि में इस अक्षर की पूर्ण धनाकृति, +, का प्रयोग दीर्घ उदग्र रेखा, ┼ , के साथ–साथ हुआ है, जबकि सन्दर्भित अन्य अभिलेखों में केवल दीर्घ उदग्र रेखा का ही प्रयोग हुआ है। "ग", भरहुत–लिपि में इस अक्षर के कोणाकार, ⋀ , एवं वर्त्तुलाकार, ∩ , दोनों का ही साथ–साथ प्रयोग हुआ है, जबकि सन्दर्भित अन्य अभिलेखों की लिपि में केवल वर्त्तुलाकार का प्रयोग हुआ है। "च", भरहुत–लिपि में निचले वर्त्तुलाकार, d , के साथ–साथ चौकोर, ⊐ , आकार का भी प्रयोग हुआ है; जबकि सन्दर्भित अन्य अभिलेखों की लिपि में चौकार आकार का ही प्रयोग हुआ है। "व", भरहुत–लिपि में निचले वृत्ताकार ó के साथ–साथ त्रिभुजाकार △ , का भी प्रयोग हुआ है, जबकि सन्दर्भित अन्य अभिलेखों में केवल त्रिभुजाकार का प्रयोग हुआ है । भरहुत–लिपि में "ओ" की पुरानी शैली (ऊपर–नीचे दो क्षैतिज रेखाएं), ⋏ के साथ–साथ नई शैली (केवल एक क्षैतिज रेखा) का प्रयोग हुआ है ⋏ जबकि सन्दर्भित अन्य अभिलेखों में केवल नई शैली प्रयोग में लाई गई है ।

3 दानी की यह टिप्पणी भी निरापद नहीं है कि भारतीय पुरालिपि वेत्ता इस बात को भूल जाते है कि अभिलेखों में आर्ष आकारों के साथ–साथ नवीन आकारों के प्रयोग की परम्परा भी चलती रही है। वस्तुतः इस आशय के सुझाव दानी के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती पुरालिपि वेत्ताओं ने बार–बार रखा है, तथा इसके आलोक में सम्बन्धित अभिलेखों की लिपि का समय भी निश्चित करने का प्रयास किया है[3]।

संक्षेप में यह कह सकते है कि भरहुत–लिपि के अक्षर–आकारों एवं सम्बन्धित समय निश्चित करने का जो मापदण्ड दानी ने अपनाया है, उसमें कोई विचारणीय अथवा स्वीकारणीय गुरू–गम्भीरता नहीं दिखई देती है।

भरहुत–लिपि के पूर्वकालीन समीक्षकों में कनिंघम का नाग विशेषतया उल्लेखनीय है । कनिंघम की टिप्पणी निम्नोक्त है : The alphabetical characters are precisely the same as those of Aśoka's time on the Sāñchī Stūpa, and of the other undoubted records of Aśoka on rocks and pillars."[4] ... "I do not wish to fix upon any exact date, and I am content with recording my opinion. that the alphabetical characters of the inscriptions of the Bharhut inscriptions are certainly not later than B.C. 200"[5]

कनिंघम का उक्त सुझाव वस्तुनिष्ठता का पूर्ण स्पर्श तो नहीं किन्तु आंशिक स्पर्श अवश्य करता है । सांची के स्तूप से सम्बन्धित लिपि के अक्षर आकारों में कहीं–कहीं आर्षत्व के तत्व अवश्य दिखाई देते हैं । किन्तु यह स्मरणीय है कि भरहुत–लिपि में आर्षत्व के तत्व अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देते हैं । सम्भवत: इन्हीं आर्षत्व के तत्वों के आलोक में उक्त विद्वान ने यह सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि भरहुत–लिपि 200 ईसा पूर्व के बाद की नहीं मानी जा सकती है । किन्तु प्रश्न इस बात का है कि सम्बन्धित अभिलेखों में प्रचुरता किस कोटि के अक्षरों की है, आर्ष आकारों की है अथवा उन अक्षरों को जिन्हें सुविधा की दृष्टि से परिवर्द्धित अक्षर की संज्ञा दे सकते है । उल्लेखनीय है कि भरहुत के कुछ एक ऐसे अभिलेख अवश्य हैं, जिनमें लिपिकर ने आर्ष अक्षरों के प्रयोग को वरीयता प्रदान किया है । यह सुझाव रखा जा सकता है कि भरहुत–लिपि ब्राह्मी के विकास के सन्धि स्थल की द्योतक है; जबकि मौर्यकालीन अक्षरों को बिना किसी परिवर्द्धन के अपना लिया गया था, जिनके साथ–साथ परिवर्द्धित अक्षरों के प्रयोग की प्रवृत्ति चल रही थी ।

कनिंघम के विपरीत बूंलर की समीक्षा में अधिक पारदर्शिता एवं व्यवस्था दिखाई देती है । भरहुत-लिपि की समीक्षा के सन्दर्भ में प्रस्तुत विद्वान् ने हमारा ध्यान निम्नोक्त कोटि के अक्षर आकारों की ओर आकर्षित किया है:

1. Old Mauryan Type, अर्थात् वह प्रकार जो अशोक के अभिलेखों में मिलता है ।

2. Younger Mauryan Type अर्थात् वह प्रकार जो अशोक के पौत्र दशरथ के (नागार्जुन की गुहाओं से उपलब्ध) अभिलेखों में मिलता है। इन्हीं के साथ पभोसा, हाथीगुम्फा आदि स्थानों से उपलब्ध अभिलेखों को भी रखा जा सकता है ।

3. Śuṅga Type, अर्थात् वे अभिलेख जो शुंग-कालीन हैं, तथा भरहुत से प्राप्त हुए है ।

बूंलर ने पहली कोटि से सम्बन्धित लिपि एवं दूसरी और तीसरी कोटि की लिपि में अन्तर स्थापित करने का प्रयास किया है । दूसरी और तीसरी कोटि को प्राय: समस्तरीय एवं समकालीन माना है । इसके अतिरिक्त बूलर ने इस बात पर भी बल दिया है कि "Śuṅga Type" तोरण अभिलेखों की लिपि को माना जा सकता है । इन अभिलेखों की लिपि वेदिका अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि की अपेक्षा उत्तवर्ती मानी गई है। बूंलर यह मानकर चलते हैं कि वेदिका अभिलेखों की लिपि "Old Mauryan Type" का प्रतिनिधित्व करती है। सामान्यतया बूलर ने अपनी अक्षर तालिका में भरहुत-लिपि का समय 150 ईसा पूर्व माना है। इसी के लगभग पभोसा, मथुरा, हाथीगुम्फा एवं नानाघाट के अभिलेखों में प्रयुक्त लिपियों का समय भी रखा है (फलक द्वितीय)[6] ।

वस्तुतः बूँलर द्वारा निदर्शित फलक से दो वर्गो के अक्षर आकार अभिव्यंजित होते हैं, जो निम्नोक्त हैं :-

1. अपरिवर्द्धित अथवा आर्ष आकारः जैसे "क", +, "च", d , "ज" E

2 परिवर्द्धित अथवा नवीनता के द्योतक आकारः जैसे "क", †, "च", d "ज" E

बूँलर द्वारा अंकित लिपि अर्थात् 150 ईसा पूर्व केवल सामान्य अथवा सुविधा की दृष्टि से प्रस्तावित प्रतीत होती है । अन्यथा समग्रता की दृष्टि से भरहुत-लिपि स्तरीकरण का विषय बन जाती है । अर्थात् वेदिकाओं पर अंकित अभिलेखों की लिपि जिसे 200 ईसा पूर्व के आसपास रखा जा सकता है, तथा तोरण-अभिलेखों की लिपि जिसे 150 ईसा पूर्व के आसपास रखा जा सकता है।

बूँलर के उपरान्त जिन विद्वानों भरहुत के अभिलेखों की लिपि एवं उनके समय पर प्रकाश छालने का प्रयास किया, उनमें आर.पी. चन्दा का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है । प्रस्तुत विद्वान ने एक नवीन मापदण्ड के अनुसार पूर्वकालीन ब्राह्मी अभिलेखों की व्यवस्था क्रम को प्रस्तावित किया[7], जो निम्नोक्त है :-

1. अशोक के अभिलेख,
2. अशोक के पौत्र दशरथ के नागार्जुन - गुहा के अभिलेख,
3. बेसनगर का गरूडध्वज - अभिलेख,
4. अ. सॉची के स्तूप प्रथम के वेदिका अभिलेख,
   ब. सॉची के स्तूप द्वितीय के वेदिका अभिलेख,
   स. भरहुत के वेदिका अभिलेख,
   द बोधगया के वेदिका अवशेषों के अभिलेख,

5 अ बेसनगर का वर्ष 12 का गरूड–ध्वज अभिलेख

ब. नानाघाट–गुहा से उपलब्ध आन्ध्र–शासक सातकर्णि प्रथम की महिषी नायनिका (नागनिका) के अभिलेख

स भरहुत का तोरण–अभिलेख,

6. कलिंग–नरेश ग्खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख,

7. साँची के तोरण अभिलेख,

8. शोडास–कालीन अभिलेख
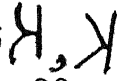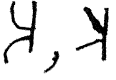
अनुक्रमशः आर.पी. चन्दा के उपरान्त जिन विद्वानों ने भरहुत के अभिलेखों एवं उनसे सम्बन्धित लिपि को विवेचित करने का प्रयास किया, उनमें बी.एम. बरूआ, जी एन. सिन्हा[8] एवं एन.जी. मजुमदार[9] के नाम उल्लेखनीय है। वस्तुतः इन विद्वानों की शोध टिप्पणियां चन्दा के शोधों पर आधारित हैं। बरूआ तथा सिन्हा ने अक्षर आकारों की तीन तालिकाओं को प्रस्तुत किया : (ए) तोरण अभिलेख, जिन्हें पश्चिम भारत से आयातित शिल्पियों ने उट्टंकित किया। इन शिल्पियों की लिपि खरोष्ठी थी। (बी) मुण्डेर–अभिलेख (Coping inscriptions), जिन्हें भिन्न–भिन्न, किन्तु समकालिक, शिल्पियों ने उट्टंकित किया । (सी) वेदिका–स्तम्भ, वेदिका–दण्ड, वेदिका–फलक एवं वेदिका–पट्ट पर उट्टंकित अभिलेख; जिन्हें कालान्तरित स्तरों पर भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के शिल्पियों ने उट्टंकित किया । इन क्षेत्रों में ऐसे भी क्षेत्र सम्मिलित किए जा सकते हैं, जहां ब्राह्मी प्रचलित नहीं थी । ये खरोष्ठी–व्याप्त क्षेत्र थे । किन्तु अधिकांश क्षेत्रों में ब्राह्मी का ही प्रचलन था । चन्दा के सम्बन्धित शोधों के आलोक में ऐसी स्थापना की गई है कि तालिका "ए" से सम्बन्धित अक्षर–आकार अपेक्षाकृत उत्तरकालीन हैं, तालिका "बी" से सम्बन्धित अक्षर–आकार अपेक्षाकृत पूर्वकालीन हैं तथा तालिका "सी" के अक्षर–आकारों में उक्त दोनों का सम्मिश्रण है[10]।

जहां तक एन.जी. मजुमदार का सम्बन्ध है, प्रस्तुत विद्वान ने पुरातत्व-परक अन्वीक्षण के अनुसार भरहुत के अभिलेखों की लिपि को स्तरीकरण का विषय बनाया है । पहले स्तर पर इन्होंने उन अक्षर–आकारों को रखा है, जिनमें पुरातनता अथवा आर्षत्व के तत्व दिखाई देते हैं । इन्हें द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अन्तिम चरण में रखा गया है । इसके अतिरिक्त इनकी समस्तरीयता का सम्बन्ध सॉंची के स्तूप की वेदिकाओं पर अंकित अभिलेखों के अक्षर–आकारों के साथ बताया गया है । दूसरे स्तर पर वे अक्षर–आकार रखे गये हैं, जो अपेक्षाकृत नवीनता का परिचय देते हैं । इनका समय लगलग 125 ईसा पूर्व से 100 ईसा पूर्व माना गया है। जहां तक तोरण–अभिलेखों का प्रश्न है, इनके अक्षर–आकारों को मजुमदार ने भिन्न कोटि से सम्बन्धित किया है, तथा ऐसी स्थापना किया है कि ये अभिलेख उत्तरवर्ती उट्टंकन की प्रक्रिया प्रस्तुत करते हैं । इसके अतिरिक्त मजुमदार ने इन्हें यदि एक ओर बोधगया की स्तूप-वेदिकाओं के अभिलेखांकित अक्षर–आकारों के साथ समीकृत किया है, जो ब्रह्ममित्र एवं इन्द्राग्निमित्र के समय के हैं, तो दूसरी ओर मथुरा के उन अभिलेखों के साथ समीकृत करते हैं जिनमें उत्तरदासक एवं राजन् विष्णुमित्र सन्दर्भित हुए हैं। मजुमदार ने इस कोटि के अक्षरों का समय लगभग 100–75 ईसा पूर्व माना है ।

क्रमानुसार, भरहुत–लिपि के समीक्षकों में एच. लूडर्स तथा इनके मत को परिवर्द्धित एवं परिशेषित करने वाले ई० वाल्स्मिट तथा मेहंडले का उल्लेख किया जा सकता है। इन विद्वानों ने मजुमदार की उक्त टिप्पणी पर अपनी प्रति टिप्पणी प्रस्तुत किया है[10]। इनके विचार वक्ष्यमाण हैं : भरहुत के अभिलेखों के संख्या–विषयक विस्तार को देखा जाय, तो प्रतीत होगा कि इनका वर्गीकरण केवल एक अथवा दो परीक्षण–सापेक्ष अक्षरों (Test letters) के आधार पर करना औचित्य-पूर्ण नहीं माना जा सकता है। यह सही है कि पुरानी ब्राह्मी में अक्षरों के आकार-परिवर्द्धन में स्पष्ट तत्व दिखाई देते हैं। किन्तु इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि अक्षरों के आकार–निर्धारण में अनेक तत्वों का योगदान रहता है; जैसे स्थानीय शैली, लिपिकर की व्यक्तिगत अभिरूचि, लिपिकर का स्तर,

परिवेश एवं संसाधन, लिप्यंकन के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला औजार इत्यादि। कभी–कभी एक ही अभिलेख में अंकित वही अक्षर दो आकारों में प्राप्त होता है। अथवा समकालीन अभिलेखों में वह अक्षर एक से अधिक आकारों में प्राप्त होता है। ऐसा भी हुआ है कि उसी अभिलेख में पुरातन एवं विकसित एक ही अक्षर के दो आकार प्राप्त होते हैं। परीक्षण–सापेक्ष अक्षरों (Test- Letters) के सन्दर्भ में कहा गया है कि इनमें शनैः शनैः परिवर्तन की प्रवृत्ति अशोक के समय से ही चल रही थी, तथा इस प्रवृत्ति का प्रतिबिम्बन भरहुत–लिपि के अक्षर–आकारों में भी मिलता है। इसके स्पष्टीकरण के लिए अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त कुछ–एक अक्षरों को चयित किया गया है, जो निम्नोक्त हैं :

"अ" : इसके निदर्शनार्थ उदग्र रेखा के बाएं दो रेखाएं एक बिन्दु पर मिलती हुई दिखाई गई हैं; इसका एक दूसरा अप्रचलित आकार था, जिसमें वामवर्ती रेखाओं के बीच रिक्तिता छोड़ी गई थी, इसे प्रचलन का सुयोग अशोकोत्तर काल में मिला,
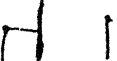
"क" : इसका निदर्शन पूर्ण धनाकृति के द्वारा हुआ है, +, इसके परवर्ती आकार में क्षैतिज रेखा की अपेक्षा उदग्र रेखा को अपेक्षाकृत अधिक दीर्घ बनाया गया है, ।

"ग" : इसका निदर्शन पूर्ण कोणाकृति के द्वारा हुआ है, ; इसके परवर्ती आकार में कोणाकृति को वर्त्तुल बनाया गया है, ।

"छ" : इसका निदर्शन वृत्ताकार को दो भागों में विभाजित करती हुई ऋजु उदग्र रेखा के द्वारा किया गया है, ; शनैः शनैः यह अण्डाकार बनता है ; तथा अन्ततः (निचला भाग) दो फन्दों में बँटकर तितली जैसा रूप धारण करता है ।

"ध" · अशोक के अभिलेखों में इसे रोमन अक्षर "D" की भाँति दिखाया गया है, जिसमें उदग्र रेखा को दाहिनी ओर प्रदर्शित किया गया है; अशोकोत्तर काल में इसका आकार विपरीत हो जाता है, जिसमें उदग्र रेखा को बाई ओर निदर्शित किया गया है, ꓷ ।

"प" · अशोक के काल में यह अक्षर वर्त्तुलाकार है, जिसमें उदग्र रेखा को दीर्घ दिखाया गया है, ꓴ अशोकोत्तर काल में उदग्र रेखाओं का समानीकरण किया गया है ꓴ ।
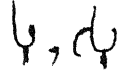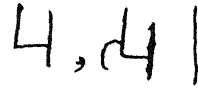
"भ" : पुरातन आकार में दाहिनी और बाई उदग्र रेखाओं की दीर्घता समान है ꓵ , अशोकोत्तर काल में दाहिनी उदग्र रेखा को अपेक्षाकृत अधिक दीर्घ बनाया गया है, ꓵ ।
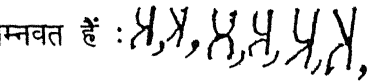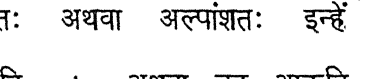
"म" : (अशोक के काल में इसे वर्त्तुलाकार निदर्शित किया गया है, ꓤ), अशोकोत्तर काल में इसे स्पष्टतया कोणाकार निदर्शित किया गया है X ।

"य" : अशोक के काल में इसके दो आकार निदर्शित हुए है। पहला, वह आकार जिसमें उदग्र रेखा के नीचे अर्द्धचन्द्र है, ↓ । दूसरा, वह आकार जिसमें निचला भाग दो फन्दों में बँट गया है, ↓ । अशोकोत्तर काल में इसे लंगर जैसा आकार दिया गया है, ↓

"र" : पुरातन आकार में इसे ऋजु उदग्र रेखा का रूप प्रदान किया गया है, | । परवर्ती स्तरों पर ऊपरी भाग को स्थूल बनाते हुए, इसे असिधार का रूप दिया गया है, | । पुरातन स्तर पर इस अक्षर का एक अतिरिक्त आकार भी था, जिसका रूप कार्क-पेंच के समान था, ꞁ ।

"व" · "म" की भाँति, उत्तरवर्ती स्तरों पर इस अक्षर को भी कोणाकार निदर्शित किया गया है, ⅄ ।

"पु" एवं "सु" : पुरातन आकारों में "उ" की मात्रा अक्षर के नीचे बीच में लगाई जाती थी, ; किन्तु अशोकोत्तर काल में इस मात्रा को नीचे ही अक्षर के दाहिने सिरे पर लगाया जाता था, ।

यद्यपि उक्त टिप्पणियों के सैद्धान्तिक पक्ष में निहित अनेक तत्वों की प्रासंगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, तथापि कुछ एक के औचित्य-अनौचित्य के विषय में आवश्यक विचार प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं प्रतीत होता है। प्रथमतः यह विचारणीय है कि जिन "टेस्ट' लेटर्स" को सन्दर्भित किया गया है, वे वस्तुस्थिति के निदर्शक माने जा सकते हैं अथवा नहीं ? भरहुत-लिपि के सन्दर्भ में ये अक्षर-आकार किस सीमा तक विवेचन के विषय बन सकते हैं ? अशोक के काल में इनके शिल्प-विधि की क्या स्थिति थी ? उद्धृत अक्षर-आकार अशोकीय ब्राह्मी के वस्तुनिष्ठ-परक प्रारूप को अभिव्यक्त कर पाते हैं अथवा नहीं ? जहां तक "अ" का प्रश्न है, अशोकीय ब्राह्मी में इसके एक अथवा दो (सुप्रचलित एवं अल्पप्रचलित) नहीं, प्रत्युत अनेक आकार मिलते हैं, जो निम्नवत हैं : , भरहुत के अभिलेखों में अनल्पांशतः अथवा अल्पांशतः इन्हें अनेकत्र निदर्शित किया है। इनमें "क" की पूर्ण धनाकृति, +, अथवा वह आकृति जिसमें उदग्र रेखा अपेक्षाकृत दीर्घ है, ┼ प्रयुक्त हुई है। किन्तु इनके अतिरिक्त वे आकृतियां भी प्रयुक्त हैं, जिन्हें विवेच्य परिसर से पृथक नहीं किया जा सकता है। इनमें कतिपय उल्लेखनीय हैं, पुरातनता अथवा नवीनता के निर्धारणार्थ, इन सभी आकृतियों का निरूपण आवश्यक हो जाता है। भरहुत लिपि के संश्लेषात्मक स्वरूप के अभिज्ञान के लिए इनके शिल्प-विधि की पृष्ठभूमि विचारणीय बन जाती है। "ग" के पूर्ववर्ती पूर्ण कोणाकार, ∧ तथा परवर्ती वर्त्तुलाकार, ∩ का उल्लेख किया गया है। इस टिप्पणी की ग्राह्यता भी सन्दिग्ध बन जाती है। वस्तुतः

अशोक के अभिलेखों में इस अक्षर की तीन आकृतियाँ प्राप्त होती हैं: अति पुरातन अथवा अपरिपक्व आकार, /\ जिसे बूॅलर ने भ्रमवश उत्तरी सेमिटिक लिपि के "गिमेल" का भारतीय अनुकरण माना था, पूर्ण धनाकृति, /\ जिसका प्रायः प्रयोग हुआ है; वर्त्तुल आकृति, ∩ जिसका व्यवहार कम हुआ है। भरहुत-लिपि की वस्तुस्थिति के निश्चयार्थ इन तीनों आकृतियों को ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है, विशेषतः अनुकृत-अनुकारी सम्बन्ध को सुनिश्चित करने की दृष्टि से। अक्षर "छ" के सन्दर्भ में टिप्पणी अपर्याप्त प्रतीत होती है, जब तक कि कालसी के अभिलेख में उपलब्ध (V-14) उस आकार को प्रसंगित न किया जाय; जिसमें निचला भाग दो ग्रन्थियों अथवा फन्दों में निदर्शित है, तथा लघ्वीकृत उदग्र रेखा के ऊपर कीलाकार बनाया गया है ०b । प्रभाव एवं विकास की दृष्टि से यही आकार अधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। लगभग समन्तर आकार भरहुत-लिपि में निरूपणीय है। अक्षर "ध" के सन्दर्भ में टिप्पणी अपूर्ण लगती है। वस्तुतः "ध" के चर्चित दोनों आकार, D, d अशोकीय ब्राह्मी में प्राप्त होते हैं। पहला आकार सुप्रचलित माना जा सकता है, जबकि दूसरा आकार केवल धौली और जौगढ़ के अभिलेखों में मिलता है। दूसरे आकार का महत्व इस दृष्टि से है कि इसके आधार पर बूॅलर की यह अधिमान्यता समर्थित हो जाती है, मौर्य-युग में ब्राह्मी की कोई दक्षिण-पूर्वी उपशाखा रही होगी । इसकी पुरातनता इस दृष्टि से प्रमाणित होती है, क्योंकि यही आकृति भट्टिप्रोलु के मंजूषा-अभिलेख में प्राप्त होती है । अतएव, यह तथ्य विचारणीय बन बैठता है कि किस विशेष परिस्थिति के प्रभाव में यह पुरातन आकार भरहुत-लिपि में व्यवहार में लाया गया। टिप्पणी में यह स्थापना भी अपूर्ण लगती है कि अशोकोत्तर काल में "प" की उदग्र रेखाओं का समानीकरण किया गया था, U। वस्तुतः समानीकृत उदग्र रेखाओं वाली आकृति एवं अशोक-कालीन वर्त्तुल आकृति के मध्यवर्ती स्तर एक और आकृति प्रकाश में आई थी, जिसमें समानीकरण नहीं किया गया है, तथा आकृति चपटी बनाई गई है, L ; भरहुत-लिपि में इसी आकृति का बहुशः व्यवहार हुआ है। टिप्पणी में "भ" की दो आकृतियां निदर्शित हैं, किन्तु एक तीसरी आकृति, ∏ , अनिदर्शित है। यह पशु-सम आकृति सोहगौरा की आकृति, ∏ , के मेल-जोल में है। इसमें

आर्ष प्रवृत्ति निहित है। भरहुत–लिपि के विवेचन में इसको अनदेखा नहीं किया जा सकता है । टिप्पणी में "म" के एक तीसरे अशोकीय ब्राह्मी के आकार, [ ], को प्रसंगित नहीं किया गया है, जो सोहगौरा के आकार, [ ], का प्राय: समस्तरीय है। इस आर्ष आकार के आलोक में ही भरहुत की लिपि को विवेचित करना उचित लगता है। "श" के लंगर–सम आकार [ ], के बारे में प्रसंगित किया गया है कि यह अशोकोत्तर काल में मिलता है। किन्तु अशोकीय ब्राह्मी के शैर्षिक अध्ययन से पता चलता है कि अशोकीय ब्राह्मी यह अल्पप्रचलित तीसरा आकार था ।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अशोकीय ब्राह्मी का स्वरूप एवं आयाम इतना संश्लिष्ट एवं विस्तृत है कि इसमें "टेस्ट लेटर्स" को चयित करना अथवा उनके आधार पर भरहुत–लिपि को विवेचित करना ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का स्पर्श नहीं कर सकता ।

लिपि–विषयक विवेचन की प्रासंगिता एवं अप्रासंगिता को ध्यान में रखते हुए, पारिस्थितिक तत्वों की अपेक्षा रखते हुए एवं पूर्व विवेचित विद्वानों के गुरू–गम्भीर सुझावों को अनदेखा न करते हुए भरहुत–लिपि की अन्तर्निहित शिल्प–विधि के विवेचनार्थ अक्षर–आकारों की निम्नांकित निदर्शिका प्रस्तुत की जा सकती है। इनकी समीक्षा के लिए मूलतया "कार्पस इंस्कृप्शनं इण्डिकेरं" भाग 2 खण्ड 2 (लूडर्स द्वारा संगृहीत तथा मेहंडले एवं वाल्स्मिट द्वारा संशोधित एवं संपादित) के अभिलेखाक्षरों को चयित किया गया है। कोष्ठकों में अभिलेख संख्या एवं फलक संख्या निर्देशित किए गए हैं ।

"अ" : ऋजु उदग्र रेखा, बाईं ओर मध्य बिन्दु पर मिलती हुई दो वर्त्तुल भुजाएं; [ ] (A·32, II) | अशोकीय ब्राह्मी में यह मानक आकार था । प्राड्.मौर्यकालीन सोहगौरा के अभिलेख में भी यही आकार निदर्शित हुआ है।

इसका एक दूसरा आकार भी मिलता है, जिसमें वामवर्ती दोनों भुजाओं के बीच रिक्तिता मिलती है; ⌐ । इसका प्रयोग भरहुत के कई अभिलेखों में हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि यह तत्कालीन सुप्रचलित आकार था (A.23,IV;A.38, VI; A-51,VIII)| अशोकीय ब्राह्मी में यह एक अल्पप्रचलित आकार था। भरहुत के एक अभिलेख में ये दोनों ही आकार साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं (A.67, X) इसे पुरातनता एवं नवीनता के तत्वों के एकत्रीकरण के लिपि-विषयक प्रमाण के रूप में ग्रहण किया जा सकता है ।

तीसरे आकार में दो अर्द्ध चन्द्राकारों को ऊपर और नीचे स्थापित किया गया है, (A.22,IV)। इसी आकृति का प्रयोग अशोक के तीन अभिलेखों में, (ब्रह्मगिरि का लघु शिलालेख-1; "अयपुतस" में, सिद्वपुर का लघु शिलालेख, 1, 12, राजुल मंडगिरि का लघु शिलालेख-3) हुआ है।

एक चौथा आकार भी प्रसंग के अनुकूल है। इसमें वर्त्तुलाकार वामवर्ती भुजाओं का प्रयोग हुआ है। इसे पुरातनता के अनुक्रमण के रूप में ग्रहण करने में कोई हानि नहीं दिखाई देती है, किन्तु विशिष्टता का द्योतक तत्व इसलिए माना जा सकता है क्योंकि वामवर्ती ऊपरी भुजा को कीलशीर्षा बनाया गया है, (A.81,XI) इसे लिपिकर की अभिरूचि अथवा असावधानी का द्योतक मानने में कठिनाई इस बात की है कि उत्तवर्ती ब्राह्मी के छठीं शताब्दी के अभिलेखों ऐसी आकृति की प्रचुरता दिखाई देती है, इसीलिए तत्कालीन लिपि को कीलशीर्षा (nail-headed) लिपि नाम दिया गया है। क्या इसे कथित लिपि की पुरोगामिता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है ?

एक अभिलेख में पहले क्रम पर निदर्शित ( ), तथा दूसरे पर निदर्शित ( ); दोनों आकारों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है (A.67, X) । अतएव यह तथ्य विचारणीय है कि भरहुत की लिपि ब्राह्मी के विकास के संक्रमण-काल को द्योतित करती है।

"आ" : इस अक्षर के दो विशेष निदर्शन मिलते हैं। पहले में क्षैतिज रेखा को ऋजु आकार प्रदान किया गया है; (B.81, XXIII) । दूसरे में इसी रेखिका को निम्नोन्मुख वर्त्तुल आकार प्रदान किया गया है, । दूसरे आकार में परवर्ती (गुप्तकालीन) आकार का पूर्वाभास मिलता है, हालाँकि इसे लिपिकर की अभिरूचि की प्रसूति मानने में भी कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है।

"इ" · इस अक्षर के लिए निदर्शित दो आकार निरूपित किए जा सकते हैं। पहले में दो बिन्दुओं को ऊपर और नीचे रखा गया है, तथा ठीक दाहिनी ओर एक तीसरा बिन्दु निदर्शित हुआ है, (A.19, IV)। अधिकांशतः यही आकार प्रयुक्त हुआ है। किन्तु अपवादतः तीसरे बिन्दु को बाएं रखने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है । दूसरे आकार का पूर्वकालीन प्रयोग अशोक के सहसराम (3), सिद्धपुर (15), एरागुडी (4, 22) के लघु शिलालेखों में निरूपित किए जा सकते हैं।

"उ" : इसके समकोणात्मक आकार की अधिकांशतः पुनरावृत्ति हुई है, (A.1, I, A.7, XXIII), जिसका समन्तर आकार अशोकीय ब्राह्मी में निरूपित किया जा सकता है। अपवादतः न्यूनकोणात्मक आकार भी निरूपित हुआ है, (B.25, XVIII) जिसका आंशिक प्रयोग अशोक के गिरिनार (VI-9.X-3) कालसी (VII-21, X-29, XII-12), धौली (VI-5) एवं जौगढ (VI-4, X-3) के शिलालेखों में हुआ है ।

"ऊ" : इसका निर्मापन "उ" को द्विगुणित कर किया गया है, (B.19, XVII) सम्भवतः इसके प्रयोग का यह प्रथम अभिलेखीय उदाहरण है। चन्द्रिका सिंह उपासक के सर्वेक्षण के अनुसार अशोक के अभिलेखों में इसका प्रयोग नहीं मिलता । किन्तु ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि अशोक के काल में इसका अन्यत्र प्रयोग अवश्य होता होगा[11]

"ए" : इसके निदर्शनार्थ त्रिभुजाकार प्रयोग में लाया गया है, (B.37,XIX) जो भरहुत-लिपि में प्रयुक्त ई, : का ही द्विगुणित रूप है। समान आशय को निबन्धित करने वाले पूर्ववर्ती अभिलेख में इसका अपरिष्कृत आकार मिलता है, (B.36,XIX) इसे लिपिकर की भ्रान्ति की प्रसूति नहीं माना जा सकता है, क्योंकि समंतर आकार अशोक के गिरिनार (XII-6, XIII-11)तथा कालसी (I-2, II-6, IV-11, V-14,15, VI-20) के शिलालेखों में भी प्राप्त होता है ।

"क" · इस अक्षर के निदर्शनार्थ पुरातन पूर्ण धनाकृति अनेकशः प्रयुक्त हुई है, , (A.2,IV;A.10,IV,B.19,XVII) परिवर्द्धित आकृति जिसमें उदग्र रेखा को दीर्घ बनाया गया है, कम मिलती है (A.1,I) इसका समंतर आकार अशोक के सारनाथ के लघु स्तम्भ अभिलेख (8) तथा रूपनाथ के लघु शिलालेख (3) में प्राप्त होता है। अपरिष्कृत आकार, , में मध्यवर्ती रेखा ऊर्ध्व-बाहु आकार दिया गया है (B.33, XIX), इसका समंतर आकार अशोक के जौगढ के पृथक शिलालेख (11-1) तथा रूपनाथ के लघु शिलालेख (2) में प्राप्त होता है। अवान्तर-कालीन आकार का पूर्वाभास देने वाले आकार में मध्यवर्ती रेखिका को अधोबाहु, (A.1, I) बनाया गया है। इसका समंतर आकार अशोक के धौली शिलालेख (x-4), जौगढ के पृथक शिलालेख (1-5) तथा लौरिया-नन्दनगढ़ के स्तम्भ-अभिलेख (V-6) में प्रापत होता है ।

"ख" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ पुरातन कॅटियानुमा आकार, जिसमें निचला भाग वृत्त है, प्रायः प्रयुक्त हुआ है, (A.4, II, A.11-II, A.29-V) आंशिक प्रयोग उस आकार का हुआ है, जिसमें निचला भाग त्रिभुजाकार है, (A.23,IV) इसका समंतर उदाहरण अशोक के कालसी के शिलालेख (X-28, XIV-23) में निरूपित किया जा सकता है। आंशिक प्रयोग उस आकार का भी हुआ है, जिसमें कॅटियानुमा ऊपरी भाग को चपटा बनाया गया है, (A.12,III, A.55, VIII) इसके समंतर उदाहरण अशोक के अभिलेखों में नहीं मिलते ।

"ग" : इस अक्षर की पुरातन कोणाकृति कम प्रयुक्त हुई है, (A.5,II) परिवर्द्धित वर्त्तुल आकृति, के प्रयोग को वरीयता प्रदान की गई है (A.1,I)। इसका समंतर उदाहरण अशोक के एरागुडी के लघु शिलालेख में निरूपित किया जा सकता है, (8)। इस अक्षर के ऐसे निदर्शन भी मिलते हैं, जिसमें बाएं अथवा दाहिने सिरे पर "सेरिफ" जैसी आकृति संयुक्त की गई है, (A.23,IV), (A.1, I) जिसे उत्तर क्षत्रपीय ब्राह्मी के प्राक् प्रदर्शन के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इसके ऐसे निदर्शन भी मिलते हैं, जिसमें दाहिना भाग वर्त्तुल एवं लघ्वाकार है, तथा बायाँ भाग तिरछा बना है, (B.13,V,A.1,I)। इसका समंतर आकार अशोक के गिरिनार के शिलालेख (II-9, VI-3, VIII-5, IX-1, 9, XII-5, 7) तथा कालसी के शिलालेख (VII-21) में निरूपित किया जा सकता है।

"घ" : इस अक्षर का पुरातन वर्त्तुलाकार कम प्रयुक्त हुआ है, (A.28,V) परिवर्द्धित कोणाकार को वरीयता दी गई है, (A.40, VII; A.108, XIV); जिसके समंतर उदाहरण अशोक के कालसी के शिलालेख (XIII-37) तथा धौली के शिलालेख (IV-2) में निरूपित किए जा सकते है। एक ऐसा भी उदाहरण मिला है, जिसमें उदग्र रेखाओं को समानीकृत प्रदर्शित किया गया है, (A.109, XIV) इस आकृति में उत्तर क्षत्रपीय ब्राह्मी के समान आकार का पूर्वाभास मिलता है।

"च" : भरहुत-लिपि में प्रस्तुत अक्षर का प्रयोग अनेकशः हुआ है, अतएव इसके अनेकधा आकार भी प्राप्त होते हैं। पुरातन आकार जिसमें उदग्र रेखा के बाएं नीचे की ओर अर्द्धवृत्त संयुक्त किया जाता था, कम से कम तीन बार प्रयुक्त हुआ है (A.39, VI; A.10, II, A.1,I)। दूसरे प्रकार की आकृति में निचले अर्द्धवृत्त को वर्गाकार बनाया गया है, (A.57, VIII, A.23,IV) । अशोक के गिरिनार के शिलालेख (IX-3, XII-9), कालसी के शिलालेख (XI-30, XIII-36, XIV-21) तथा धौली के शिलालेख (VII-1) में इसका समंतर

आकार निरूपित किया जा सकता है। आंशिक प्रयोग उस आकार का हुआ है, जिसमें उदग्र रेखा के साथ बाईं ओर त्रिभुजाकार संयुक्त है, (A.56, VIII)। अपरिष्कृत आकार में निचले भाग का प्रदर्शन अण्डाकार के द्वारा किया गया है, जिससे "व" की भ्रान्ति होने लगती है (B.21, XVIII)। इसका समंतर आकार अशोक के एरागुडी के लघु शिलालेख में निरूपित किया जा सकता है (10) ।

"छ" · इस अक्षर के मानक आकार में उदग्र रेखा के निचले भाग के साथ वृत्ताकार संयुक्त हुआ है, (A.1, I, B.49,VI) । यही इसका पुरातन आकार भी है। परिवर्द्धित आकार में निचले भाग का प्रदर्शन अण्डाकार के द्वारा किया गया है, (A.74, XI) । इसके समंतर आकार अशोक के जौगढ के शिलालेख (VII-1,2) तथा लौरिया आरराज के स्तम्भ-अभिलेख (IV-4) में मिलते हैं । इसके अल्पप्रचलित किन्तु महत्वपूर्ण आकार में निचले भाग का प्रदर्शन दो ग्रन्थियों द्वारा किया गया है, तथा उदग्र रेखा काफी छोटा कर दिया गया है (B.28 ,XVIII)। इसका समंतर आकार अशोक के कालसी शिलालेख (V-14) में मिलता है । कालसी शिलालेख में प्रयुक्त प्रस्तुत आकृति को सर्वप्रथम बूलर[12] तथा गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा[13] ने चिन्हित किया था । मौर्यकालीन ब्राह्मी के कुशल सर्वेक्षक उपासक[14] के मत से असहमत होते हुए इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है कि सम्बन्धित आकृति में कुषाण-कालीन ब्राह्मी के "छ" का प्राक् प्रदर्शन हुआ है ।

"ज" : भरहुत-लिपि में अधिकांशतः, इस अक्षर के निदर्शनार्थ पुरातन आकृति को प्रयोग में लाया गया है, जिसमें दाहिनी ओर खुले मुख वाले दो अर्द्धवृत्त ऊपर नीचे परस्पर संयुक्त किए गए हैं, (A.1, I, A.26, XXIV) परिवर्द्धित आकृति में अक्षर को चपटा आकार दिया गया है, जो उत्तरकालीन अवश्य है, किन्तु भरहुत-लिपि में इसे कम प्रयोग में लाया गया है, (B.49, VI) । इसका समंतर निदर्शन अशोक के गिरिनार शिलालेख (IX-1) एवं कालसी शिलालेख

(IV-14)में निरूपित किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि अशोक के काल में "ज" का यह अल्प प्रचलित आकार था । दूसरी परिवर्द्वित वह आकृति है, जिसमें ऊपर और निचले अर्द्ववृत्त को एक घुमावदार वक्र रेखा के द्वारा संयुक्त किया गया है, (A.23,IV) अशोक के अभिलेखों इसका निदर्शन ब्रह्मगिरि के लघु शिलालेख (3) एवं एरागुडी के लघु शिलालेख (4) में निरूपित किया जा सकता है। तीसरी परिवर्द्वित वह आकृति है, जिसमें अक्षर का निचला भाग तो वर्त्तुल है, किन्तु ऊपरी भाग को चपटा बनाया गया है, (B.47, XIII), (A.24 ,IV)। अशोक के अभिलेखें में इसके लगभग समंतर निदर्शन जौगढ के लघु शिलालेख (I-8,II-10)एवं एरागुडी के शिलालेख (XIII-17)में निरूपित किए जा सकते हैं। चौथी परिवर्द्वित वह आकृति है, जिसमें ऊपरी क्षैतिज रेखा को बनाया ही नहीं गया है, (A.56,VIII) अशोक के अभिलेखों में इसका लगभग समंतरीय आकार कालसी शिलालेख (XIV-22) में प्राप्त होता है। पांचवी परिवर्द्वित वह आकृति है, जिसमें अक्षर के मध्यवर्ती बिन्दु में दाहिनी ओर एक ग्रन्थिनुमा फन्दा लगाया गया है (A.10,II)। अशोक के अभिलेखों में इसका समंतरीय आकार कालसी शिलालेख(XII-31,XIII-39) में निरूपित किया जा सकता है ।

"झ" : इस अक्षर का केवल एक आकार मिलता है, जिसमें उदग्र रेखा के दाहिनी ओर, , ऊर्ध्वमुखी वर्त्तुल आकृति संयुक्त की गई है (B.52; XX; A.1114, XV) । पुरातन मानक आकार में कथित ऊर्ध्वमुखी रेखा कोणाकार रहती थी, । अशोक के अभिलेखों में इसके समंतरीय निदर्शन गिरिनार के शिलालेख (VI-7) तथा कालसी के शिलालेख(VI-19)में निरूपित किए जा सकते है।

"ञ" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ दो आकार प्रयोग में लाये गये हैं। पहला वह आकार जिसमें उदग्र रेखा के शिरोभाग में बाईं ओर क्षैतिज ऋजु रेखा संयुक्त की गई है, तथा दाहिनी ओर मध्य बिन्दु से अधोमुखी कोणाकृति निकाली गई है (A.4, II)। यह पुरातन मानक आकार था । दूसरा वह आकार, जिसमें

कोणाकृति को वर्त्तुल बनाया गया है, (A.1, I) । दूसरा आकार अशोक के काल में अल्प प्रचलित था । इसके निदर्शन गिरिनार के शिलालेख में निरूपित किए जा सकते हैं (1-2, 7; IV-2, 4, 8; V-8; VI-6; IX-5, 8; X-1, 4; XIV-1) |

"ट" · भरहुत के अभिलेख प्राकृत में निबन्धित हैं। फलतः सवर्गीय अन्य अनेक अक्षरों की भांति प्रस्तुत अक्षर के प्रयोग की प्रचुरता दिखाई देती है, तथा इसके भी अनेक भेद-भेदान्तर प्राप्त होते हैं। पुरातन मानक आकार के निदर्शनार्थ अर्द्धवृत्त निदर्शित हुआ है (A.56, VIII)। परिवर्द्धित आकार में ऊपरी भाग को चपटा बनाया गया है, (A.6, II), अथवा विकल्पतः निचले भाग को चपटा बनाया गया है (A.5, II) अशोकीय ब्राह्मी में समंतरीय आकार गिरिनार के शिलालेख (XIII-6) तथा कालसी के शिलालेख (1-2, IV-9, 11, V-14, 15, 16) में निरूपित किए जा सकते हैं । दूसरे परिवर्द्धित आकार को कोणात्मक बनाया गया है, (A13, III, B.44, XX) । अशोकीय ब्राह्मी में समंतरीय आकार देहली-मेरठ स्तम्भ अभिलेख (IV-4) एवं रूपनाथ के लघु शिलालेख (5) में निरूपित किए जा सकते हैं ।

"ठ" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ वृत्ताकार प्रयोग में लाया गया है (A10, II; A.92, XII) जो इसका पुरातन मानक आकार है।

"ड" : अक्षर 'ट' की भांति प्रस्तुत अक्षर के भी अनेक भेद- भेदांतर मिलते है। पुरातन मानक आकार के निदर्शनार्थ दीर्घ क्षैतिज रेखा के दोनों सिरों को ऊर्ध्वमुखी (दाहिनी ओर) एवं अधोमुखी (बाईं ओर) उदग्र रेखिकाओं के साथ संयुक्त किया गया है, (A.102, XIV) । इसके तीन भेदांतर मिलते है। पहले में क्षैजित रेखा को लघु एवं उदग्र रेखिकाओं को अपेक्षाकृत दीर्घ बनाया गया है, (B.60, XXI)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार गिरिनार के शिलालेख (XII-9) एवं रूपनाथ के लघु शिलालेख (3) में निदर्शित हुआ है। दूसरे में निचली उदग्र रेखिका की ऋजुता सुरक्षित है, किन्तु ऊपरी उदग्र रेखिका को

घुमावदार बनाया गया है, (A.14, III) । इसका लगभग समंतरीय आकार अशोक के गिरिनार के शिलालेख(XII-5)और कालसी के शिलालेख(XII-31) में प्राप्त होते हैं । तीसरे में निचली और ऊपरी दोनों ही उदग्र रेखिकाओं को घुमावदार, बनाया गया है(A14,III)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय निदर्शन कालसी के शिलालेख(XI-29, XII-33) में निरूपित किया जा सकता है ।

"ढ" : साहित्य में अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त होने के कारण इस अक्षर का न तो अधिक परिवर्द्धन हो सका है और न इसके भेदान्तर ही मिलते हैं। भरहुत लिपि में इसका निदर्शन घुमावदार पृष्ठाकृति के द्वारा हुआ है, (A.51, VIII)

"ण" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ उदग्र रेखा के ऊपरी एवं निचले दोनों सिरों पर ऋजु क्षैतिज रेखिकाओं को संयुक्त किया गया है, (A.1,I दूसरी पंक्ति "पौतेण" शब्द में) । सम्बन्धित अक्षर का यह पुरातन मानक आकार था । भेदान्तर में ऊपरी क्षैतिज रेखिका को घुमावदार बना दिया गया है, (A.1, I दूसरी पंक्ति "पुतेण" शब्द में; तथा चौथी पंक्ति "उपंण" शब्द में) । भेदान्तर के द्योतक प्रस्तुत आकार को कुषाणकालीन ब्राह्मी में भूरिशः प्रयुक्त किया गया है।

"त" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ ऋजु उदग्र रेखा के निचले बिन्दु से अधोमुखी कोणाकृति बनाई गयी है, (A1,I,प्रथम पंक्ति "पुतस" शब्द में, द्वितीय पंक्ति "पौतेण" शब्द में, द्वितीय पंक्ति "गोति" शब्द में, द्वितीय पंक्ति "पुतस" शब्द में, द्वितीय पंक्ति "पुतेण" शब्द में, तृतीय पंक्ति "पुतेन" शब्द में तृतीय पंक्ति "कारितं" शब्द में, तृतीय पंक्ति "तोरनां" शब्द में) । प्रस्तुत अक्षर का यह पुरातन मानक आकार था । इस अक्षर के पहले भेदांतर में उदग्र रेखा को तिरछा बनाकर, इसके मध्य बिन्दु से दक्षिणी ओर एक अतिरिक्त निम्नभिमुख तिरछी रेखा खींची गई है, (A.1, I)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार जिन अभिलेखों में प्राप्त होते हैं, उनमें रूपनाथ के लघु शिलालेख (4, 5, 6), सहसराम के लघु शिलालेख (3, 4, 5, 8), तथा

बैराट के लघु शिलालेख (1, 6, 7) को प्रसंगित किया जा सकता है। दूसरे भेदांतर में उदग्र रेखा तो ऋजु है, किन्तु दाहिने भाग को कॅटियानुमा बनाया गया है, (A.119, XV), A.39, VI), जिसे घुमावदार भी बनाया गया था, (A.42, VII)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय निदर्शन गिरिनार के शिलालेख (II-6, III-2, IV-2, IV-6, V-2) तथा कालसी के शिलालेख (I-3, II-4, III-7) में निरूपित किया जा सकता है।

"थ" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ वृत्त के अन्तर्भाग में बिन्दु अंकित किया है, (A.6, II; A.27, V) इसका कोई भेदांतर नहीं प्राप्त होता है।

"द" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ बाईं ओर खुलने वाले अर्द्धवृत्त के दोनों सिरों के साथ ऊपर ओर नीचे दो उदग्र रेखिकाएं संयुक्त की गई हैं, (A.10, II; A.11, II) भेदांतर में अर्द्धवृत्त को कोणाकार बनाया गया है, (A.51, VIII, A.93, XII; A100, XIII), (A.19, IV "इदं" शब्द में; किन्तु "दानं" शब्द में वर्त्तुलाकार है), (A.16 III "दायकन" शब्द में, किन्तु "दानं" शब्द में वर्त्तुलाकार है)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार गिरिनार के शिलालेख (II-4, III-1, V-3; VII-B) में, कालसी के शिलालेख (II-4, III-7, XI-29) में निरूपित किया जा सकता है। दूसरे भेदांतर में इसका घसीट कर लिखा हुआ आकार बनाया गया है, (A.92, XII; "जेठभद्र" एवं "दानं" शब्दों में)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार रानी (कालुवाकी) के लघु स्तम्भ अभिलेख (1, 2) में निरूपित किया जा सकता है।

"ध" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ धनुषाकार प्रयोग में लाया गया है, जिसमें उदग्र रेखा के दोनों सिरों के साथ बाईं ओर अर्द्धवृत्त संयुक्त किया गया है, (A.22, IV), (B.13, V) इस अक्षर के दो अतिविशिष्ट आकार मिलते हैं, (A.76, X), (A.95, XIII), इनके समंतरीय पूर्ववर्ती अथवा उत्तरवर्ती आकार नहीं मिलते है। इन्हें अधिक से

अधिक लिपिकर की असावधानी अथवा उसकी अभिरूचि की प्रसूति अथवा नितान्त क्षेत्रीय आकार मानने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है।

"न" : प्रस्तुत अक्षर के निदर्शनार्थ आकारभूत ऋजु रेखा के मध्यवर्ती बिन्दु के साथ उदग्र ऋजु रेखा को संयुक्त किया गया है, ⊥ (A.1, I), (A.4, II), (A.11, II), (A.19, IV), (A.21, IV), (A.63, XXV) | सम्बन्धित अक्षर का यह पुरातन मानक आकार था । भेदांतर में आधारभूत रेखा को घुमावदार बनाया गया है, ⊥ (A.1, I),(A.14, III)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय प्रयोग रम्पुरवा के स्तम्भ अभिलेख (V-11) में निरूपित किया जा सकता है ।

"प" : इसके निदर्शनार्थ ऋजु उदग्र रेखा के नीचे दाहिनी ओर ऊर्ध्वमुखी घुमावदार रेखा प्रयोग में लाई गई है, ⋃ (A.14,III), (A.27,V), (A.1,I), (A.13, III) । यह पुरातन मानक आकार है। भेदांतर में घुमावदार रेखा को कोणाकार बनाया गयाहै, ⊔ (A.19, IV) | अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय निदर्शन गिरिनार के शिलालेख (III-6),कालसी के शिलालेख (I-1, III-6, 7; IV-9, 11; V-13) तथा धौली के शिलालेख (II-2,III-1;V-2,7;VI-3,5,7) में निरूपित किया जा सकता है। दूसरे भेदांतर में बाईं उदग्र रेखा को अपेक्षाकृत लघ्वाकार बनाया गयाहै। इसके शिरोभाग पर बिन्दु-सम आकार रखा गया है, ⊔ (A-1, I; दूसरी पंक्ति "पुतस" शब्द में, चौथी पंक्ति "उपंण" शब्द में) जिसे उत्तरवर्ती "सेरिफ" का पुरोगामी मानने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है। किन्तु ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला है, जिसमें उदग्र रेखाओं को समानीकरण किया गया हो। यह प्रवृत्ति उत्तरकालीन है, जिसके निदर्शन प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से सम्बन्धित उत्तर क्षत्रपीय ब्राह्मी के स्तर से मिलने लगते हैं।

"फ" : "प" की ही आकृति पर इस अक्षर का निदर्शित आकार आधारित है। इसके द्योतनार्थ दाहिनी ओर अन्तर्मुखी घुमावदार रेखा को प्रयोग में लाया गया है, (A.30,V)| वही इस अक्षर का पुरातन मानक आकार था ।

"ब" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ आयताकार अथवा वर्गाकार को प्रयोग में लाया गया है, ((A.55,VIII), (A.12,III), (A.58,IX), (A.76,XI)| इसका केवल एक भेदांतर मिलता है, जिसमें आधारभूत रेखा को नहीं बनाया गया है (B.33, XIX; "कोसब" (कोशाम्ब) शब्द में) ।

"भ" : भरहुत की लिपि में "भ" का वह पुरातन मानक आकार नहीं मिलता, जो अशोक के अभिलेखों में बहुशः प्रयुक्त हुआ है, । किन्तु वह भेदांतर अवश्य मिलता है, (A.1, I), (A.4, II), (A.39, VI) जिसके समंतरीय निदर्शन अशोक के गिरिनार के शिलालेख (I-12,VI-10,VI-2) लौरिया नन्दनगढ़ के स्तम्भ अभिलेख (I-3) तथा रूपनाथ के लघु शिलालेख (5) में निरूपित किए जा सकते हैं। दूसरे भेदांतर में बाएं भाग को वर्त्तुलाकार बनाया गया है, (B.19, XVII) जिसे प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की उत्तर क्षत्रपीय ब्राह्मी के स्तर से प्रयुक्त होने का सुयोग मिल सका ।

"म" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ अर्द्धवृत्त (ऊपरी भाग) एवं वृत्त (निचला भाग) को परस्पर संयुक्त कर प्रयोग में लाया गया है, (A.6, II), (B.62,XXI) । यह पुरातन मानक आकार था । इसका पहला भेदांतर मानक आकार से कुछ भिन्न है (A.5,II), जिसका समंतरीय आकार अशोकीय ब्राह्मी में ब्रह्मगिरि के लघु शिलालेख (3, 4, 6, 9, 10), सिद्धपुर के लघु शिलालेख (8) तथा एरागुडी के शिलालेख (I-3,VIII-4) में निरूपित किया जा सकता है। दूसरे भेदांतर में ऊपरी भाग अर्द्धवृत्त है, तथा निचला भाग त्रिभुज है (A.1, I), (A.25, V); जिसका समंतरीय निदर्शन उदाककालीन पभोसा के गुहा-अभिलेख

("बह स्पतिमित्र" शब्द में) एवं उत्तरदासक को सन्दर्भित करने वाले मथुरा के जैन अभिलेखों ("समनस" शब्द में) निरूपित किया जा सकता है ।

"य" : भरहुत लिपि में प्रस्तुत अक्षर के निदर्शनार्थ दो पुरातन मानक आकार प्रयोग में लाये गये हैं : पहले में उदग्र रेखा के निचले सिरे के साथ दो फन्दे संयुक्त किए गए हैं, (B.1,XVI),(B.2,XVI)। दूसरे में उदग्र रेखा के निचले सिरे के साथ लगभग वृत्ताकार संयुक्त किया गया है, (A.4,II),(A.10,II)। भेदांतर में उदग्र रेखा के निचले सिरे के साथ कोणाकार संयुक्त किया गया है, (A.53,VIII) अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार रूपनाथ के लघु शिलालेख (4), सहसराम के लघु शिलालेख (3, 4) तथा सिद्धपुर के लघु शिलालेख (17) में निरूपित किया जा सकता है। दूसरे भेदांतर में उदग्र रेखा को लघु आकार देकर अर्द्धवृत्त आकार की परिधि में ही रखा गया है, (B.10, XVI)। इस आकार को उत्तर क्षत्रपीय ब्राह्मी में सुप्रचलित होने का सुयोग मिल सका था ।

"र" : इस अक्षर के निदर्शनार्थ सामान्यतया ऋजु उदग्र रेखा को प्रयोग में लाया गया है, | (A.4, II),(A.1, I),(A.55, VIII),(B.60 XXI), । यह इसका पुरातन मानक आकार था। भेदांतर में "कार्क-पेंच" से मिलते जुलते आकार का उल्लेख किया जा सकता है, (A.1,I)। यह आकार भी पुरातन मानक आकार था, जिसका समंतरीय आकार अशोकीय ब्राह्मी में गिरिनार के शिलालेख (I - 2, 3, 5, 7, 11), ब्रह्मगिरि के लघु शिलालेख (2, 5, 6, 7, 9, 12), एरागुडी के लघु शिलालेख (10), तथा गुजर्रा के लघु शिलालेख (1, 2, 3, 4, 5,) में निरूपित किया जा सकता है। दूसरे भेदांतर में उदग्र रेखा के निचले सिरे को दाहिनी ओर घुमावदार बनाकर एक नवीन प्रयोग को निदर्शित किया गया है, (A.19,IV)। इसके समंतरीय निदर्शन नहीं मिलते । उत्तरकालीन निदर्शनों में उदग्र रेखा के निचले सिरे को बाईं ओर घुमावदार बनाया गया है, ।

"ल" : भरहुत लिपि में इस अक्षर के निदर्शनार्थ सामान्यतया पुरातन वर्त्तुलाकार को प्रयोग में लाया गया है, (A.1,I),(A.109,XIV),(A.39,VI) भेदांतर में कोणाकार उल्लेखनीय है, (A.40,VII)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय निदर्शन कालसी के शिलालेख (I-2,II-6) धौली के शिलालेख (VII-2,6) एवं जौगढ़ के शिलालेख (VI-6) में निरूपित किए जा सकते हैं । दूसरा भेदांतर वह आकार है, जिसमें अक्षर तो वर्त्तुलाकार है किन्तु उदग्र रेखा को दाहिनी ओर घुमावदार बनाया गया है, (A.12,III),(A.13,III)। इस आकार का प्रयोग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की उत्तर क्षत्रपीय ब्राह्मी में हुआ है, जिसका निदर्शन कौशाम्बी बौद्ध शिला (आयागपट्ट ?) अभिलेख (दूसरी पंक्ति "शिला" शब्द में) ढूँढ़ा जा सकता है ।

"व" : प्रस्तुत अक्षर के निदर्शनार्थ भरहुत की तिथि में सामान्यतया पुरातन मानक आकार को प्रयोग में लाया गया है, जिसमें उदग्र रेखा के निचले भाग में वृत्ताकार प्रदर्शित किया जाता था; (A1,I), (A19,IV), (A22,IV), (A30,V) (A32,VI), (A34,VI), (A45,VII), (A70,X), (A72, X) | एक ऐसा निदर्शन भी मिलता है, जिसमें उदग्र रेखा अतिदीर्घ बनाई गई है, (A.51,VIII) समंतरीय आकार पिपरहवा के बौद्ध भाण्ड अभिलेख ("भगवते" शब्द) में निदर्शित हुआ है । इसे केवल सांयोगिक प्रयोग माना जा सकता है । भेदांतर में वह आकार उल्लेखनीय है, जिसमें निचला भाग त्रिभुजाकार है, (A.31, V) ।अशोकीय ब्राह्मी में समंतरीय निदर्शन कालसी के शिलालेख(IX-26), एरागुडी के शिलालेख (VII-4) में निरूपित किया जा सकता है। अन्य भेदांतरों में दो आकारों का उल्लेख कर सकते हैं : एक तो वह, जिसमें उदग्र रेखा को काफी छोटा बनाकर इसके साथ अंडाकार संयुक्त किया गया है, (A.13, V), (A.61, IX); दूसरा वह, जिसमें निचला भाग अंडाकार है, तथा उदग्र रेखा पूरा हटाकर बिन्दु-सम आकार रखा गया है, (A.61,IX)|दोनों ही आकार उत्तरवर्ती हैं। दूसरे आकार में "कीलशीर्षा" अक्षर की पुरोगामिता का आभास मिलता है ।

"स" : भरहुत के अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा–विषयक विशिष्टता के फलस्वरूप "श", "ष" और "स" में केवल "स" का प्रयोग मिलता है । प्रस्तुत अक्षर के निम्नांकित आकार उल्लेखनीय हैं : वर्त्तुल आकार जो पुरातनता एवं मानकता का द्योतक है, (Al, I) परिवर्द्धित आकार जिसमें दाहिना भाग कोणाकार है, तथा बाएं भाग को वर्त्तुल बनाया गया है, (A.56, VIII)। अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार गिरिनार के शिलालेख (IV-10) और कालसी के शिलालेख (IX-26) में निरूपित किया जा सकता है। परिवर्द्धित आकार जिसमें दाहिना भाग वर्त्तुल है, तथा बाएं भाग को कोणाकार बनाया गया है, (A.56, VIII) | अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार लौरिया आरराज के स्तम्भ अभिलेख (II-4) और बैराट के लघु शिलालेख में (2) में निरूपित किया जा सकता है । परिवर्द्धित आकार जिसमें दाहिने और बाएं दोनों भागों को कोणाकार बनाया गया है, (B.56, XXI) । इसके समंतरीय निदर्शन नहीं मिलते हैं । सम्भवतः इसे लिपिकर की वैयक्तिक अभिरूचि की प्रसूति मानने में कोइ विसंगति नहीं दिखाई देती है ।

"ह" : भरहुत की लिपि में इस अक्षर के निदर्शनार्थ तीन आकारों का प्रयोग हुआ है, जो निम्नांकित हैं : पुरातन मानक आकार जो वर्त्तुल होता था, (A.73, X)। परिवर्द्धित आकार जो कोणाकार होता था, (B35, XIX) अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार लौरिया आरराज के स्तम्भ अभिलेख (VI-2) एवं एरागुडी के लघु शिलालेख (13) में निरूपित किया जा सकता हैं । परिवर्द्धित आकार जो वर्त्तुल तो होता था, किन्तु उदग्र रेखा को छोटा कर दिया जाता था, (A.5, II)| अशोकीय ब्राह्मी में इसका समंतरीय आकार रम्पुरवा के स्तम्भ अभिलेख (VI-1) एवं एरागुडी के लघु शिलालेख (2, 5) में निरूपित किया जा सकता है ।

भरहुत के अभिलेखों में प्रयुक्त मात्रा शैली के आलोचनार्थ निम्नांकित तालिका प्रस्तुत की जा सकती है :

"आ" : (का, A1, I)
(गा, A1, I)
(घा, A28, V)
(जा, A26,XXIV) (B.49,VI), (A.56,VIII)
(डा, B.21, XVIII)
(दा, A16, III) (A.92,XII) (A.51,VIII)
(ना, A4, II; A11, II)
(या, A.10, II)
(रा, A.4, II)
(ला, A.1, I)

"इ" : (खि, A.55, VIII), (A.4, II), (A.23, IV)
(गि, A.54, XXVIII), (A.23, IV)
(चि, A.39, IV), (A.23, IV), (A.56, VIII),
(छि, A.1, I)
(झि, A.114, XV)
(डि, A.14, III)
(ति, A.1, I)
(दि, B.13, V)
(मि, A.6, II)
(रि, 60, XXI); (A.19, IV)

(बि, A.1, I)

(सि, A.56, XXI)

"ई" : (गी, A.1, I)

(ठी, A.10, II)

(बी, A.12, III)

"उ" : (कु, A.10, II)

(खु, A.11, II), (A.29, V), (A.12, III)

(चु, A.10, II)

(छु, A.74, XI)

(जु, A.1, I)

(डु, B.44, XX)

(तु, A.42, VII)

(पु, A.14, III; A.27, V; A.13, III), (A.19, IV),

(A.1, I), (A.1, II), (A.72, X)

(बु, (A.55, VIII; A.76, XI), (A.58, IX)

(मु, B.62, XX)

(रु, रु, A.55, VIII)

(सु, A.1, I), (A.56, VIII)

"ऊ" : (चू, B.21, XVIII)

(भू, A.1, I)

"ए" · (जे, A.1, I)

(ते, A.1, I)

(दे, A.11, II; A.19, IV) (A.100, XIII,

A.100, XIII, (A.93, XII)

(वे , A.31, V)

"ओ" : (गो, (A.1, I)

(जो, A.4, II), (A.1, I)

(तो, A.1, I)

(नो, A.21, IV)

(मो, A.25, V)

"औ" : (पौ, A.1, I)

अनुस्वार लगाने की शैली

(कं, A.1, I)

(नं, A.19, IV), (A.1, I)

(मं, A.1, I)

संयुक्ताक्षर शैली

(क्रं, B.19, XVII), (द्र, A.92, XII),

(न्हि A.63, XXV) (म्ह, A.25, V)

भरहुत लिपि में प्रयुक्त अक्षर आकृतियों के उक्त निदर्शनों से यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि इनकी तिथि विषयक समीक्षा के लिए निम्नोक्त आधारभूत तत्वों को ध्यान में रखा जा सकता है :

1. एक तो वे अक्षर आकार जो अशोकीय ब्राह्मी के सन्निकर्ष में हैं, अथवा उनके समस्तरीय एवं समांतर हैं। इन्हें आर्ष (Archaic अथवा Archaistic) आकार की संज्ञा देने में कोई विसंगति नहीं दिखाई देती है । इनकी समयावधि 300 ई0पू0 से लेकर 200 ई0पू0 मानी जा सकती है ।

2. दूसरी कोटि के वे अक्षर आकार हैं, जिनका अल्पांशतः अथवा अत्यल्पांशतः प्रयोग तो अशोकीय ब्राह्मी में मिलते हैं, किन्तु सुप्रचलित रूप में नहीं इनकी समयावधि द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के प्रथम चरण से लेकर इसी शताब्दी के द्वितीय चरण तक मानी जा सकती है ।

3 तृतीय कोटि के वे अक्षर आकार हैं, जिन्हें द्वितीय शताब्दी ई0पू0. के द्वितीय चरण से लेकर प्रथम शताब्दी ई0पू0 के मध्यवर्ती चरण में रखा जा सकता है ।

इस प्रकार अनुमानतः एवं निष्कर्षतः ऐसा कह सकते हैं कि भरहुत–लिपि के लेखन का क्रिया–कलाप लगभग 300 ई0पू0 से लेकर प्रथम शताब्दी ई0पू0 तक चलता रहा, तथा इसका विदर्भण एवं विलयन क्रमशः उत्तर क्षत्रपीय एवं कुषाण ब्राह्मी में हुआ ।

सन्दर्भ-निर्देश

1. इंडियन पैलियोग्रैफी, पृष्ठांक 57–59
2 सेलेक्ट इंसिक्रिप्शंस, भाग 1, पृ0 87, टिप्पणी 4
3 एपिग्राफिया इंडिका, भाग 19, पृ0 96; अलटेकर के मत में विशदीकरण के लिए द्रष्टव्य; एस.एन. राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, पृ0 199
4. स्तूप आफ भरहुत, पृ0 127
5 तत्रैव, पृ0 15
6 इंडियन पैलियोग्रैफी, पृ0 50 तथा अनुवर्ती पृष्ठांक
7 मेमायर्स आफ आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग 1, 1818
8. भरहुत इंसक्रिप्शंस, पृष्ठांक 103–112
9. मानुमेंट्स आफ़ सांची, परिशिष्ट
10 कार्पस इंसक्रिप्शनं इंडिकेरम भाग 2, खण्ड 2, पृ0 XXXII
11. सी एस उपासक. हिस्ट्री ऐंड पैलियोग्रैफी आफ़ मौर्यन ब्राह्मी स्क्रिप्ट, पृ0 48, टिप्पणी 1
12 इंडियन पैलियोग्रैफी, पृ0 7 एवं पृ0 34
13. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, फलक II
14. उपासक, तत्रैव, पृ0 65

भरहुत-लिपि के अक्षर-आकारों की निदर्शिका

(इन्हें कार्पस इन्सक्रिप्शनम इंडिकेरम खण्ड 2, भाग 2 के फलकों के आधार पर तैयार किया गया है। तालिका में अभिलेख संख्या (**A** अथवा **B** से संयुक्त, तथा फलक संख्या) तदनुसार ही अंकित किया गया है।)

अ		A32,VI			A23,IV	A51,VIII	A38,VI			A22,IV		A67,X		A81,XI
आ		A1,I			B81,X	इ		A19,IV		A86,XII	उ		A1,I	A7,XXIII
उ		B,25XVIII			B19XXXV	ए		V37,XIX		B36,XIX	क			B33,XIX
का		A1,I	कु		A10,II	कं		A1,I	क्रं		B19,XVI	खि		A55,VIII
खि		A4,II	खि		A23,IV	खु		A11,II		A29,V		A12,III	ग	A5,II
ग		A1,I		B13,V	गा		A1,I	गि		A54,XVIII			A23,IV	
गी		A1,I	गो		A1,I	घ		A40,VII	A108,XIV			A109,XIV	घा	A28 V
च		A1,I		A57,VIII	चि		A39,VI		A23,IV		A56,VIII	चु		A10,II
चु		B21,XVIII				B46,VI		B28, XVIII	छि		A1,I	छु		A74,XI
ज		A23,IV		A24,IV		A10,II	जा		B47,XIII		A56,VIII		B46,VI	A26,XXIV
जु		A1,I	जे		A1,I	झ		B52,XX	झि		A114,XV	ञो		A4,II
ञो		A1,I	ट		A56,VIII		A6,II		A5,II		A13,III	डु		B44,XX
ठ		A92,XII	ठी		A10,II	ड		A102,XIV	डा		B21,XVIII	डि		A14,III
ढ		A51,VIII	ण		A1,I	त		A1,I		A39,VI	ति		A1,I	
तु		A42,VII	ते		A1,I	तो		A1,I	थ		A6,II	द		A10,II

द्र	A92,XII	दा		A16,III		A16,III		A92,XII		A5,VIII	दे		A93,XII
दं	A100,XIII			A100,XIII		A19,IV	ध		A22,IV		A95,XIII		A76,XI
द्वि	B13,V	न		A1,I	ना		A11,II	न्हि		A63,XXV	नो		A21,IV
नं	A19,IV		A1,I	नां		A14,III	पु		A14,III	A27,V	A13,III		A19,IV
पु	A1,I		A1,I		A72,X	पौ		A1,I	फ		A30,V	ब	B33,XIX
बी	A12,III	बु		A55,VIII	A76,XI		A58,IX	भ		A4,II		A39,VI	B19,XVIII
भू	A1,I	म		A5,II	मि		A6,II	मु		B62,XXI	मो		A25,V
य	B1 XVI B2		A4,II		A53,VIII		B10,XV	या		A10,II	र		A1,I
र	A1,I	रा		A4,II	रु		A55,VIII	रि		B60,XXI		A19,IV	
ल	A109,XIV		B3,XVI		A40,VII		A12,III	A13,III	ला		व		A51,VIII
व	A61,IX		B16 XVII B17		B13,V	वि		B13,V		A1,I	वे		A31,V
स	A56,VIII	सि		B56,XXI	सु		A1,I		A56,VIII	ह		A73,X	
ह	A5,II												

अध्याय - 6

भरहुत - शिल्प के चयित फलक
एवं
उनके अक्षरांकन

प्रस्तुत अध्याय में भरहुत के कुछ एक महत्वपूर्ण फलकों को चयित कर उनके अक्षरांकन की समीक्षा करने का प्रयास किया जा रहा है। इन फलकों से सम्बन्धित चित्रांकनों एवं अक्षरांकनों का विश्लेषण, कनिंघम, हुल्श, बेणिमाधव बरुआ जैसे पूर्वसूरियों ने कई दृष्टियों से किया है। यद्यपि इनकी समीक्षाओं में अनेकशः विषमताएं दिखाई देती हैं, तथापि ये समीक्षाएं प्रायः मूल भूत बौद्ध परम्परा का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में स्पर्श ही करती हैं। इन्होंने प्रायः चित्रांकनों को जातक आदि ग्रन्थों में वर्णित कथानकों के सन्निकर्ष में रखने की चेष्टा की है। इस कारण इन कथानकों की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। कभी-कभी इन चित्रांकनों के समविषयक विवरण बौद्ध साहित्य में नहीं मिलते। इसके आधार पर ऐसा अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा कि बहुत से बौद्ध कथानक मौखिक परम्परा तक ही सीमित रहे, तथा उन्हें साहित्य में स्थान नहीं मिल सका।

उक्त निष्कर्ष के साथ-साथ यह कथन विषय-बाह्य नहीं होगा कि मूलतः भरहुत के अभिलेख दान विषयक हैं। उत्तरकालीन दान-विषयक अभिलेखों की अपेक्षा इनकी भाषा काफी सरल प्राकृत है। कुछ शब्द जैसे 'थभो' अथवा 'थंभो' अथवा 'थभा', "सुचि", "बोधिचक" विशेषतया उल्लेखनीय हैं। विषय-विवेचन की दृष्टि से ये अभिलेख कई वर्गों में रखे जा सकते हैं। निम्नोक्त वर्ग चर्चित किए जा सकते हैं -

1. वे अभिलेख जो गृहस्थ बौद्ध (पुरूष एवं स्त्री) के दान का उल्लेख करते हैं ।

2 वे अभिलेख जो दानकर्त्ता अथवा दानकर्त्तृ की देशीयता को प्रसंगित करते हैं ।

3. वे अभिलेख जो दानकर्त्ता अथवा दानकर्त्तृ के गोत्र, जाति अथवा सम्बन्ध को निबन्धित करते हैं ।

4 वे अभिलेख जो दानकर्त्ता अथवा दानकर्त्तृ की जीविका अथवा व्यवसाय को सन्दर्भित करते हैं ।

5 वे अभिलेख जो दानकर्त्ता (भिक्षु) की धार्मिक उपाधि को सन्दर्भित करते हैं ।

दानकर्त्ता की देशीयता (मूल निवास स्थान) का सन्दर्भ अनेक अभिलेखों में प्राप्त होता है। जिनसे ज्ञात होता है कि भरहुत–स्तूप के दर्शन एवं सम्मान के लिए भिक्षु, भिक्षुणी तथा सामान्य लोग पाटिलपुत्र, कौशाम्बी, मथुरा, पदोला (मध्य प्रदेश के बिलासपुर जनपद में स्थित पण्डरिया), विदिशा, भोजकटक (भोपाल में स्थित भोजपुर), नासिक तथा करहकट (सतारा में स्थित करहद) से आया करते थे। इस बात की संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि दान–दाता मूल रूप से पाटिलपुत्र, कोशाम्बी आदि के मूल निवासी रहे हो तथा आजीविका के प्रसंग में भरहुत या उसके समीप स्थाई रूप से निवास करने लगे। दान देते समय अपने मूल स्थान के प्रति विशेष लगाव के कारण दानकर्त्ताओं ने अपने मूल स्थान का उल्लेख अपनी पहचान सुरक्षित रहने के लिए किया हो।

इसके साथ–साथ इस बात पर बल देना आवश्यक है कि तक्षित चित्रांकन अभिलेखांकित है। ये अभिलेख साभिप्राय हैं, जिन पर विद्वानों ने समय–समय पर अपने सुझाव भी दिए हैं किन्तु इनकी लिपि गत समीक्षा विशेषतया वांछनीय है। पिछले दो अध्यायों में इस तथ्य को अक्षरों की समीक्षा के साथ स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। आलोचित अध्याय में पुनरूक्ति दोष का परिहार करते हुए, फलकांकित अक्षरांकनों का विश्लेषण करने की चेष्टा की जा रही है।

फलक संख्या – 1

मूल अभिलेख
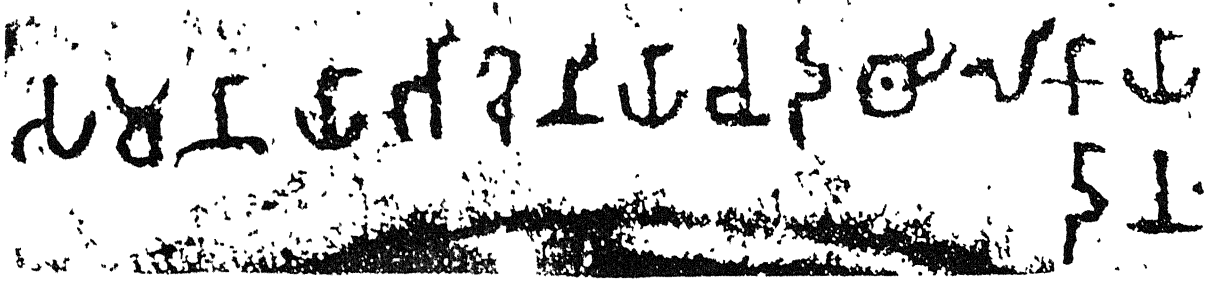
लिप्यन्तरण

1 समनाया भिखुनिया चुदथीलिका या

2. दानं

अर्थात : चुदथील (चुन्दस्थली) की रहने वाली भिक्षुणी समना (श्रमणा) का दान

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अधिकांशतया पुरातन (मौर्यकालीन) अक्षर–आकारों को ही प्रयोग में लाया गया है ।

किन्तु अक्षर "ख", "च" और "भ" के आकार मौर्योत्तर कालीन है।

दानं शब्द में अक्षर न के पुरातन (मौर्यकालीन) आकार को निदर्शित किया गया है। किन्तु समना शब्द में मौर्योत्तर कालीन आकार का निदर्शन किया गया है, जिसमें आधारभूत रेखा वर्त्तुल होती थी। इसमें "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में लगी है।

फलक संख्या – 2

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

यवमझकियं जातकं
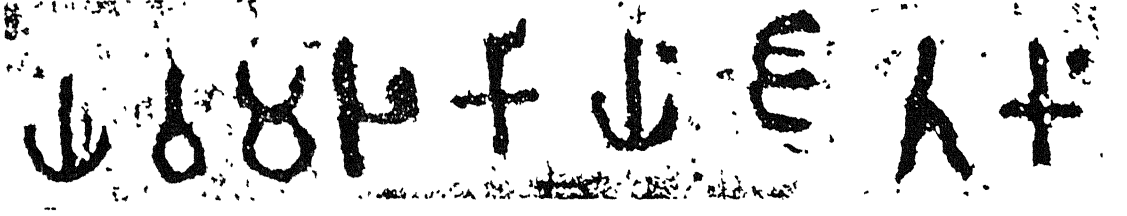
अर्थात् : उस जातक का अंकन जिसमें आधिष्ठानिक नगरों का कथानक प्राप्त होता है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

"क", "म", "य" की आकृतियाँ पुरातन (मौर्यकालीन) में अंकित है।

"त" की आकृति एवं "ज" में "आ" की मात्रा लगाने की शैली मौर्योत्तर काल की है।

फलक संख्या – 3

मूल अभिलेख
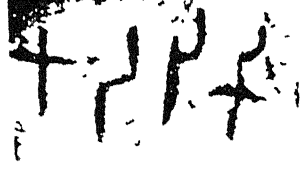
लिप्यन्तरण

कडरिकि

अर्थात् : कंडरिकि, इसका तादात्म्य कंडरिजातक में वर्णित नायक से स्थापित किया गया है। आगे चलकर इसे कुणालजातक में समावेशित किया गया है। कंडरिकि वाराणसी का एक राजा था। वह देखने में अतीव सुन्दर था। कथित जातक में उसके रोमांचक जीवन का उल्लेख है, जिसे प्रस्तुत फलक में चित्रांकित किया गया है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" के दो आकारों को निदर्शित किया गया है। पहले में उदग्र रेखा को दीर्घ बनाया गया है। दूसरे में क्षैतिज रेखा को वर्त्तुल आकार दिया गया है। दोनों मौर्योत्तर कालीन आकृतियां है।

अक्षर "ड" की मध्यवर्ती रेखा लघु तथा तिर्यक आकार में बनाई गई है। यह शैली भी मौर्योत्तरकालीन है। अक्षर "क" और "र" में "इ" की मात्रा वर्त्तुल है; जो मौर्योत्तर कालीन है।

फलक संख्या – 4

मूल अभिलेख
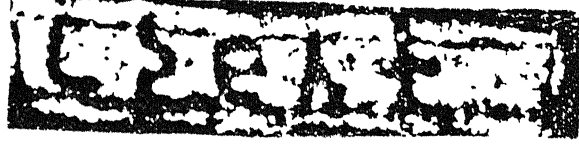
लिप्यन्तरण

उदजातक

अर्थात् : उस जातक का कथानक जिसमें उदबिलावों का वर्णन मिलता है। इसमें दो उदबिलावों का उल्लेख है, जिनमें उनके द्वारा पकड़ी गई रोहित मछली के बँटवारे का झगड़ा वर्णित है। मध्यस्थता एक सियार करता है, जो उन्हें मूर्ख बनाकर मछली के असली हिस्से को स्वयं खा लेता है। बोधिसत्त्व ने इस दृश्य को देखा था।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" एवं "द" की पुरातन (मौर्यकालीन) आकृतियां हैं।

अक्षर "उ" की आकृति असावधानी के साथ बनाई गई है, जिसके कारण "ट" की भ्रान्ति होने लगती है।

अक्षर "ज" एवं "त" की आकृतियां मौर्योत्तर कालीन हैं।

फलक संख्या – 5

मूल अभिलेख
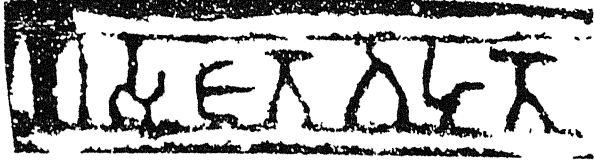
लिप्यन्तरण

सुजतो गहुतो जातक

अर्थात् : वह जातक जिसमें गो–सेवक सुजाता का कथानक प्राप्त होता है। इसका तादात्म्य सुजातजातक से स्थापित किया जाता है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "स" की आकृति पुरातन (मौर्यकालीन) शैली में लगाई गई है। इसमें "उ" की मात्रा (दाहिने सिरो के बीच मे) भी पुरातन शैली में लगाई गई है।

अक्षर "ज" की (लगभग वर्त्तुल) आकृति पुरातन शैली में लगाई गई है। "आ" की मात्रा (बीच में ऋज्वाकार) भी पुरातन शैली में लगाई गई है।

अक्षर "त" की दोनों आकृतियाँ मौर्योत्तर शैली में लगाई गई हैं। "ओ" की मात्रा भी (एक ही सीधी रेखा में) मौर्योत्तर शैली में है, जिसे "शुंग–शैली" की संज्ञा दी जाती है।

अक्षर "ह" की (चपटी) आकृति मौर्योत्तर शैली में है, तथा "उ" की मात्रा (दाहिने सिरे पर) मौर्योत्तर शैली में ही है।

फलक संख्या – 5(ए)

मूल अभिलेख
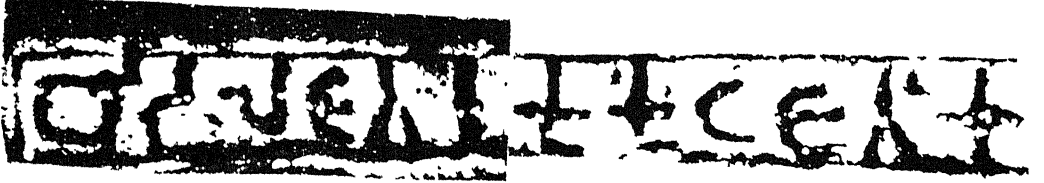
लिप्यन्तरण

बिडलजातर (क) (लिपिकर ने प्रमाद–वश "क" की जगह 'र' बना दिया है।)
कुकुटजातक

अर्थात् : वह जातक जो बिलाव के कथानक से सम्बन्धित है, इसमें कुक्कुट (मुर्गा) की कहानी भी है, इसलिये इसे कुक्कुट जातक भी कहते हैं। इसमें बोधिसत्व को कुक्कुट के रूप में उत्पन्न बताया गया है, जिसे खाने के लिए एक बिलाव असफल प्रयास करता है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

पूर्ण धनाकार "क", वर्त्तुलाकार "ज" तथा इसमें मध्यवर्ती "आ" के लिए ऋज्वाकार, वर्त्तुलाकार "ल", वर्त्तुलाकार "ट" मौर्यकालीन शैली में अंकित हुए हैं।

अक्षर "ड" (जिसमें मध्यवर्ती क्षैतिज रेखा को ऋज्वाकार दिया गया है), "त" (जिसमें उदग्र रेखा के नीचे पूर्ण कोणाकृति बनाई गई है) मौर्योत्तर शैली में अंकित हुए हैं।

फलक संख्या – 6

मूल अभिलेख
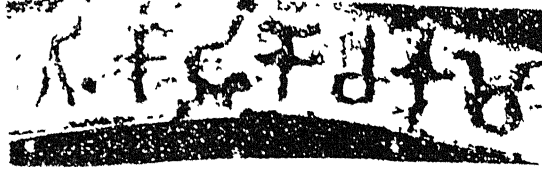
लिप्यन्तरण

तिकोटिको चकमो

अर्थात् : वह चंक्रम (बौद्ध विहार का हिस्सा, जहाँ बौद्ध लोग व्यायाम अथवा सैर–सपाटे किया करते थे), जो तिकोना था। इसका तक्षण एक पदक पर हुआ है। इस पर तीन सिरों वाला सर्प, तथा बाघ एवं हाथियों का अंकन हुआ। एक मत के अनुसार यह नागलोक का दृश्यांकन है। किन्तु यथार्थतः यह केवल सैर–सपाटे के लिए त्रिकोणीय स्थल है। यह किसी कथानक से सम्बन्धित वास्तु–शिल्प का द्योतक है, जिसका पता अभी तक नहीं चल सका है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" की पुरातन धनाकृति है, किन्तु "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है।

अक्षर "च" का निचला हिस्सा वर्त्तुल न होकर चपटा है, जो मौर्यकालीन अपसामान्य आकार है, जिसे सुप्रचलन का सुयोग मौर्योत्तर काल में मिला था।

अक्षर "ट" की आकृति (मौर्योत्तर कालीन) लगभग चपटी है, "इ" की मात्रा (मौर्योत्तर कालीन शैली में) वर्त्तुल बनी है।

फलक संख्या – 7

मूल अभिलेख
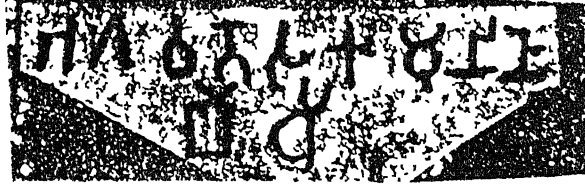
लिप्यन्तरण

1 **भगवतो सकमुनिनो**

2. **बोघो**

अर्थात् : वह भवन जो शाक्यमुनि (बुद्ध) के बोधिवृक्ष के चतुर्दिक निर्मित है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" की आकृति में उदग्र रेखा को दीर्घता प्रदान की गई है, जो मौर्योत्तर कालीन शैली है।

अक्षर "ग" को पूर्णतया कोणाकार बनाया गया है, जो मौर्य–कालीन शैली की विशेषता है।

अक्षर "त" का निचला भाग वर्त्तुल है, जो मौर्योत्तर कालीन शैली की विशेषता है, "उ" की मात्रा (सीधी रेखा) "शुंग–शैली" की द्योतक है।

अक्षर "न" मौर्यकालीन शैली है, "उ" की मात्रा (पहले में) तथा "ओ" की मात्रा (दूसरे में) मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति की द्योतक है।

अक्षर "म" (वर्त्तुल) मौर्य–कालीन शैली में है, तथा इसमें "उ" की मात्रा (निचले भाग के बीच में) मौर्यकालीन की ही द्योतक है।

फलक संख्या – 8

मूल अभिलेख
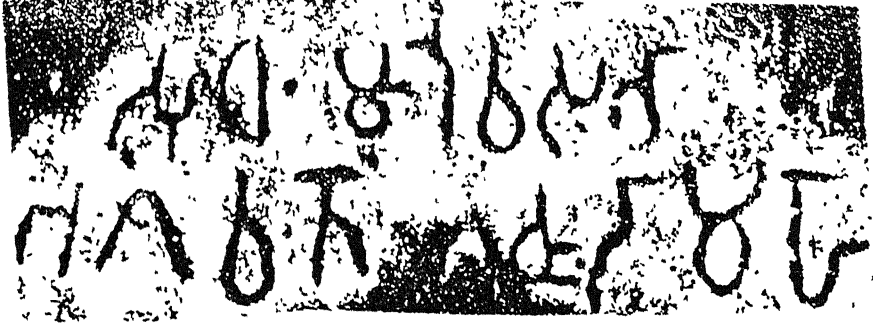
लिप्यन्तरण

1	**सुधंमा देवसभा**	1.	**वेजयंतो पा**
2	**भगवतो चूडामहो**	2.	**सादो**
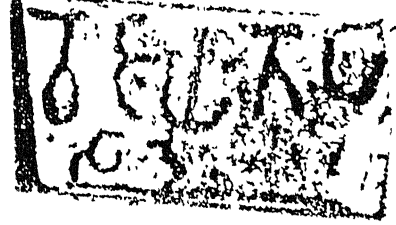
अर्थात् : सुधर्मा नामक देवसभा (दैवी शाला Hall of the Gods) (जहाँ) भगवान बुद्ध का चूडा महोत्सव हुआ था। वैजयन्त प्रासाद का दृश्यांकन। जातक के निदानकथा, महावस्तु, ललितविस्तर जैसे ग्रन्थों के अनुसार देवगण प्रतिवर्ष बुद्ध के केश–कर्त्तन के स्मरण में इस महोत्सव का आयोजन करते हैं। इसी का अंकन यहां हुआ है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ग" की आकृति लगभग कोणाकार है (मौर्यकालीन शैली)

अक्षर "च" की आकृति में निचला भाग अण्डाकार बना है, इसके समरूपी आकार मौर्योत्तर काल के अन्य अभिलेखों में भी मिलते है।

अक्षर "ध" में अर्द्धवृत्त को मौर्योत्तर काल की शैली में उदग्र रेखा के बाईं ओर रखा गया है।

अक्षर "भ" मौर्योत्तर काल की शैली में निदर्शित है।

अक्षर "म" की (वर्त्तुल आकृति) मौर्यकालीन शैली में अंकित है।

अक्षर "ह" की वर्त्तुल आकृति मौर्यकालीन शैली में निदर्शित है, किन्तु "ओ" की

फलक संख्या – 9

मूल अभिलेख
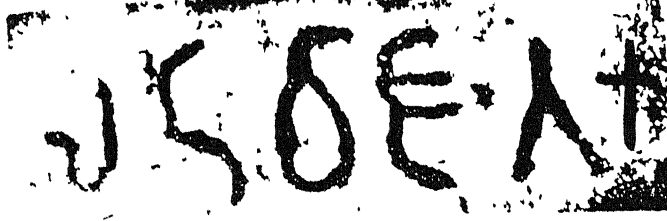
लिप्यन्तरण

लटुवा जातक

अर्थात् : उस जातक का दृश्यांकन जिसमें बटेर की कथा मिलती है। कथा के अनुसार एक बटेर ने वहाँ घोंसला बनाया था, जहाँ हाथियों का झुंड, जिसके नायक बोधिसत्व थे, अपना चारा लेने आता था। बटेर ने बोधिसत्त्व से विनती किया, उनके झुंड से बच्चों सहित घोंसले के नष्ट हो जाने का भय है। बोधिसत्त्व ने मान लिया। किन्तु एक मनचले हाथी ने नहीं माना। उसने घोंसले को कुचल डाला।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ल" की वर्त्तुल आकृति मौर्यकालीन शैली में अंकित है।

अक्षर "ट" का चपटा आकार मौर्योत्तर कालीन शैली में अंकित है।

अक्षर "व" को उदग्र रेखा लघ्वाकार है, तथा निचला भाग अण्डाकार है; ये विशेषताएं मौर्योत्तर कालीन शैली के हैं; किन्तु "आ" मात्रा (सीधी रेखा में) मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "त" की उदग्र रेखा, तथा निचला कोणाकार मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति का परिचय प्रस्तुत करता है।

अक्षर "क" की पूर्ण धनाकृति मौर्यकालीन में अंकित हुई है।

फलक संख्या – 10

मूल अभिलेख
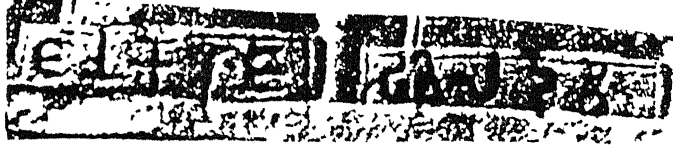
लिप्यन्तरण

जनको राजा सिविल देवी

अर्थात् : वह दृश्य जिसका सम्बन्ध राजा तथा (उनकी रानी) सिवली देवी से है। इसका तादात्म्य महाजनकजातक (सं0 539) की कथा से स्थापित किया जाता है। कथा के अनुसार राजा जनक ने सन्यास ले लिया था। यद्यपि उन्होंने मना किया था, तथापि उनकी पत्नी सिवली देवी ने उनका अनुसरण किया था। वे भिक्षाटन करते हुए एक इषुकार के यहां पहुंचे, जो एक आँख बंद कर तीर बनाने में तल्लीन था। इसे देखकर जनक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लक्ष्य की प्राप्ति अकेले ही सम्भव है, दूसरे व्यक्ति के साथ रहने पर इसमें विघ्न पहुंचता है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ज" की पहली (वर्त्तुल) आकृति मौर्यकालीन शैली में अंकित है, किन्तु दूसरी (चपटी) आकृति मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "न" की सीधी आधारभूत रेखा है, अतएव इसे मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति मान सकते हैं।

अक्षर "क" की पूर्ण धनाकृति मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति है, किन्तु "ओ" का सीधी रेखा में अंकन "शुंग–शैली" में है।

अक्षर "स" की वर्त्तुल आकृति, तथा इसमें "इ" की मात्रा (कोणाकार) मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "ल" का वर्त्तुल आकार मौर्यकालीन शैली में अंकित है।

अक्षर "द" का वर्त्तुल आकार एवं इसमें "ए" की मात्रा से मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति का परिचय मिलता है।

फलक संख्या – 11

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

वेदिसा चापदेवाया रेवतीमितभारियाय पठमथभो दानं

अर्थात् : विदिशा की रहने वाली चापदेवा का यह प्रथम स्तम्भ दान है, जो रेवतीमित्र की भार्या थी।

अंकित अक्षरों की विशेशताएं

अक्षर "च" की आकृति एवं "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "त" में उदग्र रेखा के मध्य बिन्दु से दाहिनी ओर निम्नोन्मुख तिर्यक रेखा बनाई गई है, जिसका समंतर आकार अशोक के गिरिनार के अभिलेख में निरूपित किया जा सकता है।

अक्षर "द" का वर्त्तुल आकार तथा "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "न" आधारभूत सीधी रेखा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "प" का चपटा आकार मौर्योत्तर–कालीन शैली में है।

अक्षर "भ" का आकार तथा "शुंग–शैली" में, "ओ" की मात्रा मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "म" का वर्त्तुल आकार मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "य" की आकृति एवं "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "व" का वर्त्तुल आकार तथा "ए" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

फलक संख्या – 12

मूल अभिलेख
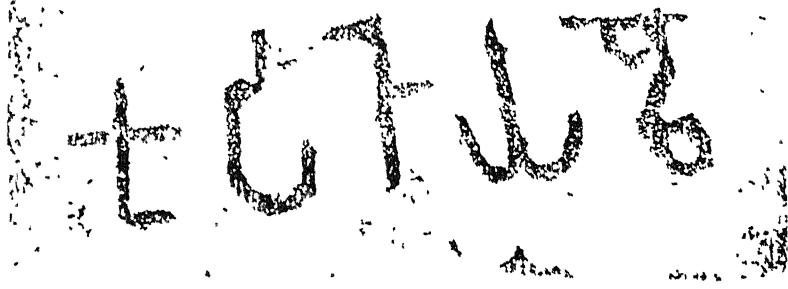
लिप्यन्तरण

कूपिरो यखो

अर्थात् : कुबेर (नामक) यक्ष (का चित्रांकन)

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" की पूर्ण धनाकृति तथा "उ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति है।

अक्षर "ख" का यह आकार नितान्त स्थानीय है, तथा इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है।

अक्षर "र" के लिए ऋजु उदग्र रेखा का प्रयोग तथा "ओ" की मात्रा शैली मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति है।

अक्षर "य" की आकृति मौर्यकालीन शैली में लगी है।

फलक संख्या – 13

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

चदा यखी
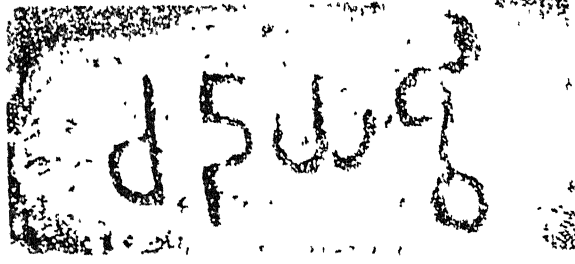
अर्थात् : वह यक्षी, जिसका नाम चन्द्रा था। तक्षित अंकन में नारी प्रतिमा प्रदर्शित है। वह एक मेष पर नाग–वृक्ष के नीचे खड़ी है। मेष के साथ एक मछली का पिछला हिस्सा दिखाया गया है। सम्भवतः यह जल से सम्बन्धित देवी का संकेतक है। नारी के दाहिने हाथ वृक्ष–शाखा प्रदर्शित है। बायाँ हाथ और बायाँ पैर वृक्ष के तने पर आश्रित दिखाया गया है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ख" तथा इसमें लगी हुई "इ" की मात्रा मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "च" मौर्यकालीन शैली में प्रदर्शित है।

अक्षर "द" का वर्त्तुल आकार तथा इसमें लगी हुई "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "य" की आकृति मौर्यकालीन शैली की पुनरावृत्ति का परिचय प्रस्तुत करती है।

फलक संख्या – 14

मूल अभिलेख
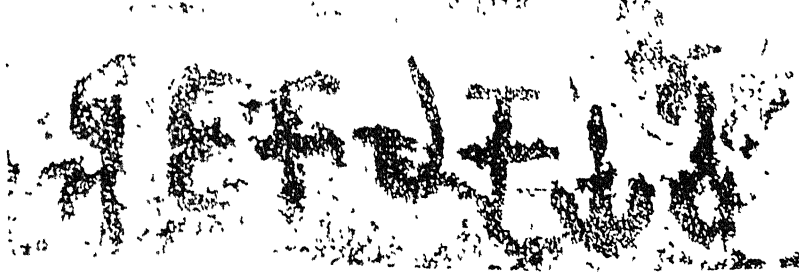
लिप्यन्तरण

अजकालको यखो

अर्थात् : वह यक्ष जिसका नाम अजकालक था। तक्षित प्रतिमा के दाहिने हाथ में कमल की कली है, जिसे वक्षः स्थल पर आश्रित दिखाया गया है। बाएं लटकते हुए हाथ के अंगूठे ओर तर्जनी उंगली के बीच किसी अज्ञात वस्तु को दिखाया गया है। यक्ष एक ऐसे विकटांग जीव पर खड़ा है, जो मत्स्याकार है। किन्तु उसका हाथ मानव का है, जिसे वह मुंह में दबाये हुए है। इस यक्ष का नाम अन्य स्रोतों से नहीं मिलता ।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "अ" की आकृति गोर्योत्तर–कालीन शैली में है।

अक्षर "क" उदग्र रेखा दीर्घ है, जो मौर्योत्तर शैली में है। इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में लगी है।

अक्षर "ख" की आकृति मौर्योत्तर कालीन शैली में है, किन्तु इसमें "ओ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "ज" की (वर्त्तुल) आकृति मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर 'य" की आकृति मौर्यकालीन शैली में है।

फलक संख्या – 15

मूल अभिलेख
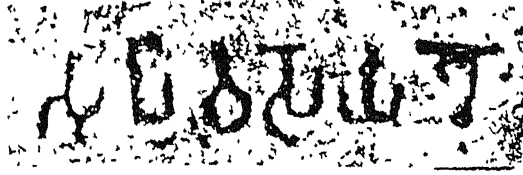
लिप्यन्तरण

सुपावसो यखो

अर्थात् : उस यक्ष की तक्षित प्रतिमा, जिसका नाम सुपावस (सुप्रावृष) था। यक्ष–प्रतिमा का तक्षण स्थित मुद्रा में एक हाथी के ऊपर हुआ है। हाथी के सूँड़ में माला का अंकन हुआ है। इस यक्ष के नाम का पता अन्य स्रोतों से नहीं चलता है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ख" मौर्योत्तर कालीन शैली में है। इसमें लगी हुई "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है।

अक्षर "प" मौर्योत्तर कालीन शैली में है। इसमें लगी हुई "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "य" मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "व" मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "स" मौर्यकालीन शैली में है। इसमें लगी हुई "उ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "स" की दूसरी आकृति भी मौर्यकालीन शैली में है। किन्तु इसमें लगी हुई "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है।

फलक संख्या – 16

मूल अभिलेख
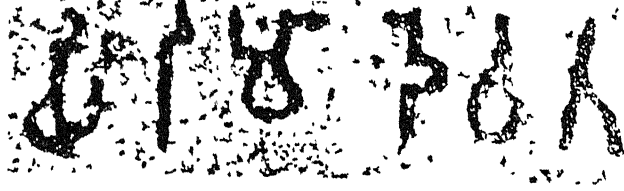
लिप्यन्तरण

सिरिमा देवत

अर्थात् : वह देवी जिसका नाम सिरिमा था। बौद्ध ग्रन्थ विमानवत्थु (E.R.Gooneratne) द्वारा सम्पादित I.16 के अनुसार सिरिमा राजगृह की गणिका थी। बुद्ध के प्रति भक्ति के कारण देवी के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ था। तक्षित प्रतिमा का अंकन वेदिका पर स्थित मुद्रा में हुआ है। यह अंकन ठीक वैसे ही हुआ है, जैसे यक्ष सुचिलोम का मिलता है (फलक संख्या 17)। अन्य तक्षित देवताओं के विपरीत इन दोनों को ही बिना किसी वाहन के प्रदर्शित किया गया है। देवी के हाथ में (भग्न) चामरी को दिखाया गया है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "त" का निचला भाग वर्त्तुल है। यह मौर्योत्तर कालीन शैली है।

अक्षर "द" मौर्यकालीन शैली में वर्त्तुल है। इसमें लगी हुई "ए" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "म" का ऊपरी हिस्सा चपटा है, जो मौर्योत्तर कालीन शैली है। किन्तु "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "र" ऋज्वाकार है, जो मौर्यकालीन शैली है। "इ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "व" का वर्त्तुल आकार मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "स" मौर्यकालीन शैली में है, किन्तु इसमें लगी हुई "इ" की वर्त्तुलकार मात्रा मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

फलक संख्या – 17

मूल अभिलेख
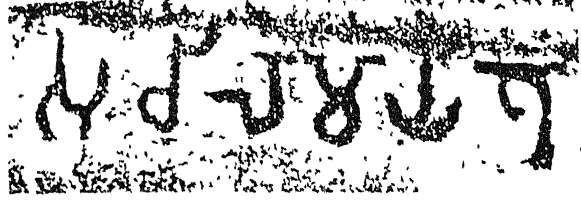
लिप्यन्तरण

सुचिलोमो यखो

अर्थात् : वह यक्ष जिसका नाम सुचिलोम था। सुत्तनिपात (Andersen-Smith द्वारा सम्पादित, पृ0 47), तथा संयुत्तनिकाय (Feer द्वारा सम्पादित, 1, 207) के अनुसार सुचिलोम गया में खर नामक यक्ष के साथ रहता था। एक बार वहां बुद्ध के जाने पर उसने उनके साथ उद्धत होकर दुर्व्यवहार किया। किन्तु बुद्ध ने उसके प्रश्नों का बड़ी शान्ति के साथ उत्तर दिया। इससे वह प्रभावित हुआ था। स्मरणीय है कि तक्षित प्रतिमा का अंकन स्थित मुद्रा में, हाथ जोड़े हुए सुवस्त्र सज्जित व्यक्ति के रूप में हुआ है, न कि यक्ष के रूप में।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ख" मौर्योत्तर कालीन शैली में अंकित है, तथा इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में।

अक्षर "च" की आकृति मौर्यकालीन शैली में है, किन्तु "इ" की मात्रा (वर्त्तुल) मौर्योत्तर कालीन शैली में।

अक्षर "म" की आकृति (वर्त्तुल) मौर्यकालीन शैली में है, तथा इसमें "ओ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "य" की आकृति मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "स" की आकृति (वर्त्तुल) मौर्यकालीन शैली में है, तथा इसमें "उ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में ही है।

फलक संख्या – 18

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

भदत महिलस थभो दानं

अर्थात् : (प्रतिमा–तक्षित) (प्रस्तुत) स्तम्भ का दान भदन्त महिल ने किया था।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "त" का अंकन मौर्यकालीन शैली में हुआ है।

अक्षर "द" का चपटा आकार मौर्योत्तर कालीन शैली में है, किन्तु "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "न" जिसकी आधारभूत रेखा सीधी है, मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "भ" मौर्योत्तर कालीन शैली में है, तथा इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग शैली" में लगी है।

अक्षर "म" का (वर्त्तुल) आकार मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "ल" का (वर्त्तुल) आकार मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "स" का (वर्त्तुल) आकार मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "ह" का (चपटा) आकार मौर्योत्तर कालीन शैली में है, तथा इसमें "इ" की (वर्त्तुल) मात्रा भी मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

फलक संख्या – 19

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

तिरमितिमिगिलकुछिम्ह

वसुगुतोमोचितो महदेवानं

अर्थात् : उस दृश्य का अंकन जिसमें वसुगुत (वसुगुप्त) को महादेव ने समुद्र–दानव (तिमितिमिंगिल) के उदर से निकाल कर सुरक्षित किया था। बौद्ध साक्ष्यों के अनुसार पाँच सौ समुद्र–व्यापारी यात्रा पर निकले। किन्तु समुद्र की लहरों में एक मत्स्य–दानव ने उन्हें महानौका समेत निगल लिया। व्यापारियों ने विभिन्न देवताओं से अपने उद्धार के लिए असफल प्रयास किया। जब उन्होंने "नमो बुद्धाय" का उच्चारण किया, उन्हें मत्स्य–दानव ने मुक्त कर दिया। अपने पूर्व जन्म में वह बौद्ध भिक्षु था।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" की पूर्ण धनाकृति, एवं "उ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "ग" की कोणाकृति, एवं "उ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "त" की कोणाकृति, तथा "इ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है। (तिरिमिति शब्द में) किन्तु वसुगुतो एवं मोचितो शब्दों में "त" में "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है।

इसी प्रकार कुछिम्ह शब्द में, संयुक्ताकार "म्ह" में "ह" को मौर्योत्तर कालीन शैली में बनाया गया है।

फलक संख्या – 20

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

वितुर पुनकिय जातकं

अर्थात् : उस जातक का अंकन जिसमें वितुर (विधुर) बोधिसत्व और पुनक (पूर्णक) यक्ष की कथा मिलती है। पालि–साहित्य में इसे विधुरपण्डित जातक (सं0 545) की संज्ञा प्रदान की गई है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" (जातकं में) की पूर्ण धनाकृति मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "प" (पुनकिय में) का वर्त्तुलाकार मौर्यकालीन शैली में है,

इसमें "उ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "य" मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "त" (वितुर में) मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "व" (निम्न भाग अण्डाकार) मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

फलक संख्या – 21

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

जटिलसभा

अर्थात् : जटाधारी संन्यासियों की समिति। तक्षित उपकरण भग्न अवस्था में मिला है। इसके बाएं भाग में कूप–निखात एक वृक्ष का अंकन है। दाहिनी ओर रिक्तियां है, जिनमें एक लघुकेशी पुरूष का अंकन है, जिसका केवल शिरोभाग एवं शरीर का ऊपरी हिस्सा ही बचा है। इस अंकन का समीकरण इदसमानगोत्तकजातक (सं0 161) मित्तामित्तजातक (सं0 197) के कथानक से किया जाता है, जिसमें एक ऐसे तापस का उल्लेख है, जिसे उसके पालतू हाथी ने ही मार डाला था।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

वर्त्तुलाकार अक्षर "ल" मौर्यकालीन शैली में है।

इसी प्रकार वर्त्तुलाकार अक्षर "स" भी मौर्यकालीन शैली में है।

किन्तु अक्षर "भ" मोर्योत्तर कालीन शैली में है, जिसमें "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में लगी है।

फलक संख्या – 22

मूल अभिलेख
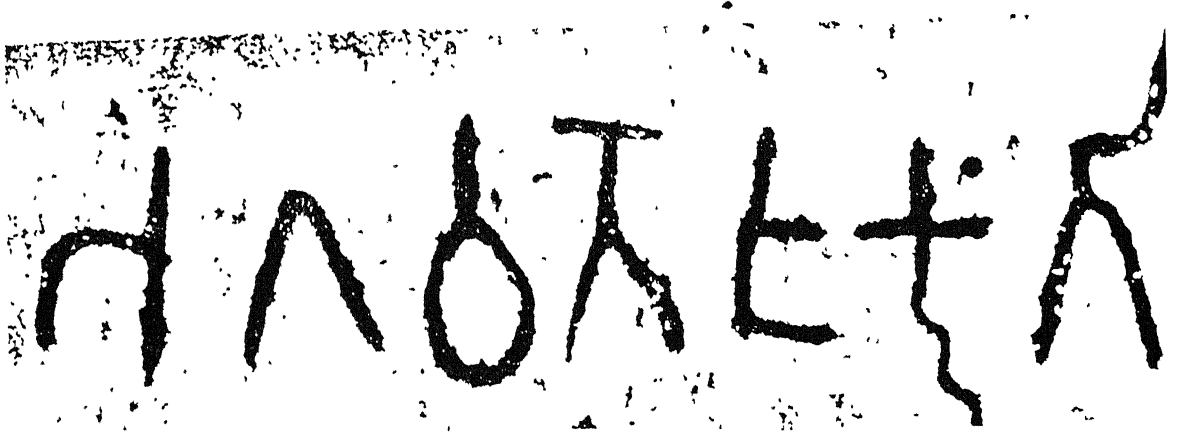
लिप्यन्तरण

भगवतो ऊक्रंति

अर्थात् : भगवान् (बुद्ध) का गर्भाधान। स्तम्भ पर तक्षित प्रतिमा में बुद्ध की माता को निद्रित अवस्था में विस्तर पर प्रदर्शित किया गया है। विस्तर के पास अलंकृत पीठिका पर प्रकाश दीप है। आसन्दिकाओं सेवा–रत परिचारिकाएं निदर्शित हैं। ऊपरी भाग में षड्–दंष्ट्री एवं अलंकृत वस्त्र में गजाकृति को अन्तरिक्ष से पृथ्वी की ओर उतरते हुए दिखाया गया है। इसका समीकरण बोधिसत्व से किया गया है, जिनका अवतरण मायादेवी के गर्भ में हो रहा है। मायादेवी स्वप्निल अवस्था में है। समस्तरीय विवरण ललितविस्तर (55.6) में मिलता है।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "ऊ" कोणाकार है, यद्यपि "ऊ" का आकार मौर्यकालीन अभिलेखों में नहीं मिलता, तथापि अनुमान है कि मौर्य–काल में "ऊ" का ऐसा ही आकार रहा होगा।

पूर्ण धनाकृति में अक्षर "क" तथा इसमें संयुक्त "र" मौर्यकालीन शैली में है।
पूर्ण कोणाकृति में अक्षर "ग" मौर्यकालीन शैली में है।
अक्षर "त" मौर्यकालीन शैली में है। पर इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है। (भगवतो शब्द में), किन्तु (ऊक्रन्ति में) "त" मौर्योत्तर कालीन शैली में है, जबकि इसमें "इ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।
अक्षर "व" निचला अण्डाकार मौर्योत्तर कालीन शैली में है।
अक्षर "भ" मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

फलक संख्या – 23

मूल अभिलेख

लिप्यन्तरण

जेतवन अनाधपिडको देति कोटि संथतेन केता

अर्थात् : अनाथपिंडक करोड़ों की लागत से खरीदे गये जेतवन का दानकर रहा है। तक्षित गोलाकार के दाहिने अनाथपिंडक का अंकन है। वह अपनी बैलगाड़ी के पास खड़ा है। उसके मजदूर गाड़ी से सिक्कों को उतार कर जमीन पर फैला रहे है। मध्यवर्ती भाग में अनाथपिंडक फिर अंकित किया गया है। वह अदृश्य बुद्ध के हाथ में सिक्कों का दान कर रहा है। प्रतीक–चिन्हों के अंकन से ये सिक्के आहत मुद्रा (कार्षापण)से मिलते जुलते है। समान विवरण चुल्लवग्ग और निदानकथा जैसे बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "अ" मौर्यकालीन शैली में है। अक्षर "क" की आकृति (अनाधपिडक और कोटि में) पूर्ण धनाकृति मौर्यकालीन शैली में है, किन्तु इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है। अक्षर "ज" (वर्त्तुलाकार) मौर्यकालीन शैली में है, इसमें "ए" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है। (वर्त्तुलाकार) "ट" मोर्यकालीन शैली में है, इसमें "इ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है। अक्षर "त" मौर्योत्तर कालीन शैली में है (जेतवन में), किन्तु (संथतेन मे) मौर्यकालीन शैली में है, इसमें "ए" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है। "ध" में अर्द्धवृत्त बाएं है, जो मौर्योत्तर कालीन शैली में है। "न" जिसकी आधारभूत रेखा ऋज्वाकार है, मौर्यकालीन शैली में है। "व" की आकृति मौर्यकालीन शैली में है।

फलक संख्या – 24

मूल अभिलेख
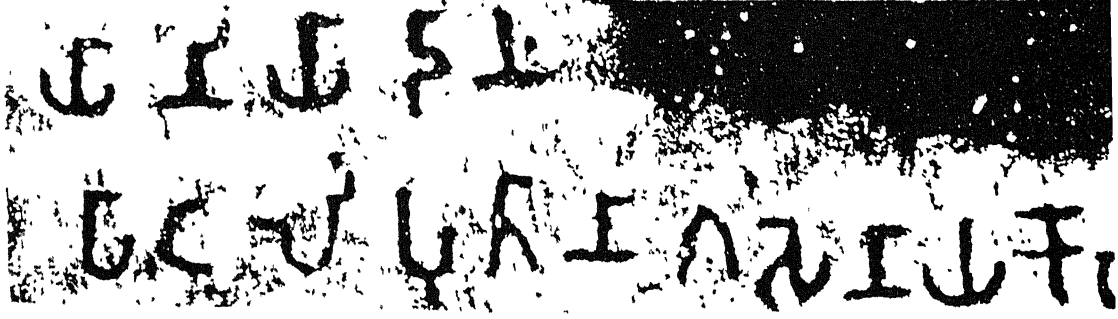
लिप्यन्तरण

1. पाटलिपुता नागसेनाय कोडि
2. यानिया दानं (अभिलेख की पहली पंक्ति नीचे है, तथा दूसरी ऊपर है)

अर्थात् : पाटलिपुत्र के निवासी उस नागसेन का दान, जो कोडिय (कोलिय) जाति का था। कोडिय जाति के बारे में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता है। सम्भवतः कोडिय अथवा कोलिय वही जनजाति है, जिसका प्रसंग बहुधा बौद्ध ग्रन्थों में आता है। इनका सम्बन्ध शाक्यों से था। इनमें प्रायः रोहिणी नदी के जल को लेकर झगड़ा होता था।

अंकित अक्षरों की विशेषताएं

अक्षर "क" की (पूर्ण धनाकृति) मौर्यकालीन शैली में है, किन्तु "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है। "ग" की (वर्त्तुल) आकृति मौर्योत्तर कालीन शैली में है। "ड" की आकृति तथा इसमें "इ" की मात्रा मौर्योत्तर कालीन शैली में है। "द" की (वर्त्तुल) आकृति तथा इसमें "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है। "न" की आकृति मौर्यकालीन शैली में है, इसमें आधारभूत रेखा को ऋज्वाकार बनाया गया है। "प" की (वर्त्तुल) आकृति, तथा इसमें "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है। "य" मौर्यकालीन शैली में है, तथा इसमें "आ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

फलक संख्या – 25

मूल अभिलेख (2)
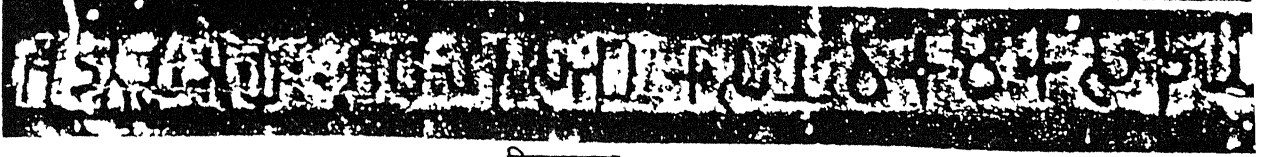
लिप्यन्तरण

1. महासामयिकाय अरहगुतो देवपुतो वोकतो भगवतो सासनि पटिसंधि
2. भदतस अय इसिपालितस भानकस नवकमिकस दानं (तक्षित उपकरण में अभिलेख की पहली पंक्ति नीचे है, तथा दूसरी पंक्ति ऊपर; इसकी व्याख्या टिप्पणी में की गई है)

<u>अर्थात्</u> :भदन्त आदरणीय इसिपालित (ऋषि पालित) का दान, जो गायक एवं कार्याध्यक्ष था। महाराभा (कक्ष) से अवतरित होकर देवपुरूष अर्हद्गुप्त भगवान् (बुद्ध) को उनके पुनर्जन्म से अवगत कराते हैं। तक्षित मूर्ति–शिल्प में शुद्धोदन के राजप्रासाद का अंकन है। आसन्दिका को विभिन्न प्रकार के पुष्पादि अलंकरणों से सज्जित किया गया है। अर्हद्गुप्त नवजात बोधिसत्व का दर्शन कर रहे हैं, तथा उन्हें उनके पुनर्जन्म एवं धम्म–अनुशासन के उद्देश्य को अवगत करा रहे हैं। दूसरी (ऊपर की) पंक्ति से विदित होता है कि इस तक्षित मूर्ति–शिल्प का दान ऋषिपालित ने किया था।

अंकित अक्षरों की विशेशताएं

पहली (नीचे की) पंक्ति

अक्षर "क" की पूर्ण धनाकृति मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "त" (भदत में) मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "द" (दानं में) वर्त्तुलाकार, मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "न" (भानक में) आधारभूत रेखा ऋज्वाकार मौर्यकालीन शैली में है, दूसरा आकार (दानं में) आधारभूत रेखा वर्त्तुलाकार मोर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "प" (पालित में) वर्त्तुलाकार, मौर्यकालीन शैली में है। इसमें लगी हुई "आ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "भ" (भदत में) मौर्योत्तर कालीन शैली में है; दूसरा आकार (भानक में) भी मौर्योत्तर कालीन शैली में है; किन्तु इसमें "आ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "म" वर्त्तुलाकार, मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "य" मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "ल" (इसिपालित में) चपटा आकार, मौर्योत्तर कालीन शैली में है; किन्तु इसमें "इ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "प" : मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "स" : मोर्यकालीन शैली में है।

दूसरी (ऊपर की) पंक्ति

अक्षर "अ" (अर्ह में) : मौर्योत्तर कालीन शैली में; यद्यपि मौर्यकालीन ब्राह्मी में यह आकार अपरसामान्य रूप में मिलता है।

अक्षर "क" : पूर्ण धनाकृति मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "गु" : पूर्ण कोणाकृति, तथा "उ" की मात्रा मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "तो" (अर्हगुतो में) : मौर्यकालीन शैली में है, किन्तु इसमें "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है।

अक्षर "प" (पटिसंधि में) : वर्त्तुलाकार मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "टि" (पटिसंधि में) : मौर्यकालीन शैली में है, इसमें लगी हुई "इ" की मात्रा भी मौर्यकालीन शैली में है।

अक्षर "भ" (भगवतो में) : मौर्योत्तर कालीन शैली में है।

अक्षर "व" (वोकतो में) : अण्डाकार मौर्योत्तर कालीन शैली में है, इसमें लगी हुई "ओ" की मात्रा "शुंग–शैली" में है। किन्तु "व" के दूसरे आकार (देवपुतो एवं भगवतो में) मौर्यकालीन शैली में है।

निष्कर्षतः ऐसा कह सकते हैं कि भरहुत की लिपि में पुरातन आकारों के साथ-साथ नवीन आकारों को प्रयोग में लाने का प्रयास किया जा रहा था। फलक संख्या 24 तथा 25(2) में पहली पंक्ति को नीचे और दूसरी पंक्ति को ऊपर आलेखित कर लिपिकर ने एक अभिनव प्रयोग का परिचय दिया है। उल्लेखनीय है, ब्राह्मी लिपि में पंक्ति – व्यवस्था अथवा लेखन दिशा की उलट-फेर के उदाहरण यद्यपि कम है किन्तु दुर्लभ नहीं है (द्रष्टव्य अहमद हसनदानी, इंडियन पैलियोग्राफी पृष्ठ 29, राजबली पाण्डेय, इण्डियन पैलियोग्राफी भाग 1, पृष्ठ 40-41, एस.एन राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, पृष्ठ सं0 60-66)। उक्त समीक्षा से यह भी स्पष्ट है, भरहुत के अक्षरों की शिल्प विधि तत्कालीन मथुरा के अभिलेखों से काफी भिन्न है। भरहुत लिपि में मौर्यकालीन अक्षर-आकारों की भरमार है, जिसका उल्लेख पिछले दो अध्यायों में विशेष रूप से किया जा चुका है।

उक्त निष्कर्ष के साथ यह कथन अप्रासंगिक नहीं होगा कि मथुरा के अभिलेखों और इसके साथ ही सेत-महेत (श्रावस्ती), अहिच्छत्रा, सारनाथ एवं कौशाम्बी के अभिलेखों में मौर्योत्तर कालीन द्वितीय शताब्दी ई0पू0 की अक्षर आकृतियां शक-लिपिकरों के हस्त-कौशल के कारण परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत हुई है। भरहुत लिपि की समस्तरीय आकृतियां सांची की लिपि में अवश्य मिलती हैं, किन्तु एक सीमा के अन्तर्गत ही।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं शोध पत्रिकाएँ

1. Corpus Inscripticnum Indicarum, Vol. II, pt. 2
2. B.M. Barua, Bharhut, Books I-III
3. Epigraphia Indica, Vol. 10
4. Indian Antiquary XX
5. ललित विस्तर
6. संयुत्त निकाय
7. सुत्तनिपात
8. जातक (Fausbollद्वारा सम्पादित)
9. थेर गाथा (Oldenberg द्वारा सम्पादित)
10. A.H. Dani, Indian Palaeography
11. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला
12. G. Buhler, Indian Palaeography
13. C.S. Upasak, The History And Palaeography of Mauryan Brahmi Script
14. R.B. Pandeya, Indian Palaeography, Vol. I
15. एस.एन. राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख
16. Macdonnel, Vedic Mythology, p. 29
17. D.C. Sircar, Epigraphic Glossary

*****

परिशिष्ट ÷

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

शुंग–राज्य को प्रसंगित करने वाला भरहुत का अभिलेख

संक्षिप्त टिप्पणी

SSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSSS

मूल अभिलेख

(कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम खण्ड 2 भाग 2 के सौजन्य से)

लिप्यन्तरण

सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस ।

पौतेण गोतिपुतस आगरजुस पुतेण ।।

वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां ।

सिलाकमंतो च उपंण ।।

अर्थात्

शुंगो के राज्य काल में तोरण–द्वार का निर्माण हुआ, प्रस्तरीकरण की क्रिया धनभूति के द्वारा सम्पन्न हुई। वंश श्रृंखला में धनभूति को वात्स्यीपुत्र, वात्स्यी को अंगारद्युत का पुत्र, अंगारद्युत को गौप्ती पुत्र तथा विश्वदेव का पौत्र, विश्वदेव को गार्गी पुत्र बताया गया है।

अक्षरांकनों की समीक्षा

विषय–विवेचकों ने इस प्रश्न पर भी विचार करने का प्रयास किया है कि वस्तुतः "सुगनं रजे" वाक्यांश को सन्दर्भित करने वाला आलोचित अभिलेख लिपि–विषयक विशेषताओं के आधार पर किस कालावधि में रखा जाय। ऐसी स्थापना की गई है कि वस्तुतः इसकी लिपि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से सम्बन्धित है। अतएव इसका समय पुष्यमित्र के समय से लगभग 50 वर्ष बाद का माना जा सकता है[1]।

एस.एन. राय की व्याख्या[2] में ऐसी स्थापना संशय से परे नहीं है। इस अभिलेख के अक्षरांकनों में अभी पुरातनता की प्रवृत्ति दिखाई देती है; जिसके निदर्शन निम्नोक्त हैं :

"स" : उदग्र रेखाओं के शिरोभाग का समानीकरण नहीं हुआ है जबकि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में समानीकृत की प्रवृत्ति मिलती है

"प" : उदग्र रेखाओं के शिरोभाग का समानीकरण नहीं हुआ है जबकि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में समानीकृत की प्रवृत्ति मिलती है

"व" : उदग्र रेखा अभी बनी हुई है, जबकि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में इसे हटा दिया गया है,

उक्त अक्षर–आकारों के अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है कि अक्षर "त" अक्षर "ल" तथा अक्षर "म", के आकार मौर्य–सम है।

ऐसी स्थिति के कारण इस अभिलेख को प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के पहले रखना अधिक उचित प्रतीत होता है, तथा यह सम्भावना भी निरापद है कि इसे तथा भरहुत के अन्य अभिलेखों को पुष्यमित्र के शासन–काल एवं शासन–सत्ता के अन्तर्गत ही अंकित कराया गया था।

---

1. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, जे.एस. नेगी, ग्राउंडवर्क आफ़ एंशेंट इंडियन हिस्ट्री, पृ0 302; पाद टिप्पणी 10; एस.एन. राय, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, पृष्ठांक 177–178।

2. राय, एस.एन., तत्रैव, पृष्ठांक 177–178 ।

सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची

संदर्भिका

मूलभूत प्राचीन ग्रन्थ :

अंगुत्तर निकाय	:	आर0 मोरिस एण्ड ई. हार्डी, पी.टी एस लन्दन, 1882-1900
अष्टाध्यायी	:	पाणिनी, चौखम्भा विश्वभारती, 1983
अष्टाध्यायी (हिन्दी अनुवाद)	:	अनुवादक ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, 1988
अट्ठसालिनी (धम्म संगिनी व्याख्या सहित)	:	वी वापट और वाडेकर, भण्डारकर ओरियण्टल सीरीज, पूना, 1942
अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता	:	सं0 राजेन्द्र लाल मित्र
आयारंग सुत्त	:	शीलांक की व्याख्या के साथ, कलकत्ता 1879
आपस्तम्ब धर्मसूत्र	:	सं0 बूलर, द्वितीय संस्करण
अंगुत्तर निकाय	:	भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा महाविहार
अंगुत्तर निकाय	:	भिक्षु जगदीप कश्यप, नालंदामहाविहार
ऐतरेय आरण्यक	:	संपादक कीथ, आक्सफोर्ड, 1909
ऐतरेय ब्राह्मण	:	षडगुरु शिष्य कृत सुखप्रदावृत्ति सहित, त्रावणकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम
कठोपनिषद	:	गीता प्रेस गोरखपुर, उपनिषद निर्णय सागर प्रेस बम्बई
कथावस्तु (2 भाग)	:	ए.सी. टेलर, पी.टी.एस लन्दन
कौशतकि ब्राह्मणोपनिषद	:	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
केनोपनिषद	:	उपनिषद निर्णय सागर प्रेस बम्बई, गीता प्रेस गोरखपुर
खुद्दक निकाय	:	भिक्षु जगदीश कश्यप, नालन्दा महाविहार, 1937

गौतम धर्म सूत्र : आनन्दाश्रम, संस्कृत ग्रन्थमाला में प्रकाशित, 1910

छन्दोग्योपनिषद : उपनिषद निर्णय सागर प्रेस बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर

जातक : ई.बी. कावेल, लन्दन, 1957

जातक (हिन्दी अनुवाद) : भदन्त आनन्द, कौशल्यायन (6 जिल्दों में) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1941

जातक : वी फासबल द्वारा सम्पादित, लन्दन, 1877–97

तैत्तिरीयारण्यक : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना

तैत्तिरीय ब्राह्मण : चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

ताण्ड्य महाब्राह्मण : चौखम्बा संस्करण, वाराणसी

दीघ निकाय : भिक्षु जगदीश कश्यप, श्री नालंदा महाविहार, 1958

दीघ निकाय : संपादक रीज डेविड्स और ई. कार्पेन्टर पी.टी.एस. सोसाइटी, लन्दन, 1890 – 1911

दीघ निकाय : (हिन्दी अनुवाद) राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ, वाराणसी 1936

दीपवंश : एच0 ओल्डेनवर्ग, लन्दन 1879

दिव्यावदान : पी.एल. वैद्य

धम्मपद (हिन्दी अनुवाद) : राहुल सांस्कृत्यायन, प्रयाग, 1933

प्रश्नोपनिषद : उपनिषद निर्णय सागर प्रेस बम्बई, गीता प्रेस गोरखपुर

बौधायन धर्म सूत्र : मैसूर, 1907

बौधिचर्यावतार : बिब्लियोथेका इण्डिया में प्रकाशित

बृहदारण्यकोपनिषद : उपनिषद निर्णय सागर प्रेस बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर

मिलिन्दपञ्हो : आर.डी. वाडेकर, युनिवर्सिटी ऑव बम्बई, 1940

मज्झिमनिकाय : एफ.वी. ट्रेंकनर एण्ड आर. चारमर पी.टी. एस. लन्दन, 1888–89

मज्झिमनिकाय : नालन्दा – देवनागरी पालि ग्रन्थ माला

महावंश : भदन्त आनन्द कोशल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1942

महावग्ग : भिक्षु जगदीश कश्यप, श्री नालन्दा महाविहार, 1956

मुण्डकोपनिषद : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना

ललित विस्तर : पी एल. वैद्य

वशिष्ठ धर्म सूत्र : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना 1930

विनय पिटक : नालन्दा देव नागरी पालिग्रन्थ माला

विनय पिटक : एच. ओल्डेनबर्ग पी टी.एस लन्दन, 1879–83

शतसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता : सं० प्रतापचन्द्र घोष

शतपथ ब्राह्मण : अच्युत ग्रन्थमाला का संस्करण

महायान सूत्रालंकार : सिल्वें लेवि द्वारा सम्पादित

संयुत्त निकाय : भिक्षु जगदीश कश्यप श्री नालन्दा महाविहार

श्वेताश्वतरोपनिषद : उपनिषद निर्णय सागर प्रेस बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर

संयुत्त निकाय : पी. टी. एस लन्दन

विदेशी यात्रियों के विवरण

दि ट्रेवेल्स ऑव फाहियान : गाइल्स, एच.ए.,कैम्ब्रिज 1923

दि ट्रेवेल्स ऑव फाहियान एण्ड सुंग–युन : बुद्धिस्ट पिलग्रिम्स फ्राम चायना टू इण्डिया,बील एस, लन्दन 1869

लाइफ ऑव दि युवान च्वांग : बील.एस , लन्दन, 1914

प्लीनी कृत नेचुरल हिस्टारिका : अंग्रेजी अनुवाद, एच वैकहम, दि लोयल क्लासिकल सीरीज, कैम्ब्रिज हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, मैसाचुएट्स, 1952

*****

आधुनिक ग्रन्थ :

अग्रवाल, वी.एस. : इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि, लखनऊ, 1953

अग्रवाल, वी.एस. : भारतीय कला, वाराणसी, 1966

अग्रवाल, वी.एस. : इण्डियन आर्ट, वाराणसी, 1965

अग्रवाल, वी.एस. : मथुरा म्युजियम कैटलाग, इलाहाबाद, 1979

अग्रवाल, वी.एस. : स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, 1965

अग्रवाल, वी.एस. : पाणिनि कालीन भारत, बनारस, सं0 2012

ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र : भारतीय प्राचीन लिपिमाला, अजमेर, 1918

उपासक, सी.एस. : द हिस्ट्री एण्ड पैलियोग्राफी ऑव मौर्यन ब्राह्मी स्क्रिप्ट, नालन्दा, 1960

उपाध्याय वसुदेव : प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, 1972

उपाध्याय, भरत सिंह : बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल, प्रयाग सं0 2018

उपाध्याय, भरत सिंह : पालि साहित्य का इतिहास, प्रयाग सं0 1885

ऐन्डरसन, जे0 : कैटलॉग ऐंड हैण्डबुक ऑव दि आर्क्योलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, 1883, जिल्द 1

कनिघंम, ए. : ऐंशेण्ट ज्याग्राफी ऑव इण्डिया, वाराणसी, 1975

कनिंघम, ए. : स्तूप ऑव भरहुत, वाराणसी 1962

क्रेमरिश, स्टेला : इण्डियन स्कल्प्चर, कलकत्ता, 1933

कुमार स्वामी, ए.के. : यक्षाज, वाशिंगटन

कुमार स्वामी, ए.के. : हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लन्दन, 1957

काला, एस.सी. : भरहुत वेदिका, इलाहाबाद, 1951

कोसंबी, धर्मानन्द : भगवान बुद्ध, दिल्ली, 1956

गिल्स, एच.ए. : द ट्रेवेल्स ऑव फाहियान, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी, 1923

गोपाल, लल्लन जी : दि इकनामिक लाइफ ऑव नार्दन इण्डिया, वाराणसी, 1965

चट्टोपाध्याय, सुधाकर : अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया, कलकत्ता

चन्दा, आर.पी. : डेट्स ऑव दि वोटिव इन्सक्रिप्शंस आन दि स्तूप ऑव सांची, एम.एस.आई–1, 1919

जायसवाल, के.पी. : हिस्ट्री ऑव इण्डिया, लाहौर, 1939

जैन, जे.सी. : लाइफ इन ऐशेण्ट इण्डिया, बम्बई, 1947

जेनार्ट (सम्पादित) : मथुरा इन्सक्रिप्शंस

त्रिपाठी, हवलदार : बौद्ध धर्म और विहार, पटना, 1960

थपलियाल, के.के. : स्टडीज इन ऐशेण्ट इण्डियन सील्स, लखनऊ

दत्त, आर.सी. : ए हिस्ट्री ऑव सिविलाइजेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1891

दास, ए.के. : द इकनामिक हिस्ट्री ऑव ऐशेण्ट इण्डिया, 1924

दानी अहमद हसन : इण्डियन पेलियोग्राफी, आक्सफोर्ड,1963, नई दिल्ली 1986

नेगी, जे.एस. : सम इण्डोलाजिकल स्टडीज, इलाहाबाद, 1967

नेगी, जे.एस. : ग्राउण्ड वर्क ऑव ऐशेण्ट इण्डियन हिस्ट्री, इलाहाबाद, 1958

पाण्डेय, आर.बी. : हिस्टारिकल एण्ड लिटरेसी इन्सक्रिप्शंस, चौखम्भा, वाराणसी, 1962

पाण्डेय, आर.बी. : इण्डियन पैलियोग्राफी, भाग – एक, वाराणसी

पाण्डेय जयनारायण : भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1988

पाण्डेय, जी.सी. : स्टडीज इन दि ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, इलाहाबाद, 1957

पाठक, वी.एस. : ब्रह्मी अथवा ब्राह्मी, वैदिक भाषा और लिपि, मध्य भारती, जिल्द II

पार्जिटर, एफ.ई. : ऐशेण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन्स, आक्सफोर्ड, 1922

परनवितान, एस. : इन्सक्रिप्शंस ऑव सिलोन, जिल्द–1, डिपार्टमेन्ट ऑव आर्क्योलाजी, सिलोन, 1970

पुरी, बी.एन. : इण्डिया अण्डर द कुषाणाज, बम्बई

पुरी, बी.एन. : इण्डिया एज डिस्क्राईब्ज बाई अर्ली ग्रीक राइटर, इलाहाबाद, 1939

फूशे, ए. : विगिनिंग्ज, ऑव बुद्धिस्ट आर्ट, लन्दन, 1917

बूलर, जी. : इण्डियन पैलियोग्राफी, कलकत्ता, 1962

बूलर, जी. : आन ओरिजिन ऑव इण्डियन ब्राह्म अल्फाबेट, स्ट्रासवर्ग, 1898

बरूआ, बी एम. : अशोक एण्ड हिज इन्सक्रिप्शंस, कलकत्ता, 1946

बरूआ, बी.एम. एण्ड के.जी. सिन्हा : भरहुत इन्सक्रिप्शंस, कलकत्ता, 1926

बरूआ, बी.एम. : ओल्ड ब्राह्मी इंसक्रिप्शंस, कलकत्ता, 1929

बरूआ, बी.एम. : भरहुत, 3 जिल्दों में, कलकत्ता, 1934–37

बर्नेल, ए.सी. : एलिमेंट्स ऑव साउथ इण्डियन पैलियोग्राफी, वाराणसी 1878

बाजपेयी, के.डी. : इण्डियन न्युमिस्मेटिक स्टडीज, वाराणसी

बर्जेस, जे. : नोट्स आन दि अमरावती स्तूप, मद्रास

भण्डाकर, डी.आर. : ऐशेण्ट इण्डियन न्युमिस्मेटिक्स, कलकत्ता, 1921

मजूमदार, आर.सी. : ऐशेण्ट इण्डिया, पटना, 1960

मजूमदार, आर.सी. : ऐशेण्ट इण्डियन, हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, कलकत्ता, 1927

मजूमदार : ए गाइड टू स्कल्पचर्स इन द इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता, भाग 1

मैक्डानल, ए. एण्ड कीथ, ए.बी. : वैदिक इण्डेक्स

मार्शल, सर जान एवं फूशे : द मानूमेण्ट्स ऑव सांची, कलकत्ता, 1940

मार्शल, सर जान : ए गाईड टू सांची, कलकत्ता, 1955

मुले, गुणाकर : अक्षर कथा, नई दिल्ली, 1972

मुले, गुणाकर : भारतीय लिपियों की कहानी, नई दिल्ली, 1972

महालिंगम, टी.वी. : अर्ली साऊथ इण्डियन पैलियोग्राफी, मद्रास, 1967

मोतीचन्द्र : सार्थवाह, पटना, 1953

यादव, बी.एन.एस. : सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया, इलाहाबाद, 1973

राय चौधरी, एच.सी. : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐशेण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1972

राय चौधरी, एच.सी. : प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1971

राय, सिद्धेश्वरी नारायण : भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994

रे, निहार रंजन : मौर्य तथा मौर्योत्तर कला, 1979 (हिन्दी अनुवाद, प्रथम संस्करण), नई दिल्ली

रे, निहार रंजन : मौर्य एण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, 1945

राहुल, सांस्कृत्यायन : पालि साहित्य का इतिहास, लखनऊ 1963

राहुल, सांस्कृत्यायन : दीघ निकाय, (हिन्दी अनुवाद) महाबोधि सभा, सारनाथ, 1942

राहुल, सांस्कृत्यायन : विनयपिटक, (हिन्दी अनुवाद) महाबोधि सभा, सारनाथ, 1935

राहुल, सांस्कृत्यायन : मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), बनारस सं0 2008

राइज डेविट्स, टी. डब्ल्यू. : बुद्धिस्ट इण्डिया, दिल्ली, पटना, 1971

रैप्सन, ई.जे. : हिस्ट्री ऑव इण्डिया, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी, कैम्ब्रिज, 1922

रोलैंड, बेंजामिन : द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया, 1956, (तृतीय संस्करण), पेग्युइन

लाO, बी.बी. : ज्याग्राफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, भारतीय पब्लिसिंग हाउस, 1973

वर्मा, टी.पी. · द पेलियोग्राफी ऑव ब्राह्मी स्क्रिप्ट इन नार्दर्न इण्डियां, वाराणसी

वियोगी, पं. मोहनलाल मेहतो : जातक कालीन भारतीय संस्कृति, पटना

शर्मा, जी.आर. : हिस्ट्री टु प्री हिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980

सरकार, डी.सी. : रेलेवट इन्सक्रिप्शंस, कलकत्ता, 1965

शिवराममूर्ति, सी : इण्डियन इपीग्राफी एण्ड राऊथ इण्डियन स्क्रिप्ट्स, 1952

ल्यूडर्स, एच. : कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इंडिकेरम, जिल्द – 2, भाग – 2 (भरहुत इन्सक्रिप्शंस), इ•वाल्डस्मिट तथा एम.ए. मेंहदले द्वारा परिवर्धित 1962, उटकमंड

हुल्श : इण्डियन ऐंटिक्वैरी, भाग 14, भाग 21

हुल्श : कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इंडिकेरम, भाग 1

:: **<u>शोध पत्रिकाएं</u>** ::

--- आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया एनुवल रिपोर्ट

--- इण्डियन ऐन्टीक्वैरी

--- एनाल्स ऑव भण्डाकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट

--- प्राच्य प्रतिभा, भोपाल

--- चिति–वीथिका, इलाहाबाद

--- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली

--- इपिग्राफिका इण्डिका

--- जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री

--- जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसाइटी

--- जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल

--- भारतीय पुराभिलेख पत्रिका, मैसूर

--- जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसाइटी

--- जर्नल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी

--- जर्नल ऑव बम्बई ब्रान्च ऑव रायल एशियाटिक सोसाइटी

--- जर्नल ऑव न्युमिसमेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया

--- जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड

--- जर्नल ऑव एपिग्राफिकल सोसाइटी ऑव इण्डिया

--- जर्नल ऑव डिपार्टमेन्ट ऑव लेटर, कलकत्ता

--- जर्नल ऑव दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी

--- जर्नल ऑव पालि टेक्स्ट सोसाइटी

--- पूना ओरियण्टलिस्ट

--- जर्नल ऑव गंगा नाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट

*****